

भूमिका ।

श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां नयने द्वे प्रकीर्तिते ।

काणः स्यादेकया हीनो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्तितः ॥

इह हि परिवर्तिनि संसारेऽजस्रमेव शरीरिणाञ्जनननिधने जायेते ।
कर्मानुगो हि जीवः स्वमुखदुःखयोः परवानपि धर्मेकप्रवणः प्रभवति
स्वाभ्युदयायेति निर्विवादम् ।

यद्यपि जन्ममात्रः स्वस्वधर्मानुरूपमधिकारी धर्माचरणे तथापि
धर्मशास्त्राध्ययने तद्विहितधर्मानुष्ठाने च द्विजातिरेवाधिक्रियते । यथाह
योगीश्वरः-“निषेकादिः श्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः । तस्य
शस्त्रेऽधिकारोऽस्मिन्सम्यङ् नान्यस्य कस्यचित् ॥” इति ।

उपनयनानन्तरमेव हि ब्रह्मचर्याश्रमे गायत्रीजपाग्निगुरुशुश्रूषाश्रुतिपरि-
शीलनादिब्रह्मचारिनियमाः, गृहस्थाद्याश्रमनियमाश्च ऋते धर्मशास्त्रात्
विज्ञायन्ते । प्राधान्यतश्चात्र धर्मशब्दः षड्विधधर्मपरः । सच-वर्णधर्मः,
आश्रमधर्मः, वर्णाश्रमधर्मः, गुणधर्मः, निमित्तधर्मः, साधारणधर्मश्चेति ।
“स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिर्लभते नरः ॥” इत्यादिश्रीभगवद्बोधोऽनु-
रोधाद्विजातिभिस्त दपरैरपि यथाशक्ति स्वस्वधर्मानुष्ठानं विधेयमेव,
अतएव परमकृपाकूपार महर्षिमन्वादिभिर्वर्णाश्रमधर्मबोधनायस्वस्वनाम्ना
धर्मशास्त्राणिनिरमीयन्त, यतश्च क्लृप्तातिपावनेऽस्मिन्मारते वर्षे द्विजत्व-

(४)

भूमिका ।

सम्मत्तिप्राप्तिदिवसादेवावहिता आचार्याः स्वस्ववद्वन्धर्मपटून्विधातुं
धर्मशास्त्रानुसारं समारिशन ।

तेषामाहिकृत्ये धर्मशास्त्रानुकूलमेव कर्मणां सन्निवेशान्त्वतो हि
जागरूकतः धर्मशास्त्रस्यासीत् । साम्प्रतं तु कलिमहिम्ना सुदूरमपास्ता स
द्विजानां दैनिकी क्रिया, तत एव दुर्दैवाद्विजा धर्मशास्त्रपरिशिलने
मन्दोत्साहाः समभवन् ।

मा चैव धर्मशास्त्रावहेलनं भवेद्विजाश्च भूयोऽपि धर्मशास्त्राध्ययनाध्या
पनादिना स्वर्णाश्रमाचारं पालयन्तृपदिशन्तु च तदधिकारिण इति
धियातिस्वरूपमूल्यतो वशिष्ठाद्यष्टादशस्मृतिग्रन्थमेनं विक्रेतुमुद्युक्तोऽहं
सविनयं निवेदयामि सर्व एव धार्मिकाद्विजादयोऽमूल्यमेनं ग्रन्थं समुपलभ्य
विशीर्णप्रायं धर्मं गोपायन्तु तमुद्धरन्तु च सुकृतप्रसू सपत्स्विनीमिमां
भारतभुवामिति ।

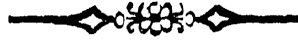
श्रीकृष्णदासात्मजः

क्षेमराजां मुम्बईस्थः

“श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टीम् यन्त्रालयाधिपतिः ।

श्रीः ।

अथाष्टादशस्मृति विषयानुक्रमणिका ।



| विषयाः । | पृष्ठांकाः । | विषयाः । | पृष्ठांकाः । |
|--------------------------------|--------------|------------------------------------|--------------|
| अत्रिस्मृतिः १. | | इष्टापूर्णवर्णनम्, यमादि- | |
| लोकहिताय ऋषीणां धर्मविष- | | निरूपणं च ... ६ | |
| यकप्रश्नं श्रुत्वा अत्रिमह | | पुत्रप्रशंसनम्, आहारशुद्धि- | |
| र्विप्रणीतस्य स्मृतिनाम | | कथनं च ... ७ | |
| कधर्मशास्त्रस्य प्रारंभः, | | पमादात्संध्योल्लंघने प्रायश्चि | |
| स्मृतिश्रवणफलं च ... १ | | तम् उच्छिष्टाद्यन्नभोजने | |
| स्वकर्मानुष्ठानतो लोकप्रियत्वं | | प्रायश्चित्तम् ... ८ | |
| वर्णचतुष्टयस्य कर्म | | शवदूषितगृहशुद्धिनिरूपणम् ९ | |
| वृत्तिकथनं च ... २ | | सूतकनिर्णयः ... १० | |
| वर्णचतुष्टयस्य पातित्यकारक- | | परिवेदनदोषाभावनिरूपणम् १२ | |
| क्रियाकथनम् ... ३ | | महापातकनाशनातिकृच्छादि- | |
| राज्ञः परमहितकरक्रिया- | | कथनम् ... १३ | |
| निरूपणम्, मलशुद्धि- | | स्त्रीशूद्राणां पतनकरकर्म | |
| निरूपणम्, ब्राह्मण- | | कथनम् ... १५ | |
| लक्षणकथनं च ४ | | भोजने निषिद्धपात्राणि ... १७ | |
| शौचादिलक्षणम्, उक्तलक्षण- | | षड् भिक्षुकाः, रजकादीनाम- | |
| लक्षितस्य द्विजस्य पुन- | | न्नभक्षणे प्रायश्चित्तम् १८ | |
| र्जन्माभावः, ब्राह्मणैक- | | दूषितान्नभक्षणे प्रायश्चित्तम् १९ | |
| कर्तव्येष्टापूर्तफलं च | | मलेच्छादिसंपर्के प्रायश्चित्तम् २० | |

(६) अष्टादशस्मृति विषयानुक्रमणिका ।

| विषयः । | पृष्ठांकाः । | विषयः । | पृष्ठांकाः । |
|----------------------------------|--------------|----------------------------------|--------------|
| स्त्रीणां सदा दूषणाभावः ... | २१ | मौनस्थानानि, मौनफलं | |
| मद्यसंपर्कदूषितस्य जलादेः | | कथनं च ... | ३४ |
| शोधनम् ... | २२ | नानाविधदानफळानि ... | ३५ |
| ब्रह्मदण्डहतानां आत्मघाति- | | दानयोग्यब्राह्मणकथनम् ... | ३६ |
| नश्च अशौचादिविचारः | २३ | श्राद्धकालाः, श्राद्धदानप्रशं- | |
| गोदनेने प्रायश्चित्तम् ... | २४ | सनं तत्फलं च ... | ३८ |
| पयसः शुद्धिकरणम् ... | २५ | दशविधा ब्राह्मणाः ... | ३९ |
| स्पृष्टास्पृष्टदोषविचारः ... | २६ | पूजनानर्हद्विजनिरूपणम् .. | ४१ |
| ब्राह्मणस्य शूद्रोदकपाने प्राय- | | अत्रिस्मृत्युक्तधर्मनिर्णयश्रवण- | |
| श्चित्तम् ... | २७ | फलम् ... | ४२ |
| पतितान्नचांडालीगमनादि | | | |
| प्रायश्चित्तम् ... | २८ | | |
| पशुवेश्यादिगमने प्रायश्चित्तम् | २९ | | |
| रजस्वलानां परस्परस्पर्शादौ | | | |
| प्रायश्चित्तम् ... | ३० | | |
| शत्रुब्रह्महत्याप्रायश्चित्तम्, | | | |
| बिडालाशुच्छिष्टान्नभो- | | | |
| जने खरादियानगमे च | | | |
| प्रायश्चित्तम् ... | ३१ | | |
| अभक्ष्यान्नभक्षणे प्रायश्चित्तम् | ३२ | | |
| भ्रमंगलपदार्थसेवनादिनिषेधः | ३३ | | |
| | | विष्णुस्मृतिः २. | |
| | | अध्यायः १. | |
| | | ऋषीणां विष्णवे धर्मविषयक- | |
| | | प्रश्नः ... | ४३ |
| | | विष्णुप्रणीतधर्मेषु गर्भाधानादि- | |
| | | संस्काराः .. | ४४ |
| | | उपनयनानंतरं ब्रह्मचारी- | |
| | | नियमाः ... | ४५ |

अष्टादशस्मृतिविषयानुक्रमणिका ।

(७)

| विषयाः । | पृष्ठांकाः । | विषयाः । | पृष्ठांकाः । |
|---|--------------|--|--------------|
| अध्यायः २. | | अध्यायः ४. | |
| गृहस्थधर्माणां संक्षेपतो निर्णयः ४६ | | वेस्तरेण गृहिणः सदाचार- निरूपणम् ... ६३ | |
| अध्यायः ३. | | अध्यायः ५. | |
| वानप्रस्थधर्मनिरूपणम् ४८ | | वानप्रस्थधर्माः ७१ | |
| अध्यायः ४. | | अध्यायः ६. | |
| यतिधर्मनिरूपणम् ... ५० | | चतुर्थाश्रमधर्मप्रणयनम् ७१ | |
| अध्यायः ५. | | अध्यायः ७. | |
| सामान्यतो वर्णचतुष्टयस्य धर्मकथनम् ... ५३ | | संक्षेपेण योगशास्त्रसारकथ- नम् ... ७५ | |
| हारीतस्मृतिः ३. | | औशनसीस्मृतिः ४. | |
| अध्यायः १. | | वर्णचतुष्टयतः प्रतिलोमानु- लोमविधिनोत्पन्नानां वृत्ति- धर्माणां संक्षेपेण कथनम् ७८ | |
| हारीतस्य मुनिभिः सह संवादे द्विजाचारः ५६ | | आंगिरसस्मृतिः ५. | |
| अध्यायः २. | | वर्णानामानुपूर्व्येण प्रायश्चित्त- तविधेः कथा ... ८४ | |
| क्षत्रियादीनामाचारकथनम् ५९ | | | |
| अध्यायः ३. | | | |
| वपनीतस्य गुरुकुलेषु वसतो ब्रह्मराचारः ... ६१ | | | |

(८) अष्टादशस्मृति विषयानुक्रमणिका ।

| विषयाः । | पृष्ठांकाः । | विषयाः । | पृष्ठांकाः |
|---|--------------|---|------------|
| यमस्मृतिः ६. | | प्रतिघर्णं प्रायश्चित्तम् १ | |
| महापातकोपपातकादीनां वर्ण- क्रमेण संक्षेपतः प्राय- श्चित्तविधिकथनम् ९२ | ९२ | अध्यायः ५. | |
| आपस्तंबस्मृतिः ७. | | चांडालस्पर्शे उच्छिष्टाशनादौ अथ प्रायश्चित्तम् ... ११ | ११ |
| अध्यायः १. | | अध्यायः ६. | |
| आपस्तंबऋषिं प्रति प्रमादा- दकामतो बालगवादीनां विपत्तिदाने कथं निष्कृ- तिरिति मुनिकृतप्रश्नः १०३ | १०३ | नीलीवस्त्रसंबन्धेन प्रायश्चित्तम् ११ | ११ |
| अध्यायः २. | | अध्यायः ७. | |
| जलशोधनप्रकारः १०६ | १०६ | रजस्वलाशुद्धि निरूपणम् ११ | ११ |
| अध्यायः ३. | | अध्यायः ८. | |
| भक्षानतोंऽयजतिगृहनिवासे गृहपतेः प्रायश्चित्तम् बाल वृद्धादीनां पापनिवार- णाय प्रायश्चित्तव्यवस्था- निरूपणम् ... १०८ | १०८ | कांस्यादिपात्रशुद्धिः शूद्रास्त्र- सेवनतः शुद्धिकथनम् ११६ | ११६ |
| अध्यायः ४ | | अध्यायः ९. | |
| चांडालकूपभां पु जलपाने | | भुंजानस्य शुद्धस्त्रवणे प्राय- श्चित्तम्, भलेह्यापेयाभक्ष्य- रेतोमूत्रादीनां भक्षणे प्रायश्चित्तम् ... ११८ | ११८ |
| | | अध्यायः १०. | |
| | | क्षमाशीलस्य क्रोधरहितस्या- वश्यं मोक्षः ... १२३ | १२३ |

अष्टादशस्मृति विषयानुक्रमणिका । (९)

| विषयाः । | पृष्ठांकाः । | विषयाः । | पृष्ठांकाः । |
|----------------------------------|--------------|--------------------------------|--------------|
| संवर्तस्मृतिः ८. | | तृतीयः खण्डः | |
| ब्रह्मचारिणोऽवश्यकर्तव्य- | | वृद्धिश्राद्धविधानकथनम् | १५२ |
| कथनम् ... | १२५ | चतुर्थः खण्डः । | |
| गृहधर्मिणः कर्तव्यधर्मप्रणय- | | पिंडदानादिविधिकथनम् | १५४ |
| नम् ... | १२८ | पंचमः खण्डः । | |
| तृतीयचतुर्थाश्रमयोः संक्षेपतो | | वृद्धिश्राद्धकरणेन क्रियमाण- | |
| धर्मकथनम् ... | १३५ | संस्कारसंगता ... | १५५ |
| ब्रह्मव्रतस्य प्रायश्चित्तनिरूप- | | षष्ठः खण्डः । | |
| णम् ... | १३६ | अग्न्याधानकालनिर्णयः | १५७ |
| सुरापानादिमहापातकोपपा- | | सप्तमः खण्डः । | |
| तकानां शुद्धिः ... | १३७ | अरणिद्वयविचारः ... | १५८ |
| कात्यायनस्मृतिः ९. | | अष्टमः खण्डः । | |
| प्रथमः खण्डः । | | अरणितोऽग्नेर्नृणांकासनप्रकारः, | |
| यज्ञोपवीतनिर्माणप्रकारः, | | सुवप्रमाणम्, समित्प्रमाण- | |
| वृद्धौ पूज्यानां देवतानां | | कथनञ्च ... | १६० |
| नामानि, वसोधारावृद्धि- | | नवमः खण्डः । | |
| श्राद्धसंबन्धविचारः | १४९ | होमकालकथनम्, असमि- | |
| द्वितीयः खण्डः । | | द्धाग्नौ होमे दोषकथनञ्च | १६२ |
| वृद्धिश्राद्धे विशेषकथनम् | १५१ | दशमः खण्डः । | |
| | | प्रातःस्नानसंबन्धेन जह्यादीनां | |
| | | विचारः ... | १६४ |

(१०) अष्टादशस्मृतिविषयानुक्रमणिका ।

| विषयाः । | पृष्ठांकाः । | विषयाः । | पृष्ठांकाः |
|-----------------------------|--------------|----------------------------|------------|
| एकादशः खण्डः । | | एकोनविंशः खण्डः । | |
| संध्योपासनविधिनिरूपणम् | १६६ | पतिप्रवासेऽग्निपरिचरणे | |
| द्वादशः खण्डः । | | स्त्रीणामधिकारस्तासां | |
| पितृतर्पणाविधिः | ... १६८ | महत्त्ववर्णनप्रसंगेन | |
| त्रयोदशः खण्डः । | | अग्निसेविनः प्रशंसनम् | १८१ |
| पञ्चमहायज्ञविधिकथनम् | १६९ | विंशः खण्डः । | |
| चतुर्दशः खण्डः । | | पुनराधानाग्निसमारोपणा- | |
| पृथिव्यादिभ्योऽन्नप्रदानम्, | | दिविच्चारः | ... १८४ |
| अग्निप्रार्थनादिकञ्च | १७० | एकविंशः खण्डः । | |
| पंचदशः खण्डः । | | गृहपतिमरणे तद्दाहव्यवस्था- | |
| ब्रह्मणे दक्षिणादानमानम् | | दिकथनम् | ... १८६ |
| आज्यस्थाल्यादिमानं च | १७२ | द्वाविंशः खण्डः । | |
| षोडशः खण्डः । | | शवस्पृशां श्मशानात्पुनः | |
| अग्न्याहार्याग्रहायण्यादिषु | | परावर्तनम्... | ... १८८ |
| पितृयज्ञादिकथनम् | १७५ | त्रयोविंशः खण्डः । | |
| सप्तदशः खण्डः । | | आहिताग्नेः परदेशमरणे | |
| पितृयज्ञविधिनिरूपणम् | १७७ | व्यवस्थाकथनम्, आहिताग्नि- | |
| अष्टादशः खण्डः । | | स्त्रीमरणे दाहादिकथनञ्च | १८९ |
| दर्शपौर्णमासादिषु होमादि- | | चतुर्विंशः खण्डः । | |
| विचारः | ... १८० | सूतके कर्मणां त्यागः, | |
| | | षोडशश्राद्धविधिश्च | १९१ |

अष्टादशस्मृतिविषयानुक्रमणिका । (११)

विषयाः । पृष्ठांकाः ।

पचविंशः खण्डः ।

ब्रह्मइडादियुक्तानां बहिः
संस्काराभावे कर्तव्य
विधिः ब्रह्मचारिव्रतकर्तव्य-
तातीतानां संस्काराणां
प्रायश्चित्तपुरःसरं पुनः
संस्कार कथनम् ... १९२

षड्विंशः खण्डः ।

वृषोत्सर्जनादौ समशनीय-
चरोर्निवापादिकथनम् १९४

सप्तविंशः खण्डः ।

अन्वाहार्यविधिकथनम् १९६

अष्टाविंशः खण्डः ।

उपाकृत्य उपगमने अध्यय-
नादिविचारः १९८

एकोनविंशः खण्डः ।

दर्भकूर्चतः पशोः स्त्रोतसां

क्षालनादिविचारः

२००

विषयाः । पृष्ठांकाः ।

बृहस्पतिस्मृतिः १०.

बृहस्पतिदेवेऽद्रसंवादे भूदा-
नस्यातिप्रशंसनम् २०३
पुत्रकर्तव्येषु मध्ये गयागमनस्य
नीलवृषोत्सर्जनस्य च पितृ-
सन्तोषकरत्वकथनम् २०५

स्वदत्तपरदत्तायाभूमेर्हरणादा-
भूतसंप्लवं नरके निवासः २०७

ब्रह्मस्वहरणेन सर्वस्वविनाशः २०८

पात्रेषु गोहिरण्यवस्त्रान्नम-
हीतिलवितरणात्सर्वपात-
कविनाशः वापीकुपतडा-
गोद्यानोपवनपुनः संस्क-

रणे मुक्तिलाभः, अन्नदान-
प्रशंसनञ्च ... २०९

ब्रह्मघातकविचारः, फलमूला-
शनादिव्रतफलकथनञ्च २१०

पाराशरस्मृतिः ११.

अध्यायः १.

व्यासेन सह मुनीनां बहुरि-

(१२) अष्टादशस्मृति विषयानुक्रमणिका ।

विषयाः ।

पृष्ठांकाः ।

काश्रमे पराशरस्मीपगम-
नम्, पराशरं प्रति ध्यास-
स्य कलौ चातुर्वर्ण्यसंपा-
दनीयधर्मविषयकः प्रश्नः
षट्कर्मकारिणो देवताति-
थिपूजकस्य सदा सौख्य-
लाभः, अतिथिस्तुकार
कथनम्, सामान्यतोवर्ण-
चतुष्टयस्य कर्मकथनम् २१२

अध्यायः २.

कलावावश्यकसाधारण
वर्णचतुष्टयगृहस्थाचार
कथनम् ... २२०

अध्यायः ३.

जननमरणाशौचशुद्धिकथनं
वर्णचतुष्टयस्य ... २२२

अध्यायः ४.

उद्वंधनेन स्त्रीपुरुषयोर्मरणे
बहुकालं नरकं निवासः
गवादिहतानां द्विजशवानां
दाहेतप्तं कृच्छ्रं तप्तकृच्छ्र-

विषयाः ।

पृष्ठांकाः ।

लक्षणम् परिवेदनादिदो-
षस्तच्छुद्धिविचारश्च २२७

अध्यायः ५.

वृकश्वानादिदष्टानां शुद्धि-
कथनम्, चंडालादिहत-
ब्राह्मणदेहस्पर्शे प्रायश्चि-
त्तम्, आहिताग्नेर्देशांतर-
मरणे व्यवस्था २३१

अध्यायः ६.

संक्षेपेण प्राणिहत्यानिष्कृति-
निरूपणम् ... २३३

अध्यायः ७.

दार्वादिपात्रशुद्धिः, वृषली-
पतित्वे दोषमुक्त्वा प्राय-
श्चित्तकथनम्, रजस्वला-
स्पर्शादिषु प्रायश्चित्तकथ-
नश्च ... २४१

यायः ८.

बंधनयोः गवामकामतो

विषयाः । पृष्ठांकाः । विषयाः । पृष्ठांकाः ।

मृत्यौ प्रायश्चित्तम् २४६

अध्यायः ९.

संरक्षणार्थं गवां रोधबन्धना-
दिभिर्नाशे न दोषः, अन्य-
प्रकारेण गोवधे प्रायश्चि-
त्तम्, प्रायश्चिताकरणे
नरकप्राप्तिश्च ... २५१

अध्यायः १०.

अगम्यागमने चातुर्वर्ण्येषु
हिता निष्कृतिः ... २५८

अध्यायः ११.

अग्नेर्ध्वरेतो गोमांसादिभक्षणे
प्रायश्चित्तम्, शूद्राद्यन्न-
भोजने प्रायश्चित्तम् २६२

अध्यायः १२.

विण्मूत्रादिभक्षणे प्रायश्चि-
त्तम्, ब्रह्महत्यादि-
प्रायश्चित्तम् २६८

व्यासस्मृतिः १२.

अध्यायः १.

वेदोक्तकर्मप्रचारभूमिकथ-
नम्, षोडशसंस्कारसंज्ञा-
कालकथनम्, ब्रह्मचारि-
धर्मनिरूपणञ्च २७७

अध्यायः २.

द्वितीयाश्रमवतो द्विजस्या-
चारवर्णनम्, स्त्रीधर्मनिरू-
पणम्, पतिव्रतास्त्रीपरि-
त्यागे दोषकथनञ्च २८१

अध्यायः ३.

गृहस्थस्य नित्यनैमित्तिक-
काम्यकर्मनिरूपणम् २८७

अध्यायः ४.

गृहस्थाश्रमप्रशंसनम्, वर्णानां
दानधर्मनिरूपणञ्च २९४

शंखस्मृतिः १३.

अध्यायः १.

वर्णचतुष्टयस्य कर्मनिरूपणम् ३०३

(१४) अष्टादशस्मृतिविषयानुक्रमणिका ।

विषयः । पृष्ठांकाः ।

अध्यायः २.

संस्कारकालनिर्णयः ३०६

अध्यायः ३.

पित्रोपनीतस्य द्विजस्य वेद-
स्वीकरणव्रतनियमकथनम् ३०५

अध्यायः ४.

भट्टविधिविवाहकथनम्, वर्ण-
चतुष्टयस्य स्त्रीस्वीकरणम् ३०७

अध्यायः ५.

पंचसूनानिवृत्तये पंचमहाय-
ज्ञकथनम्, भतिथिपूजना-
ग्निहोत्राभ्यां गृहधर्मिणः
साफल्यकथनञ्च ३०९

अध्यायः ६.

द्विजस्य वयसस्त्वृतीयभागे
वनाश्रयणं तद्धर्मकथनञ्च ३११

विषयः । पृष्ठांकाः ।

अध्यायः ७.

ब्रह्मप्राप्तये चतुर्थाश्रमस्वी-
कारोत्तरं सदाचारनिर्णयः,
अष्टांगयोगसाधनक-
थनम्, ध्यानयोगनिरूप-
णञ्च ३१२

अध्यायः ८.

नित्यनैमित्तिकादिषड्विध
स्नाननिरूपणम् ३१५

अध्यायः ९.

विधिपूर्वकं क्रियास्नाननिरू-
पणम् ३१७

अध्यायः १०.

शुभकराचमनक्रियाविधि-
कथनम् ३१९

अध्यायः ११.

शतरुद्रियत्रिसुपर्णगोसूक्त
जपफलकथनम् ३२१

अध्यायः १२.

गायत्रीमंत्रजपफलकथनम् ३२३

विषयाः ।

पृष्ठांकाः ।

अध्यायः १३

तर्पणविधिनिरूपणम्

३१४

अध्यायः १४

दैवे कर्मणि ब्राह्मणपरीक्षणं
पित्र्यकर्मण्यवश्यं परीक्ष-
णम्, पंक्तिदूषकब्राह्मण-
कथनपूर्वकं पंक्तिपावनत्व-
कथनम्, श्राद्धकालदेशा-
दिकथनञ्च

३२६

अध्यायः १५

सपिंडानां जननमरणशौच-
विचारः

३२९

अध्यायः १६.

पात्रशौचकर्मनिरूपणम्,
मूत्रपुरीषकरणोत्तरं शुद्धि-
कथनम्

३३२

अध्यायः १७.

ब्राह्मणगोघ्नसुरापादीनां शुद्ध्यर्थं
प्रायश्चित्तविधिः

३३५

विषयाः ।

पृष्ठांकाः

अध्यायः १८.

अघमर्षणप्राजापत्यादिविवर-
णम्

३४२

लिखितस्मृतिः १४.

द्विजातीनां सामान्यधर्मेषु
इष्टापूर्तकथनम्, श्राद्ध-
कालदेशविचारः सामा-
न्यतो द्विजाचारकथनम्,
प्रायश्चित्तविधिकथनञ्च

३४४

दक्षस्मृतिः १५.

अध्यायः १.

द्विजपुत्रस्याष्टवर्षपर्यन्तं भक्ष्या-
भक्ष्यादिषु दोषाभाव-
कथनम्, तदूर्ध्वमाश्रम-
राहित्ये दोषकथनम्,
आश्रमलक्षणकथनञ्च

३५३

अध्यायः २.

दिने दिने प्रातरुत्थाय
द्विजस्यावश्यकर्तव्यानां
कथनम्

विषयाः ।

पृष्ठांकाः ।

अध्यायः ३.

सुधेषदानकर्मविकर्मादि
विचारनिरूपणम्

३६१

अध्यायः ४.

अनुकूलकलत्रस्य गार्हस्थ्यं
सुखकरमिति स्त्रीविष-
यकविचारः

३६५

अध्यायः ५.

शौचाशौचविषये संक्षेपेण
विचारः

३६७

अध्यायः ६.

जन्ममृत्युनिमित्तकाशौच-
निर्णयः

३६९

अध्यायः ७.

षडंगयोगस्य संक्षेपतो विव-
रणम्

३७१

गौतमस्मृतिः १६.

अध्यायः १.

वर्णत्रयस्योपनयनकालमौजी-

विषयाः ।

पृष्ठांकाः ।

दंडादिविचारः, गुरोः सका-

शाद्वह्यग्रणहनियमकथनञ्च ३७८

अध्यायः २.

उपनयनात्पूर्वं शौचाचारनिय-
माभावकथनम्, उपनयनोत्तरे
प्रतिपालनीय

नियमकथनञ्च

३८०

अध्यायः ३.

नैष्ठिकब्रह्मचारिणो नियम-
कथनम्

३८२

अध्यायः ४.

अनुलोमप्रतिलोमोत्पन्नवर्ण-
चतुष्टयजातिनिरूपणम्

३८३

अध्यायः ५.

दारपरिग्रहोत्तरं कर्तव्यधर्म-
कथनम्

३८४

अध्यायः ६.

प्रभिवादनविषये विचारः

३८५

अध्यायः ७.

आपत्कल्पो ब्राह्मणस्य निरू-
प्यते

३८६

| विषयाः । | पृष्ठांकाः । | विषयाः । | पृष्ठांकाः । |
|--|--------------|---|--------------|
| अध्यायः ८. | | अध्यायः १३. | |
| गर्भाधानादिचत्वारिंशत्सं- स्कारयुक्तस्य द्विजस्य कृतापराधस्यापि न वध- बंधादिदंडाधिकारः तस्यैव ब्रह्मणः सालोक्यादि- लाभश्च | ३८७ | साक्षिप्रसंगेन सत्यासत्य- कथनविचारः | ३९६ |
| अध्यायः ९. | | अध्यायः १४. | |
| दारपरिग्रहोत्तरं द्विजस्याव- श्यपालनीयव्रतकथनम् | ३८८ | वर्णचतुष्टयस्याशौचविचारः | ३९७ |
| अध्यायः १०. | | अध्यायः १५. | |
| वर्णचतुष्टयस्योपजीविका- कथनम् | ३९१ | श्राद्धविचारः | ३९८ |
| अध्यायः ११. | | अध्यायः १६. | |
| राज्ञः सदा शक्तिमतः सदा- चारनिरूपणम् | ३९३ | अध्ययनानध्यायविचारः | ३९९ |
| अध्यायः १२. | | अध्यायः १७. | |
| गुरुस्य दंडादिविचारः | ३९४ | ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहान्नभोज- नादिविचारः | ४०१ |
| | | अध्यायः १८. | |
| | | स्त्रीणां सदाचारविचारः | ४०२ |
| | | अध्यायः १९. | |
| | | निषिद्धाचरणप्रायश्चित्त- विचारः | ४०३ |

विषयाः ।

पृष्ठांकाः ।

अध्यायः २०.

चतुष्पष्टियातनास्थानेषु

दुःखान्पनुभूयात्रोत्पन्नानां

चिह्नादिविचारः ४०४

अध्यायः २१.

पंक्तिबाह्यद्विजादिकथनम् ४०५

अध्यायः २२.

पतितनिरूपणम् ... ४०६

अध्यायः २३.

ब्राह्मणहनने प्रायश्चित्तविचारः ४०७

अध्यायः २४.

सुरापानादिप्रायश्चित्तनिरूपणम् ... ४०८

अध्यायः २५.

रहस्यप्रायश्चित्तनिरूपणम् ४१०

अध्यायः २६.

अवकीर्णिनो विचारः ४११

अध्यायः २७.

कृच्छ्रव्याख्यानम् ... ४१२

विषयाः ।

पृष्ठांकाः ।

अध्यायः २८.

चांद्रायणविधिनिरूपणम् ४१३

अध्यायः २९.

ऋक्थविभाजनिरूपणम् ४१४

शातातपस्मृतिः १७.

अध्यायः १.

पातकान्न रकादिषु यातना

उपभुज्य भूमावुत्पन्नानां

देहचिह्ननिरूपणम् ४१७

अध्यायः २.

ब्रह्महा नरकादियातना उप-

भुज्य कुष्ठी भवति तस्य

प्रायश्चित्तम्, तथैव गवा-

दिहननेष्वपि प्रायश्चित्तानि ४१०

अध्यायः ३.

सुरापानादिसभापक्षपाति-

पर्यन्तं प्रायश्चित्तम् ४२६

विषयाः ।

पृष्ठांकाः ।

अध्यायः ४.

कुलघ्रादिनानाविधद्रव्यचोर-
पर्यन्तं प्रायश्चित्तम्

४२८

अध्यायः ५.

मातृगाम्पादिनिषिद्धस्त्रीगा-
मिनां प्रायश्चित्तम्

४३१

अध्यायः ६.

अश्वसूकरशृङ्गादिद्वितानां
गतिहीनानां संततिनाश-
कत्वात् तदुद्धाराय प्राय-
श्चित्तविधिनिर्ूपणम्

४३६

वासिष्ठस्मृतिः १८.

अध्यायः १.

पुरुषनिःश्रेयसार्थं धर्म-
जिज्ञासा, धर्माचरणे आर्या-
वर्तप्रदेशस्य महत्त्वकथ-
नम्, ब्राह्मणप्राशस्त्य-
कथनञ्च

४४१

अध्यायः २.

वर्णत्रयस्य द्विजत्वकथनम्,
अभयनाशकत्वकथनं
जीविकाविचारकथनञ्च

४४३

विषयाः ।

पृष्ठांकाः ।

अध्यायः ३.

वेदमनधीयानस्य द्विजस्य
शूद्रवत् स्थितिः, आततायी
ब्राह्मणश्चेत्तद्धनने न दोषः,
धर्मकथने अधिकारिणः,
आचमनप्रकारः, भूम्या-
दीनां शुद्धिनिर्ूपणञ्च

४४४

अध्यायः ४.

संस्कारविशेषतश्चातुर्वर्ण्य-
करणम्, देवतातिथि
पूजायां पशुवधे न दोषः,
अशौचविचारश्च

४४५

अध्यायः ५.

स्त्रीणां स्वातंत्र्याभावकथ-
नम्, रजस्वलास्त्रीणां
नियमाः

४४६

अध्यायः ६.

आचारप्रशंसनम्, सामा-
न्यतो ब्राह्मणयाचारकथनञ्च

४४७

अध्यायः ७.

सामान्यतो ब्रह्मचर्यविधि-
निर्ूपणम्

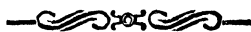
४४८

| विषयाः । | पृष्ठांकाः । | विषयाः । | पृष्ठांकाः । |
|---|--------------|---|--------------|
| अध्यायः ८. | | अध्यायः १६. | |
| विवाहयोग्यस्त्रीकथनम् विवा- हानंतरं पालनीयधर्माणां संक्षेपेन निरूपणम् | ४५८ | राजव्यवहारसाक्षिप्रभृति- विचारः | ४७९ |
| अध्यायः ९. | | अध्यायः १७. | |
| वानप्रस्थधर्माणां संक्षेपेन वर्णनम् | ४६० | पुत्रजननात्पितृऋणमोचन तत्संबन्धेन द्वादशपुत्रकथ- नम्, दायग्रहीतृविचारश्च | ४७६ |
| अध्यायः १०. | | अध्यायः १८. | |
| यतिनियमनिरूपणम् | ४६० | मातिलोभ्येनोत्पन्नानां चंडा- लादीनां विचारः, शूद्रस्य धर्मोपदेशानर्हत्वादि- विचारश्च | ४८० |
| अध्यायः ११. | | अध्यायः १९. | |
| षट्कर्मणो द्विजस्यातिथि- भोजनविचारः श्राद्धविचारः द्विजानामुपनयनकालदंडा- जिनवस्त्रभिक्षादिविचारश्च | ४६२ | संक्षेपेन राज्ञो धर्मनिरूपणम् | ४८१ |
| अध्यायः १२. | | अध्यायः २०. | |
| स्नातकव्रतानां निरूपणम् | ४६६ | संक्षेपतो ब्रह्मघ्रादीनां प्राय- श्चित्तनिरूपणम् | ४८३ |
| अध्यायः १३. | | अध्यायः २१. | |
| स्वाध्यायोपाकर्मनिरूपणम् | ४६८ | वर्णत्रयस्य ब्राह्मणीगमन उभयोः प्रायश्चित्तविधि- कथनम् | ४८६ |
| अध्यायः १४. | | | |
| भोक्ष्याभोक्ष्यविषये विचारः | ४७० | | |
| अध्यायः १५. | | | |
| पुत्रदानप्रतिग्रहविचारः | ४७२ | | |

श्रीः ।

अष्टादशस्मृतयः ।

श्रीयोगिजनवल्लभाय नमः ।



अथ अत्रिस्मृतिः १.

दुताग्निहोत्रमासीनमग्निं वेदविदां वरम् ॥

सर्वशास्त्रविधिज्ञं तमृषिभिश्च नमस्कृतम् ॥ १ ॥

नमस्कृत्य च ते सर्व इदं वचनमब्रुवन् ॥

हितार्थं सर्वलोकानां भगवन्कथयस्व नः ॥ २ ॥

अत्रिरुवाच ॥

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञा यन्मे पृच्छथ संशयम् ॥

तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ ३ ॥

सर्वतीर्थान्युपस्पृश्य सर्वान्देवान्प्रणम्य च ॥

जप्त्वा तु सर्वसूक्तानि सर्वशास्त्रानुसारतः ॥ ४ ॥

सर्वपापहरं दिव्यं सर्वसंशयनाशनम् ॥

चतुर्णामपि वर्णानामग्निः शास्त्रमकल्पयत् ॥ ५ ॥

ये च पापकृतो लोके ये चान्ये धर्मदूषकाः ॥

सर्वपापैः प्रमुच्यन्ते श्रुत्वेदं शास्त्रमुत्तमम् ॥ ६ ॥

तस्मादिदं वेदविद्भिरध्येतव्यं प्रयत्नतः ॥

शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सद्वृत्तेभ्यश्च धर्मतः ॥ ७ ॥

अकुलीने ह्यसद्वृत्ते जडे शूद्रे शठे द्विजे ॥

एतेष्वेव न दातव्यमिदं शास्त्रं द्विजोत्तमैः ॥ ८ ॥

एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत् ॥

पृथिव्यां नास्ति तद्व्यं यद्वत्त्वा ह्यनृणी भवेत् ॥ ९ ॥

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिमन्यते ॥

शुनां योनिशतं गत्वा चाण्डालेष्वभिजायते ॥ १० ॥

वेदं गृहीत्वा यः कश्चिच्छास्त्रं चैवावप्रन्यते ॥

स सद्यः पशुतां याति संभवानेकविंशतिम् ॥ ११ ॥

स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे संतोऽपि मानवाः ॥

प्रिया भवन्ति लोकस्य स्वं स्वे कर्मण्युपस्थिताः ॥ १२ ॥

कर्म विप्रस्य यजनं दानमध्ययनं तपः ॥

प्रतिग्रहोऽध्यापनं च याजनं चेति वृत्तयः ॥ १३ ॥

क्षत्रियस्यापि यजनं दानमध्ययनं तपः ॥

शस्त्रोपजीवनं भूतरक्षणं चेति वृत्तयः ॥ १४ ॥

दानमध्ययनं वार्ता यजनं चेति वै विशः ॥

शूद्रस्य वार्ता शुश्रूषा द्विजानां कारुकर्म च ॥ १५ ॥

तदेतत्कर्माभिहितं संस्थिता यत्र वर्णिनः ॥
 बहुमानमिह प्राप्य प्रयांति परमां गतिम् ॥ १६ ॥
 ये व्यपेताः स्वधर्माच्च परधर्मेष्ववस्थिताः ॥
 तेषां शास्तिकरो राजा स्वर्गलोके महीयते ॥ १७ ॥
 आत्मीये संस्थितो धर्मे शूद्रोऽपि स्वर्गमश्नुते ॥
 परधर्मो भवेत्प्राज्यः सुरूपपरदारवत् ॥ १८ ॥
 वध्यो राज्ञा स वै शूद्रो जपहोमपरश्च यः ॥
 यतो राष्ट्रस्य हन्तासौ यथा वह्नेश्च वै जलम् ॥ १९ ॥
 प्रतिग्रहोऽध्यापनं च तथाऽविक्रेयविक्रयः ॥
 याज्यं चतुर्भिरप्येतैः क्षत्रविद्वत्पतनं स्मृतम् ॥ २० ॥
 सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥
 ज्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयी ॥ २१ ॥
 अव्रताश्चानधीयाना यत्र भैक्ष्यचरा द्विजाः ॥
 तं ग्रामं दंडयेद्राजा चौरभक्तदंडवत् ॥ २२ ॥
 विद्वद्राज्यमविद्रांसो येषु राष्ट्रेषु भुञ्जते ॥
 तैर्ब्रह्मवृष्टिर्मिच्छन्ति महद्वा जायते भयम् ॥ २३ ॥
 ब्राह्मणान्वेदविदुषः सर्वशास्त्रविशारदान् ॥
 तत्र वर्षति पर्जन्यो यत्रैतान्पूजयन्नृपः ॥ २४ ॥
 त्रयो लोकास्त्रयो वेदा आश्रमाश्च त्रयोऽमयः ॥

१ शास्तिः शासनम् । २ तेषु राष्ट्रेषु ।

एतेषां रक्षणार्थाय संसृष्टा ब्राह्मणाः पुरा ॥ २५ ॥

उभे संध्ये समाधाय मौनं कुर्वति ते द्विजाः ॥

दिव्यवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके मंहीयते ॥ २६ ॥

य एवं कुरुते राजा गुणदोषपरीक्षणम् ॥

यशःस्वर्गे नृपत्वं च पुनः कोशं च सोऽर्जयेत् ॥ २७ ॥

दुष्टस्य दंडः सुजनस्य पूजा न्यायेन कोशस्य च संप्रवृद्धिः ॥

अपक्षपातोऽर्थिषु राष्ट्ररक्षा पंचैव यज्ञाः कथिता नृपाणाम् ॥ २८ ॥

यत्प्रजापालने पुण्यं प्राप्नुवंतीह पार्थिवाः ॥

नतु क्रतुसहस्रेण प्राप्नुवंति द्विजोत्तमाः ॥ २९ ॥

अलाभे देवस्वातानां ह्रदेषु सरसीषु च ॥

उद्धृत्य चतुरः पिंडान्पारक्ये स्नानमाचरेत् ॥ ३० ॥

वसा शुक्रमसृङ्मज्जा मूत्रं विष् कर्णविण्मखाः ॥

श्लेष्मास्थि दूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥ ३१ ॥

षण्णां षण्णां क्रमेणैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः ॥

मृद्गारिभिश्चपूर्वेषामुत्तरेषां तु वारिणा ॥ ३२ ॥

शौचमंगलानायासा अनसूयाऽस्पृहा दमः ॥

लक्षणानि च विप्रस्य तथा दानं दयापि च ॥ ३३ ॥

अभक्ष्यपरिहारश्च संसर्गश्चाप्यनिन्दितैः ॥

आचारेषु व्यवस्थानं शौचमित्याभिधीयते ॥ ३४ ॥

प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तविवर्जनम् ॥

एताद्धि मंगलं प्रोक्तमृषिभिर्धर्मवादिभिः ॥ ३५ ॥

शरीरं पीड्यते येन शुभेन ह्यशुभेन वा ॥

अत्यंतं तन्न कुर्वीत अनायासः स उच्यते ॥ ३६ ॥

न गुणान्गुणिनो हन्ति स्तौति चान्यान्गुणानपि ॥

न हसेच्चान्यदोषांश्च साऽनसूया प्रकीर्तिता ॥ ३७ ॥

यथोत्पन्नेन कर्तव्यः संतोषः सर्ववस्तुषु ॥

न स्पृहेत्परदारेषु साऽस्पृहा च प्रकीर्तिता ॥ ३८ ॥

बाह्य आध्यात्मिके वापि दुःख उत्पादिते परैः ॥

न कुप्यति न चाहन्ति दम इत्यभिधीयते ॥ ३९ ॥

अहन्यहनि दातव्यमदीनेनांतरात्मना ॥

स्तोकादपि प्रयत्नेन दानमित्याभिधीयते ॥ ४० ॥

परस्मिन्बन्धुवर्गे वा मित्रे द्वेष्ये रिपौ तथा ॥

आत्मवद्वार्तितव्यं हि दयेषा परिकीर्तिता ॥ ४१ ॥

यश्चैतैर्लक्षणैर्युक्तो गृहस्थोऽपि भवेद्विजः ॥

स गच्छति परं स्थानं जायते नेह वै पुनः ॥ ४२ ॥

इष्टापूर्तं च कर्तव्यं ब्राह्मणेनैव यत्नतः ॥

इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्तं मोक्षो विधीयते ॥ ४३ ॥

अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव पालनम् ॥

आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते ॥ ४४ ॥

वापीकूपतडागादिदेवतायतनानि च ॥

अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते ॥ ४५ ॥

इष्टापूर्ते द्विजातीनां सामान्ये धर्मसाधने ॥

अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मे न वैदिके ॥ ४६ ॥

यमान्सेवत सततं न नित्यं नियमान्बुधः ॥

यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान्भजन् ॥ ४७ ॥

आनृशंस्यं क्षमा सत्यमहिंसा दानमार्जवम् ॥

प्रीतिः प्रसादो माधुर्यं मार्दवं च यमा दश ॥ ४८ ॥

शौचमिज्या तपो दानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहौ ॥

व्रतमौनोपवासं च स्नानं च नियमा दश ॥ ४९ ॥

प्रतिनिधिं कुशमयं तीर्थवारिषु मज्जति ॥

यमुद्दिश्य निमज्जेत अष्टभागं लभेत सः ॥ ५० ॥

मातरं पितरं वापि भ्रातरं सुहृदं गुरुम् ॥

यमुद्दिश्य निमज्जेत द्वादशांशफलं भवेत् ॥ ५१ ॥

अपुत्रेणैव कर्तव्यः पुत्रप्रतिनिधिः सदा ॥

पिंडोदकक्रियाहेतोर्यस्मात्तस्मात्प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥

पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम् ॥

ऋणमस्मिन्संनयति अमृतत्वं च गच्छति ॥ ५३ ॥
 जातमात्रेण पुत्रेण पितृणामनृणी पिता ॥
 तदह्नि शुद्धिमाप्नोति नरकात्त्रायते हि सः ॥ ५४ ॥
 एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥
 यजते चाश्वमेधं च नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ ५५ ॥
 कांक्षन्ति पितरः सर्वे नरकांतरभीरवः ॥
 गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति ॥ ५६ ॥
 फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् ॥
 गयशीर्षं पदाक्रम्य मुच्यते ब्रह्महत्याया ॥ ५७ ॥
 भैहानदीमुपस्पृश्य तर्पयेत्पितृदेवताः ॥
 अक्षयं लभते लोकान्कुलं चैव समुद्धरेत् ॥ ५८ ॥
 शंकास्थाने समुत्पन्ने भक्ष्यभोज्याविवर्जिते ॥
 आहारशुद्धिं वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ ५९ ॥
 अक्षारलवणं रौक्षं पिबेद्ब्राह्मी सुवर्चलाम् ॥
 त्रिरत्रं शंखपुष्पीं वा ब्राह्मणः पयसा सह ॥ ६० ॥
 मद्यभांडे द्विजः कश्चिदज्ञानात्पिबते जलम् ॥
 प्रायश्चित्तं कथं तस्य मुच्यते केन कर्मणा ॥ ६१ ॥
 पालाशबिल्वपत्राणि कुशान्पद्मान्युदुंबरम् ॥
 काथयित्वा पिबेदापस्त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ ६२ ॥

सायं प्रातस्तु यः संध्यां प्रमादाद्विक्रमेत्सकृत् ॥
 गायत्र्यास्तु सहस्रं हि जपेत्सनात्वा समाहितः ॥ ६३ ॥
 रोगाक्रीतोऽथवाऽऽयासात् स्थितः स्नानजपाद्वहिः ॥
 ब्रह्मकूर्चं चरेद्भक्त्या दानं दत्त्वा विशुद्ध्यति ॥ ६४ ॥
 गवां शृंगोदके स्नात्वा महानद्युपसंगमे ॥
 समुद्रदर्शने चापि व्यालदष्टः शुचिर्भवेत् ॥ ६५ ॥
 वृकश्चानशृगालैस्तु यदि दष्टस्तु ब्राह्मणः ॥
 हिरण्योदकसंमिश्रं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ६६ ॥
 ब्राह्मणी तु शुना दष्टा जंबुकेन वृक्केण वा ॥
 उदितं ग्रहनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्भवेत् ॥ ६७ ॥
 सव्रतस्तु शुना दष्टस्त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥
 सघृतं यावकं प्राश्य घृतशेषं समापयेत् ॥ ६८ ॥
 मोहात्प्रमादात्संल्लोभाद्व्रतभंगं तु कारयेत् ॥
 त्रिरात्रेणैव शुद्ध्येत पुनरेव व्रती भवेत् ॥ ६९ ॥
 ब्राह्मणानां यदुच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो द्विजः ॥
 दिनद्वयं तु गायत्र्या जपं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ ७० ॥
 क्षत्रियात्रं यदुच्छिष्टमश्नात्यज्ञानतो द्विजः ॥
 त्रिरात्रेण भवेच्छुद्धिर्यथा क्षत्रे तथा विशि ॥ ७१ ॥

१ अतिलंघयेत् । २ पंचगव्यप्राशनपूर्वकं जपविधातप्रत्यवायपरिहारार्थं

अभोज्यान्नं तु भुक्तान्नं स्त्रीशूद्रोच्छिष्टमेव वा ॥
 जग्ध्वा मांसमभक्ष्यं च सप्तरात्रं यवान्पिबेत् ॥ ७२ ॥
 असंस्पृश्येन संस्पृष्टः स्नानं तेन विधीयते ॥
 तस्य चोच्छिष्टमश्नीयात्षण्मासान्कृच्छ्रमाचरेत् ॥ ७३ ॥
 अज्ञानात्प्राश्य विष्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव वा ॥
 पुनः संस्कारमर्हति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ ७४ ॥
 वपनं मेखला दंडं भैक्ष्यचर्यं व्रतानि च ॥
 निवर्तते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि ॥ ७५ ॥
 गृहशुद्धिं प्रवक्ष्यामि अंतःस्थशवदूषिताम् ॥
 प्रत्याज्यं मृन्मयं भांडं सिद्धमन्नं तथैव च ॥ ७६ ॥
 गृहान्निष्क्रम्य तत्सर्वं गोमयेनोपलेपयेत् ॥
 गोमयेनोपलिप्याथ छागेनाव्रापयेत्पुनः ॥ ७७ ॥
 ब्राह्मैर्मन्त्रैस्तु पूतं तु हिरण्यकुशवारिभिः ॥
 तेनैवाभ्युक्ष्य तद्वेश्म शुध्यते नात्र संशयः ॥ ७८ ॥
 राजन्यैः श्वपचैर्वापि बलाद्विचलितो द्विजः ॥
 पुनः कुर्वीत संस्कारं पश्चात्कृच्छ्रत्रयं चरेत् ॥ ७९ ॥
 शुना चैव तु संस्पृष्टस्तस्य स्नानं विधीयते ॥
 तदुच्छिष्टं तु संप्राश्य यत्नेन कृच्छ्रमाचरेत् ॥ ८० ॥
 अतः परं प्रवक्ष्यामि सूतकस्य विनिर्णयम् ॥

प्रायश्चित्तं पुनश्चैव कथयिष्याम्यतः परम् ॥ ८१ ॥

एकाहाच्छुद्ध्यने विप्रो योऽग्निवेदसमान्वितः ॥

अथात्केवलवेदस्तु निर्गुणो दशभिर्दिनैः ॥ ८२ ॥

व्रतिनः शास्त्रपतस्य आहिताग्नेस्तथैव च ॥

राज्ञां तु सूतकं नास्ति यस्य चेच्छांति ब्राह्मणाः ॥ ८३ ॥

ब्राह्मणो दशरात्रेण द्वादशाहेन भूमिपः ॥

वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ८४ ॥

सपिंडानां तु सर्वेषां गोत्रजः सप्तपौरुषः ॥

पिंडांश्चोदकदानं च शावशौचं तथानुगम् ॥ ८५ ॥

चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षडहः पंचमे तथा ॥

षष्ठे चैव त्रिरात्रं स्यात्सप्तमे अहमेव वा ॥ ८६ ॥

मृतसूतके तु दासीनां पत्नीनां चानुलोमिनाम् ॥

स्वामितुल्यं भवेच्छौचं मृते भर्तारि यौनिकम् ॥ ८७ ॥

शवस्पृष्टं तृतीये तु सचैलं स्नानमाचरेत् ॥

चतुर्थे सप्तभिक्षं स्यादेष शावविधिः स्मृतः ॥ ८८ ॥

एकत्र संस्कृतानां तु मातृणामेकभोजिनाम् ॥

स्वामितुल्यं भवेच्छौचं विभक्तानां पृथक्पृथक् ॥ ८९ ॥

उष्ट्रीक्षीरमवीक्षीरं पक्वान्नं मृतसूतके ॥

पाचकान्नं नवश्राद्धं भुक्त्वा चांदायणं चरेत् ॥ ९० ॥

सूतकान्नमधर्माय यस्तु प्राश्नाति मानवः ॥

त्रिरात्रमुपवासः स्यादेकरात्रं जले वसेत् ॥ ९१ ॥
 महायज्ञविधानं तु न कुर्यान्मृतजन्मनि ॥
 होमं तत्र प्रकुर्वीत शुष्कान्नेन फलेन वा ॥
 बालस्त्वंतर्द्दशाहे तु पंचत्वं यदि गच्छति ॥ ९२ ॥
 सद्य एव विशुद्धिः स्यान्न प्रेतं नैव सूतकम् ॥ ९३ ॥
 कृतचूडे प्रकुर्वीत उदकं ण्डिमेव च ॥
 स्वधाकारं प्रकुर्वीत नामोच्चारणमेव च ॥ ९४ ॥
 ब्रह्मचारी यतिश्चैव मंत्रे पूर्वकृते तथा ॥
 यज्ञे विवाहकाले च सद्यः शौचं विधीयते ॥ ९५ ॥
 विवाहोत्सवयज्ञेषु अंतरा मृतसूतके ॥
 पूर्वसंकलितार्थस्य न दोषश्चात्रिब्रवीत् ॥ ९६ ॥
 मृतसञ्जननोर्द्धे तु सूतकादौ विधीयते ॥
 स्पर्शनाचमनाच्छुद्धिः सूतिकां चेन्न संस्पृशेत् ॥ ९७ ॥
 पंचमेऽहनि विज्ञेयं संस्पर्शक्षत्रियस्य तु ॥
 सप्तमेऽहनि वैश्यस्य विज्ञेयं स्पर्शनं बुधैः ॥ ९८ ॥
 शनौऽहनि शूद्रस्य कर्तव्यं स्पर्शनं बुधैः ॥
 शनिश्चैव तृशुद्धेः स्यात्सूतके मृतके तथा ॥ ९९ ॥
 व्याधितस्य कदर्यस्य ऋणग्रस्तस्य सर्वदा ॥
 क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ॥ १०० ॥
 व्यसनासक्ताचित्तस्य परार्थीनस्य नित्यतः ॥

श्राद्धत्यागविहानिष्य भस्मांतं सूतकं भवेत् ॥ १०१ ॥
 द्वे कृच्छ्रे परिवित्तेस्तु कन्यायाः कृच्छ्रमेव च ॥
 कृच्छ्रातिकृच्छ्रं मातुः स्यात्पितुः सांतपनंकृतम् ॥ १०२ ॥
 कुब्जवामनषण्डेषु गद्गदेषु जडेषु च ॥
 जातयंधे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥ १०३ ॥
 क्लीबे देशांतरस्थे च पतिते व्रजितेऽपि वा ॥
 योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदने ॥ १०४ ॥
 पिता पितामहो यस्य अग्रजो वापि कस्यचित् ॥
 अग्निहोत्राधिकार्यस्ति न दोषः परिवेदने ॥ १०५ ॥
 भार्यामरणपक्षे वा देशांतरगतेऽपि वा ॥
 अधिकारी भवेत्पुत्रस्तथा पातकसंयुगे ॥ १०६ ॥
 ज्येष्ठो भ्राता यदा नष्टो नित्यं रोगसमन्वितः ॥
 अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शंखस्य वचनं यथा ॥ १०७ ॥
 नाम्नयः परिविंदन्ति न वेदा न तपांसि च ॥
 न च श्राद्धं कनिष्ठो वै विना चैवाभ्यनुज्ञया ॥ १०८ ॥
 तस्माद्धर्मं सदा कुर्याच्छ्रुतिस्मृत्युदितं च यत् ॥
 नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यच्च स्वर्गस्य साधनम् ॥ १०९ ॥
 एकैकं वर्द्धयेन्नित्यं शुक्ले कृष्णे च द्वासेत् ॥
 अमावास्यां न भुंजीत एष चांशयणो विधिः ॥ ११० ॥
 एकैकं ग्रासमश्रीयाद्भयहाणि त्रीणि पूर्ववत् ॥

व्यहं परं च नाश्रीयादातिकृच्छ्रं तदुच्यते ॥
 इत्येतत्कथितं पूर्वमहापातकनाशनम् ॥ १११ ॥
 वेदाभ्यासरतं क्षान्तं महायज्ञक्रियापरम् ॥
 न स्पृशंतीह पापानि महापातकजान्यपि ॥ ११२ ॥
 वायुभक्षो दिवा तिष्ठेद्रात्रिं नीत्वाप्सु सूर्यदृक् ॥
 जप्त्वा सहस्रं गायत्र्याः शुद्धिर्ब्रह्मवधादते ॥ ११३ ॥
 पद्मोदुंबरविल्वाश्च कुशाश्चत्थपलाशकाः ॥
 एतेषामुदकं पीत्वा पर्णकृच्छ्रं तदुच्यते ॥ ११४ ॥
 पंचगव्यं च गोक्षीरं दधि मूत्रं शकृद्घृतम् ॥
 जग्ध्वा परेऽह्युपवसेत्कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥ ११५ ॥
 पृथक्सांतपनैर्द्रव्यैः षडहः सोपवासकः ॥
 सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासांतपनं स्मृतम् ॥ ११६ ॥
 व्यहं सायं व्यहं प्रातरुपहं भुंक्ते त्वयाचितम् ॥
 व्यहं परं च नाश्रीयात्प्राजापत्यो विधिः स्मृतः ॥ ११७ ॥
 सायं तु द्वादश ग्रासाः प्रातः पंचदश स्मृताः ॥
 अयाचितैश्चतुर्विंशं परैस्त्वनशनं स्मृतम् ॥ ११८ ॥
 कुक्कुटांडप्रमाणं स्याद्यावद्वास्य विशेषमुखे ॥
 एतद्ग्रासं विजानीयाच्छुद्धयर्थं कायशोधनम् ॥ ११९ ॥
 व्यहमुष्णं पिबेदापस्त्यहमुष्णं पिबेत्पयः ॥
 व्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो दिनत्रये ॥ १२० ॥

षट्पलानि पिबेदापस्त्रिपलं तु पयः पिबेत् ॥

पलमेकं तु वै सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते ॥ १२१ ॥

अयं तु दधिना भुंक्ते अयं भुंक्ते च सर्पिषा ॥

क्षीरेण तु अयं भुंक्ते वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥ १२२ ॥

त्रिपलं दधि क्षीरेण पलमेकं तु सर्पिषा ॥

एतदेव व्रतं पुण्यं वैदिकं कृच्छ्रमुच्यते ॥ १२३ ॥

एकभुक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च ॥

उपवासेन चैकेन पादकृच्छ्रं प्रकीर्तितम् ॥ १२४ ॥

कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसा दिवसानेकविंशतिम् ॥

द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ॥ १२५ ॥

पिण्याकश्चामतक्रांतुसक्तूनां प्रतिवासरम् ॥

एकैकमुपवासः स्यात्सौम्यकृच्छ्रः प्रकीर्तितः ॥ १२६ ॥

एषां त्रिरात्रमभ्यासादेकैकस्य यथाक्रमम् ॥

तुलापुरुष इत्येष ज्ञेयः पंचदशाह्निकः ॥ १२७ ॥

कपिलायास्तु दुग्धाया धारोष्णं यत्पयः पिबेत् ॥

एष व्यासकृतः कृच्छ्रः श्वपाकमपि शोधयेत् ॥ १२८ ॥

निशायां भोजनं चैव तज्ज्ञेयं नक्तमव तु ॥

अनादिष्टेषु पापेषु चांद्रायणमथोदितम् ॥ १२९ ॥

अमिष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टैर्द्विगुणदक्षिणैः ॥

यत्फलं समवाप्नोति तथा कृच्छ्रैस्तपोधनाः ॥ १३० ॥

वेदाभ्यासरतः क्षांतो निरयं शास्त्राण्यवेक्षयेत् ॥

शौचमृद्धार्यभिरतो गृहस्थोऽपि हि मुच्यते ॥ १३१ ॥

उक्तमेतद्विजातीनां महर्षे श्रूयतामिति ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि स्त्रीशूद्रपतनानि च ॥ १३२ ॥

जपस्तपस्तीर्थयात्रा प्रवज्या भंगप्राधानम् ॥

देवताराधनं चैव स्त्रीशूद्रपतनानि षट् ॥ १३३ ॥

जीवद्भर्तरि या नारी उपोष्य व्रतचारिणी ॥

आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥ १३४ ॥

तथिस्तानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत् ॥

शंकरस्यापि विष्णोर्वा प्रयाति परमं पदम् ॥ १३५ ॥

जीवद्भर्तरि वामांगी मृते वापि सुदक्षिणे ॥

श्राद्धे यज्ञे विवाहे च पत्नी दक्षिणतः सदा ॥ १३६ ॥

सोमः शौचं ददौ तासां गंधर्वाश्च तथांगिराः ॥

पावकः सर्वमेध्यत्वं मेध्यत्वं योषितां सदा ॥ १३७ ॥

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते ॥

विद्यया याति विप्रत्वं श्रोत्रियस्त्रिभिरेव च ॥ १३८ ॥

वेदशास्त्राण्यधीते यः शास्त्रार्थं च निबोधयेत् ॥

तदासौ वेदविप्रोक्तो वचनं तस्य पावनम् ॥ १३९ ॥

एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद्विजोत्तमः ॥

स ज्ञेयः परमो धर्मो नाज्ञानामयुतायुतैः ॥ १४० ॥

पावका इव दीप्यन्ते जपहोमैर्द्विजोत्तमाः ॥
 प्रतिग्रहेण नश्यन्ति वारिणा इव पावकः ॥ १४१ ॥
 तान्प्रतिग्रहजान्दोषान्प्राणायामैर्द्विजोत्तमाः ॥
 नाशयन्ति हि विद्वांसो वायुर्मेघानिवांश्वरे ॥ १४२ ॥
 भुक्तमात्रो यदा विप्र आर्द्रपाणिस्तु तिष्ठति ॥
 लक्ष्मीर्बलं यश्चस्तेज आयुश्चैव प्रहायते ॥ १४३ ॥
 यस्तु भोजनशालायामासनस्थ उपस्पृशेत् ॥
 तच्चान्नं नैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ १४४ ॥
 पात्रोपरि स्थिते पात्रे यस्तु स्थाप्य उपस्पृशेत् ॥
 तस्पात्रं नैव भोक्तव्यं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ १४५ ॥
 अश्रद्धया च यदत्तं विप्रेभ्यो दैविके क्रतौ ॥
 न देवास्तृप्तिमाप्स्यन्ति दातुर्भवति निष्फलम् ॥ १४६ ॥
 हस्तं प्रक्षालयित्वा यः पिबेद्भुक्त्वा द्विजोत्तमः ॥
 तदन्नमसुरैर्भुक्तं निराशाः पितरो गताः ॥ १४७ ॥
 नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नास्ति मातुः परो गुरुः ॥
 नास्ति दानात्परं मित्रमिह लोके परत्र च ॥ १४८ ॥
 अपात्रेष्वपि यदत्तं दहत्यासप्तमं कुलम् ॥
 हव्यं देवा न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तथा ॥ १४९ ॥
 आयसने तु पात्रेण यदन्नमुपदीयते ॥
 श्वानविष्टास्रमं भुक्ते दाता च नरकं व्रजेत् ॥ १५० ॥

पैतलेन तु पात्रेण दीयमानं विचक्षणः ॥

न दद्याद्दामहस्तेन आयसेन कदाचन ॥ १५१ ॥

मृन्मयेषु च पात्रेषु यः श्राद्धे भोजयेत्पितॄन् ॥

अन्नदाता च भोक्ता च व्रजेतां नरकं च तौ ॥ १५२ ॥

अभावे मृन्मये दद्यादनुज्ञातस्तु तैर्द्विजैः ॥

तेषां वचः प्रमाणं स्याद्यदन्नं चातिरिक्तकम् ॥ १५३ ॥

सौवर्णायसताम्रेषु कांस्यरौप्यमयेषु च ॥

भिक्षादातुर्न धर्मोऽस्ति भिक्षुर्भुक्ते तु किल्बिषम् ॥ १५४ ॥

न च कांस्येषु भुंजीयादापद्यपि कदाचन ॥

मलाशाः सर्व एवैते यतयः कांस्यभोजनाः ॥ १५५ ॥

कांस्यकस्य च यत्पात्रं गृहस्थस्य तथैव च ॥

कांस्यभोजी यतिश्चैव प्राप्नुयात्किल्बिषं तयोः ॥ १५६ ॥

अत्राप्युदाहरन्ति ।

सौवर्णायसताम्रेषु कांस्यरौप्यमयेषु च ॥

भुंजन्भिक्षुर्न दुष्येत दुष्पेच्चैव परिग्रहे ॥ १५७ ॥

यतिहस्ते जलं दद्याद्भिक्षां दद्यात्पुनर्जलम् ॥

तद्भैक्षं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम् ॥ १५८ ॥

चरेन्माधुकरीं वृत्तिमपि म्लेच्छकुलादपि ॥

एकाग्रं नैव भोक्तव्यं बृहस्पतिसमो यदि ॥ १५९ ॥

THE KUPPUSWAMY SASTRI.

RESEARCH INSTITUTE.

24 B B ROAD, MADRAS.

अनापदि चरेद्यस्तु सिद्धं भैक्षं गृहे वसन् ॥
 दशरात्रं पिवेद्वज्रमापस्तु व्यहमेव च ॥ १६० ॥
 गोमूत्रेण तु संमिश्रं यावकं घृतपाचितम् ॥
 एतद्वज्रमिति प्रोक्तं भगवानत्रिब्रवीत् ॥ १६१ ॥
 ब्रह्मचारी यतिश्चैव विद्यार्थी गुरुपोषकः ॥
 अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च षडेते भिक्षुकाः स्मृताः ॥ १६२ ॥
 षण्मासान्कामयेन्मर्त्यो गुर्विणीमेव वै स्त्रियम् ॥
 आदंतजननादूर्ध्वमेवं धर्मो न हीयते ॥ १६३ ॥
 ब्रह्महा प्रथमं चैव द्वितीयं गुरुतरुणः ॥
 तृतीयं तु सुरापेयं चतुर्थं स्तेयमेव च ॥ १६४ ॥
 पापानां चैव संसर्गं पंचमं पातकं महत् ॥ १६५ ॥
 एषामेव विशुद्ध्यर्थं चरेत्कृच्छ्राण्यनुक्रमात् ॥
 त्रीणि वर्षाण्यकामश्चेद्ब्रह्महत्या पृथक्पृथक् ॥ १६६ ॥
 अर्द्धं तु ब्रह्महत्यायाः क्षत्रियेषु विधीयते ॥
 षड्भागो द्वादशश्चैव विदूश्चूद्रयोस्तथा भवेत् ॥ १६७ ॥
 त्रीन्मासान्नक्तमदनीयाद्भूमौ शयनमेव च ॥
 स्त्रीधाती शुद्ध्यतेऽप्येवं चरेत्कृच्छ्राब्दमेव वा ॥ १६८ ॥
 रजकः शैलुषश्चैव वेणुकर्मोपजीवनः ॥
 एतेषां यस्तु भुंक्ते वै द्विजश्चाद्रायणं चरेत् ॥ १६९ ॥

सर्वात्यजानां गमने भोजने संप्रवेशने ॥

पराकेण विशुद्धिः स्याद्भगवानत्रिब्रवीत् ॥ १७० ॥

चांडालभांडे यत्तोयं पीत्वा चैव द्विजोत्तमः ॥

गोमूत्रयावकाहारः सप्तषट्त्रिद्व्यहान्यपि ॥ १७१ ॥

संस्पृष्टं यस्तु पक्वान्नमंत्यजैर्वाप्युदक्यया ॥

अज्ञानाद्ब्राह्मणोऽश्रीयात्प्राजापत्यार्धमाचरेत् ॥ १७२ ॥

चांडालान्नं यदा भुंक्ते चातुर्वर्ण्यस्य निष्कृतिः ॥

चांद्रायणं चरेद्विप्रः क्षत्रः सांतपनं चरेत् ॥ १७३ ॥

षड्रात्रमाचरेद्वैश्यः पंचगव्यं तथैव च ॥

त्रिरात्रमाचरेच्छूद्रो दानं दत्त्वा विशुद्ध्यति ॥ १७४ ॥

ब्राह्मणो वृक्षमारूढश्चांडालो मूलसंस्पृशः ॥

फलान्यत्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १७५ ॥

ब्राह्मणान्समनुप्राप्य सवासाः स्नानमाचरेत् ॥

नक्तभोजी भवेद्विप्रो घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ १७६ ॥

एकं वृक्षं समारूढश्चांडालो ब्राह्मणस्तथा ॥

फलान्यत्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १७७ ॥

ब्राह्मणान्समनुज्ञाप्य सवासाः स्नानमाचरेत् ॥

अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १७८ ॥

एकशाखासमारूढश्चांडालो ब्राह्मणो यदा ॥

फलान्यत्ति स्थितस्तत्र प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १७९ ॥

त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥

स्त्रियो म्लेच्छस्य संपर्काच्छुद्धिः सांतपने तथा ॥ १८० ॥

तप्तकृच्छ्रं पुनः कृत्वा शुद्धिरेषाऽभिधीयते ॥ १८१ ॥

स वर्तेत यथा भार्या गत्वा म्लेच्छस्य संगताम् ॥

सचैलं स्नानमादाय घृतस्य प्राशनेन च ॥ १८२ ॥

संगृहीतामपत्यार्थमन्यैरपि तथा पुनः ॥ १८३ ॥

चंडालम्लेच्छश्चपचकपालव्रतधारिणः ॥

अकामतः स्त्रियो गत्वा पराकेण विशुद्ध्यते ॥ १८४ ॥

कामतस्तु प्रसूतां वा तत्समो नात्र संशयः ॥

स एव पुरुषस्तत्र गर्भो भूत्वा प्रजायते ॥ १८५ ॥

तैलाभ्यक्तो घृताभ्यक्तो विण्मूत्रं कुरुते द्विजः ॥

तैलाभ्यक्तो घृताभ्यक्तश्चंडालं स्पृशते द्विजः ॥

अहोरात्रोपोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १८६ ॥

केशकीटनखस्नायु अस्थिकण्टकमेव च ॥

स्पृष्ट्वा नशुदके स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ १८७ ॥

मत्स्यास्थि जंबुकास्थीनि नखशुक्तिकपर्दिकाः ॥

हेमत्तप्तं घृतं पीत्वा तत्क्षणादेव शुद्ध्यति ॥ १८८ ॥

गाकुले कंदुशालायां तैलचक्रेक्षुयंत्रयोः ॥

अमीमांस्यानि शैचानि स्त्रीणां च व्याधितस्य च ॥ १८९ ॥

१ स्वर्णतप्तमिति बहुत्र पाठः । २ मद्यस्वेदनशालायम् (भट्टी) इति

प्रविद्धायामित्यर्थः ।

न स्त्री दुष्यति जरेण ब्राह्मणो वेदकर्मणा ॥
 नापो मूत्रपुरीषाभ्यां नाग्निर्दहति कर्मणा ॥ १९० ॥
 पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोमगंधर्ववाहिभिः ॥
 भुञ्जते मानवाः पश्चान्न वा दुष्यन्ति कर्हिचित् ॥ १९१ ॥
 असवर्णस्तु यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषेच्यते ॥
 अशुद्धा सा भवेन्नारी यावद्गर्भं न मुञ्चति ॥ १९२ ॥
 विमुक्ते तु ततः शल्ये रजश्चापि प्रदृश्यते ॥
 तदा सा शुद्ध्यते नारी विमलं काञ्चनं यथा ॥ १९३ ॥
 स्वयं विप्रतिपन्ना या यदि वा विप्रतारिता ॥
 बलान्नारी प्रभुक्ता वा चौरभुक्ता तथापि वा ॥ १९४ ॥
 न त्याज्या दूषिता नारी न कामोऽस्या विधीयते ॥
 ऋतुकाल उपासीत पुष्पकालेन शुद्ध्यति ॥ १९५ ॥
 रजकश्चर्मकारश्च नटो बुरुड एव च ॥
 कैवर्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते अंत्यजाः स्मृताः ॥ १९६ ॥
 एतान्गत्वा स्त्रियो मोहाद्भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च ॥
 कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादेव तद्वयम् ॥ १९७ ॥
 सकृद्भुक्ता तु या नारी म्लेच्छैश्च पापकर्मभिः ॥
 प्राजापत्येन शुद्ध्येत ऋतुपस्रवणेन च ॥ १९८ ॥
 बलोद्धृता स्वयं वापि परप्रेरितया यदि ॥
 सकृद्भुक्ता तु या नारी प्राजापत्येन शुद्ध्यति ॥ १९९ ॥

प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत् ॥

न तेन तद्व्रतं तासां विनश्यति कदाचन ॥ २०० ॥

मद्यसंस्पृष्टकुंभेषु यत्तोयं पिबति द्विजः ॥

कृच्छ्रपादेन शुद्ध्येत पुनः संस्कारमर्हति ॥ २०१ ॥

अंत्यजस्थास्तु ये वृक्षा बहुपुष्पफलोपगाः ॥

उपभोग्यास्तु ते सर्वे पुष्पेषु च फलेषु च ॥ २०२ ॥

चंडालेन तु संस्पृष्टं यत्तोयं पिबति द्विजः ॥

कृच्छ्रपादेन शुद्ध्येत आपस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥ २०३ ॥

श्लेष्मोपानहविष्णूमूत्रस्त्रिरजोमद्यमेव च ॥

एभिः संदूषिते कूपे तोयं पीत्वा कथं विधिः ॥ २०४ ॥

एकं द्रव्यहं त्रयहं चैव द्विजातीनां विशोधनम् ॥

प्रायश्चित्तं पुनश्चैव नक्तं शूद्रस्य दापयेत् ॥ २०५ ॥

सद्यो वांते सचैलं तु विप्रस्तु स्नानमाचरेत् ॥

पर्युषिते त्वहोरात्रमतिरिक्ते दिनत्रयम् ॥ २०६ ॥

शिरःकंठोरुपादे च सुरया यस्तु लिप्यते ॥

दशषट्त्रितयैकाहं चरेदेवमनुक्रमात् ॥ २०७ ॥

अत्राप्युदाहंति ।

प्रमादान्मद्यपसुरां सकृत्पीत्वा द्विजोत्तमः ॥

गोमूत्रयावकाहारो दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥ २०८ ॥

मद्यपस्य निषादस्य यस्तु भुंक्ते द्विजोत्तमः ॥

न देवा भुञ्जते तस्य न पिबन्ति हविर्जलम् ॥ २०९ ॥

चितिभ्रष्टा तु या नारी ऋतुभ्रष्टा च व्याधिता ॥

प्राजापत्येन शुद्ध्येत ब्राह्मणानां तु भोजनात् ॥ २१० ॥

ये च प्रव्रजिता विप्राः प्रव्रज्यामिजलावहाः ॥

अनाशकान्निवर्तते चिकीर्षति गृहस्थितिम् ॥ २११ ॥

धारयन्त्रीणि कृच्छ्राणि चाद्रायणमथापि वा ॥

जातिकर्मादकं प्रोक्तं पुनः संस्कारमर्हति ॥ २१२ ॥

न शौचं नोदकं नाश्रु नापवादानुत्पन्ने ॥

ब्रह्मदण्डहतानां तु न कार्यं कटधारणम् ॥ २१३ ॥

स्नहं कृत्वा भयादिभ्यो यस्त्वेतानि समाचरेत् ॥

गोमूत्रयावकाहारः कृच्छ्रमेकं विशोधनम् ॥ २१४ ॥

वृद्धः शौचस्मृतेर्लुप्तः प्रत्याख्यातभिषक्क्रियः ॥

आत्मानं घातयेद्यस्तु भृगवग्न्यनशनांलुभिः ॥ २१५ ॥

तस्य त्रिरात्रमाशौचं द्वितीये त्वस्थिसंचयः ॥

तृतीये तूदकं कृत्वा चतुर्थे श्राद्धमाचरेत् ॥ २१६ ॥

यस्यैकापि गृहे नास्ति धेनुर्वत्सानुच्चारिणी ॥

मंगलानि कुतस्तस्य कुतस्तस्य तमःशयः ॥ २१७ ॥

अपि त्रिहातिवाहाभ्यां नासिकाभेदनेन वा ॥

नदीपर्वतसंरोधे मृते पादोनमाचरेत् ॥ २१८ ॥

अष्टागवं धर्महलं षड्गवं व्यावहारिकम् ॥

चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं गववध्यकृत् ॥ २१९ ॥

द्विगवं वाहयेत्पादं मध्याह्ने तु चतुर्गवम् ॥

षड्गवं तु त्रिपादोक्तं पूर्णहिस्त्वष्टभिः स्मृतम् ॥ २२० ॥

काष्ठलोष्टशिलागोघ्नः कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥

प्राजापत्यं चरेन्मृत्मा अतिकृच्छ्रं तु आयसः ॥ २२१ ॥

प्रायश्चित्तेन तच्छीर्णं कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥

अनदुत्सहितां गां च दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥ २२२ ॥

शरभोष्ट्रहयान्नागान्सिंहशार्दूलगर्दभान् ॥

हत्वा च शूद्रहत्यायाः प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ २२३ ॥

मार्जारगोधानकुलमंडूकांश्च पतत्रिणः ॥

हत्वा ऽप्यहं पिबेत्क्षीरं कृच्छ्रं वा पादिकं चरेत् ॥ २२४ ॥

चंडालस्य च संस्पृष्टं विण्मूत्रोच्छिष्टमेव वा ॥

त्रिरात्रेण विशुद्धं हि भुक्तोच्छिष्टं समाचरेत् ॥ २२५ ॥

वार्षीकूपतडागानां दूषितानां च शोधनम् ॥

उद्धरेत्षट्शतं पूर्णं पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २२६ ॥

अस्थिचर्मावसिक्तेषु खरश्चानादिदूषिते ॥

उद्धरेदुदकं सर्वं शोधनं परिमार्जनम् ॥ २२७ ॥

गोदोहने चर्मपुटे च तोयं यंत्राकरे कारुकाशिल्पिहस्ते ॥

स्त्रीबालवृद्धाचरितानि याव्यप्रत्यक्षदृष्टानि शुचीनि तानि ॥ २२८ ॥

प्राकाररोधे विषमप्रदेशे सेवानिवेशे भवनस्य दाहे ॥
 अवास्पयज्ञेषु महोत्सवेषु तेष्वेव दोषा न विकल्पनीयाः २२९ ॥
 प्रपास्वरण्ये घटकस्य कूपे द्रोण्यां जलं कोशविनिर्गतं च ॥
 श्वपाकचंडालपरिग्रहे तु पत्वा जलं पंचगव्येन शुद्धिः २३० ॥
 रेतोविण्मूत्रसंस्पृष्टं कौपं यदि जलं पिबेत् ॥
 त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यात्कुंभे सांतपनं तथा ॥ २३१ ॥
 क्लिन्नाभिन्नशवं यत्स्यादज्ञानाच्च तथोदकम् ॥
 प्रायश्चित्तं चरेत्पत्वा तप्तकृच्छ्रं द्विजोत्तमः ॥ २३२ ॥
 उष्ट्रीक्षीरं खरीक्षीरं मानुषीक्षीरमेव च ॥
 प्रायश्चित्तं चरेत्पत्वा तप्तकृच्छ्रं द्विजोत्तमः ॥ २३३ ॥
 वर्णबाह्येन संस्पृष्ट उच्छिष्टस्तु द्विजोत्तमः ॥
 पंचरात्रोपितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २३४ ॥
 शुचि गोतृप्तिकृत्तायं प्रकृतिस्थं महीगतम् ॥
 चर्मभांडस्थधाराभिस्तथा यंत्रोद्धृतं जलम् ॥ २३५ ॥
 चंडालेन तु संस्पृष्टे स्नानमेव विधीयते ॥
 उच्छिष्टस्तु च संस्पृष्टस्त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ २३६ ॥
 आकराद्गतवस्तूनि नाशुचीनि कदाचन ॥
 आकराः शुचयः सर्वे वर्जयित्वा सुरालयम् ॥ २३७ ॥
 भृष्टाभृष्टा यवाश्चैव तथैव चणकाः स्मृताः ॥
 खर्जूरं चैव कर्पूरमन्यद्भृष्टतरं शुचि ॥ २३८ ॥

अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रीभिराचरितानि च ॥
 गोकुले कंदुशालायां तैलयंत्रेक्षुयंत्रयोः ॥ २३९ ॥
 अदुष्टाः सततं धारा वातोद्धृताश्च रेणवः ॥ २४० ॥
 बहूनामेकलमानामेकश्चेदशुचिर्भवेत् ॥
 अशौचमेकमात्रस्य नेतरेषां कथंचन ॥ २४१ ॥
 एकपंकत्युपविष्टानां भोजनेषु पृथक्पृथक् ॥
 यद्येको लभते नीलीं सर्वे तेशुचयः स्मृताः ॥ २४२ ॥
 यस्य पट्टे पट्टसूत्रे नीलीरक्तो हि दृश्यते ॥
 त्रिरात्रं तस्य दातव्यं शेषाश्चैवोपवासिनः ॥ २४३ ॥
 आदित्येऽस्तमिते रात्रावस्पृश्यं स्पृशते यदि ॥
 भगवन्केन शुद्धिः स्यात्ततो ब्रूहि तपोधन ॥ २४४ ॥
 आदित्येऽस्तमिते रात्रौ स्पर्शहीनं दिवा जलम् ॥
 तेनैव सर्वशुद्धिः स्याच्छवस्पृष्टं तु वर्जयेत् ॥ २४५ ॥
 देशं कालं च यः शक्तिं पापं चावेक्षयेत्ततः ॥
 प्रायश्चित्तं प्रकल्प्यं स्याद्यस्यचोक्ता न निष्कृतिः ॥ २४६ ॥
 देवयात्राविवाहेषु यज्ञप्रकरणेषु च ॥
 उत्सवेषु च सर्वेषु स्पृष्टास्पृष्टं न विद्यते ॥ २४७ ॥
 आरनालं तथा क्षीरं कंदुकं दधि सक्तवः ॥
 स्नेहपक्वं च तक्रं च शूद्रस्यापि न दुष्यति ॥ २४८ ॥
 आर्द्रमांसं घृतं तैलं स्नेहाश्च फलसंभवाः ॥

अंत्यभाण्डस्थितास्त्वेते निष्क्रांताः शुद्धिमाप्नुयुः २४९ ॥
 अज्ञानात्पिबते तोयं ब्राह्मणः शूद्रजातिषु ॥
 अहोरात्रांषितः स्नात्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २५० ॥
 आहिताग्निस्तु यो विप्रो महापातकवान्भवेत् ॥
 अप्सु प्रक्षिप्य पात्राणि पश्चादग्निं विनिर्दिशेत् ॥ २५१ ॥
 यो गृहीत्वा विवाहार्थं गृहस्थ इति मन्यते ॥
 अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथापाको हि सस्मृतः ॥ २५२ ॥
 वृथापाकस्य भुञ्जानः प्रायश्चित्तं चरोद्विजः ॥
 प्राणानाशु त्रिरायम्य घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ २५३ ॥
 वैदिके लौकिके वापि हुतोच्छिष्टे जले क्षितौ ॥
 वैश्वेदेवं प्रकुर्वीत पंचसूनापनुत्तये ॥ २५४ ॥
 कनीयान्गुणवांश्चैव श्रेष्ठश्चेन्निर्गुणो भवेत् ॥
 पूर्वं पाणिं गृहीत्वा च गृह्याग्निं धारयेद्भुधः ॥ २५५ ॥
 ज्येष्ठश्चेद्यदि निर्दोषो गृह्याग्न्याग्निं यवीयकः ॥
 नित्यं नित्यं भवेत्तस्य ब्रह्महत्या न संशयः ॥ २५६ ॥
 महापातकिसंस्पृष्टः स्नानमेव विधीयते ॥
 संस्पृष्टस्य यदा भुक्ते स्नानमेव विधीयते ॥ २५७ ॥
 पतितैः सह संसर्गं मासार्द्धं मासमेव च ॥
 गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ २५८ ॥
 कुच्छार्द्धं पतितस्यैव सकृद्भुक्त्वा द्विजात्तमः ॥

अविज्ञानाच्च तद्भुक्त्वा कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ २५९ ॥

पतितानां यदा भुक्तं भुक्तं चंडालवेश्मनि ॥

मासार्द्धं तु पिबेद्वारि इति शातातपोऽब्रवीत् ॥ २६० ॥

गोब्राह्मणहतानां च पतितानां तथैव च ॥

अग्निना न च संस्कारः शंखस्य वचनं यथा ॥ २६१ ॥

यश्चंडालीं द्विजो गच्छेत्कथंचित्काममोहितः ॥

त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्येत प्राजापत्यानुपूर्वशः ॥ २६२ ॥

पतिताच्चात्रमादाय भुक्त्वा वा ब्राह्मणो यदि ॥

कृत्वा तस्य समुत्सर्गमातिकृच्छ्रं विनिर्दिशेत् ॥ २६३ ॥

अंत्यहस्तात्तु विक्षिप्तं काष्ठलोष्टतृणानि च ॥

न स्पृशेत्तु तथोच्छिष्टमहोरात्रं समाचरेत् ॥ २६४ ॥

चंडालं पतितं म्लेच्छं मद्यभाण्डं रजस्वलाम् ॥

द्विजः स्पृष्ट्वा न भुंजीत भुंजानो यदि संस्पृशेत् ॥ २६५ ॥

अतः परं न भुंजीत त्यक्त्वात्रं स्नानमाचरेत् ॥

ब्राह्मणैः समनुज्ञातस्त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥

सघृतं यावकं प्राश्य व्रतशेषं समापयेत् ॥ २६६ ॥

भुंजानः संस्पृशेद्यस्तु वायसं कुक्कुटं तथा ॥

त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यादथोच्छिष्टदृश्यहेण तु ॥ २६७ ॥

आरूढो नैष्ठिके धर्मे यस्तु प्रच्यवते पुनः ॥

चांद्रायणं चरेन्मसमिति शातातपोऽब्रवीत् ॥ २६८ ॥

पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते ॥
 गवां गमने मनुप्रोक्तं व्रतं चांद्रायणं चरेत् ॥ २६९ ॥
 अमानुषीषु गोवर्जमुदकयायामयोनिषु ॥
 रेतः सिकत्वा जले चैव कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ २७० ॥
 उदक्यां सूतिकां वापि अंत्यजां स्पृशते यदि ॥
 त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्याद्विधिरेष पुरातनः ॥ २७१ ॥
 संसर्गे यदि गच्छेच्चेदुदक्यया तथांत्यजैः ॥
 प्रायश्चित्ती स विज्ञेयः पूर्वं स्नानं समाचरेत् ॥ २७२ ॥
 एकरात्रं चरेन्मूत्रं पुरीषं तु दिनत्रयम् ॥
 दिनत्रयं तथा पाने मैथुने पंच सप्त वा ॥ २७३ ॥
 स्मृत्यंतरम् ।

अंगीकारेण ज्ञातीनां ब्राह्मणानुग्रहेण च ॥
 पूयन्ते तत्र पापिष्ठा महापातकिनोऽपि ये ॥ २७४ ॥
 भोजेन तु प्रसक्तानां प्राजापत्यं विधीयते ॥
 दंतकाष्ठे त्वहोरात्रमेष शौचविधिः स्मृतः ॥ २७५ ॥
 रजस्वला यदा स्पृष्टा श्वानचंडालवायसैः ॥
 निराहारा भवेत्तावत्स्नात्वा कालेन शुद्ध्यति ॥ २७६ ॥
 रजस्वला यदा स्पृष्टा उप्रजंबुकशंबैरः ॥
 पंचरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २७७ ॥

स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या ब्राह्मणी च या ॥
 एकरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २७८ ॥
 स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या क्षत्रियी च या ॥
 त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्याद्द्वयासस्य वचनं यथा ॥ २७९ ॥
 स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या वैश्यसंभवा ॥
 चतुरात्रं निराहारा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २८० ॥
 स्पृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मण्या शूद्रसंभवा ॥
 षड्रात्रेण विशुद्धिः स्याद्ब्राह्मणी कामकारतः ॥ २८१ ॥
 अकामतश्चरेद्ध्वं ब्राह्मणी सर्वतः स्पृशेत् ॥
 चतुर्णामपि वर्णानां शुद्धिरेषा प्रकीर्तिता ॥ २८२ ॥
 उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो ब्राह्मणो ब्राह्मणेन यः ॥
 भोजने मूत्रचारे च शंखस्य वचनं यथा ॥ २८३ ॥
 स्नानं ब्राह्मणसंस्पर्शं जपहोमौ तु क्षत्रिये ॥
 वैश्ये नक्तं च कुर्वीत शूद्रे चैव उपोषणम् ॥ २८४ ॥
 चर्मके रजके वैश्ये धीवरे नटके तथा ॥
 एतान्स्पृष्ट्वा द्विजो मोहादचापेत्ययतोऽपि सन् ॥ २८५ ॥
 एतैः स्पृष्ट्वा द्विजो नित्यमेकरात्रं पयः पिबेत् ॥
 उच्छिष्टैस्तैस्त्ररात्रं स्याद्घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ २८६ ॥
 यस्तुच्छायां श्वपाकस्य ब्राह्मणस्त्वधिगच्छति ॥
 तत्र स्नानं प्रकुर्वीत घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ २८७ ॥

अभिशस्तो द्विजोऽरण्ये ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥
 मासोपवासं कुर्वीत चांद्रायणमथापि वा ॥ २८८ ॥
 वृथा मिथ्यापयोगेन भ्रूणहत्याव्रतं चरेत् ॥
 अब्भक्षो द्वादशाहेन पराकेणैव शुद्ध्यति ॥ २८९ ॥
 शठं च ब्राह्मणं हत्वा शूद्रहत्याव्रतं चरेत् ॥
 निर्गुणं च गुणो हत्वा पराकं व्रतमाचरेत् ॥ २९० ॥
 उपपातकसंशुक्तो मानवो म्रियते यदि ॥
 तस्य संस्कारकर्ता च प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ २९१ ॥
 प्रभुं जानोऽतिसस्त्रेहं कदाचित्स्पृश्यते द्विजः ॥
 त्रिरात्रमाचरेन्नक्तैर्निःस्त्रेहमथवा.चरेत् ॥ २९२ ॥
 विडालकाकायुच्छिष्टं जग्ध्वा श्वनकुलस्य च ॥
 केशकीशवपन्नं च पिबेद्ब्राह्मो सुवर्चलाम् ॥ २९३ ॥
 उग्र्यानं समारुह्य खरयानं च कामतः ॥
 स्नात्वा विप्रो जितप्राणः प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ २९४ ॥
 सव्याहर्ति सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ॥
 त्रिः पठेद्वा यतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥ २९५ ॥
 शकृद्विगुणगोमूत्रं सर्पिर्दद्याच्चतुर्गुणम् ॥
 क्षीरमष्टगुणं देयं पंचगव्यं तथा दधि ॥ २९६ ॥
 पंचगव्यं पिबेच्छूद्रो ब्राह्मणस्तु सुरां पिबेत् ॥
 उभौ तौ तुल्यदोषौ च वसतो नरके चिरम् ॥ २९७ ॥

अजा गावो महिष्यश्च अमेध्यं भक्षयन्ति याः ॥

दुग्धं हव्ये च कव्ये च गोमयं न विलेपयेत् ॥२२८॥

ऊनस्तनी चाधीका वा या च स्वस्तनपायिनी ॥

तासां दुग्धं न होतव्यं हुतं चैवाहुतं भवेत् ॥ २२९ ॥

ब्राह्मौदने च सोमे च क्षीमन्तोन्नयने तथा ॥

जातश्राद्धे नवश्राद्धे भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ३०० ॥

राजात्रं हरते तेजः शूद्रात्रं ब्रह्मवर्चसम् ॥

स्वसुतान्नं च यो भुंक्ते स भुंक्ते पृथिवीमलम् ॥३०१॥

स्वसुता अप्रजाता चेन्नाश्रियात्तद्गृहे पिता ॥

भुंक्ते त्वस्या माययात्रं पूयं स नरकं व्रजेत् ॥ ३०२ ॥

अधीत्य चतुरो वेदान्सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥

नरेन्द्रभवने भुक्त्वा विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ३०३ ॥

नवश्राद्धे त्रिपक्षे च षण्मासे मासिकेऽब्दिके ॥

पतन्ति पितरस्तस्य यो भुंक्तेऽनादि द्विजः ॥ ३०४ ॥

चांद्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके तथा ॥

त्रिपक्षे चैव कृच्छ्रं स्यात्षण्मासे कृच्छ्रमेव च ॥३०५॥

आब्दिके पादकृच्छ्रं स्यादेकाहः पुनराब्दिके ॥

ब्रह्मचर्यमनाधाय मासश्राद्धेषु पर्वसु ॥ ३०६ ॥

द्वादशाहे त्रिपक्षेऽब्दे यस्तु भुंक्ते द्विजोत्तमः ॥

अत्रिस्मृतिः १.

(३३)

पातित पितरस्तस्य ब्रह्मलोके गता अपि ॥ ३०७ ॥
 पक्षे वा यदि वा मासे यस्य नाश्रंति वै द्विजाः ॥
 भुक्त्वा दुरात्मनस्तस्य द्विजश्चांदायणं चरेत् ॥ ३०८ ॥
 एकादशाहेहोरात्रं भुक्त्वा संचयने व्यहम् ॥
 उपोष्य विधिवद्विप्रः कूष्मांडौ जुहुयाद्घृतम् ॥ ३०९ ॥
 यत्र वेदध्वनिश्चांतं न च गोभिरलंकृतम् ॥
 यत्र बालैः परिवृतं श्मशानमिव तद्ब्रह्मम् ॥ ३१० ॥
 हास्येऽपि बहवो यत्र विना धर्मं वदंति हि ॥
 विनापि धर्मशास्त्रेण स धर्मः पावनः स्मृतः ॥ ३११ ॥
 हनिवर्णे च यः कुर्यादज्ञानादभिवादनम् ॥
 तत्र स्नानं प्रकुर्वीत घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ३१२ ॥
 समुत्पन्ने यदा स्नाने भुंक्ते वापि पिबेद्यदि ॥
 गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपेत्स्नात्वा समाहितः ॥ ३१३ ॥
 अंगुल्या दंतकाष्ठं च प्रत्यक्षं लवणं तथा ॥
 मृत्तिकामक्षणं चैव तुल्यं गोमांसभक्षणम् ॥ ३१४ ॥
 दिवा कपिस्थच्छायायां रात्रौ दधि शमीषु च ॥
 कार्पासं दंतकाष्ठं च विष्णोरपि श्रियं हरेत् ॥ ३१५ ॥
 शुर्पवातो नखाग्रांबु स्नानवस्त्रं घटोदकम् ॥
 मार्जनीरजः केशांबु देवतायतनोद्भवम् ॥ ३१६ ॥

तेनावगुण्डितं तेषु गंगांभःप्लुत एव सः ॥
 माजनीरेणुकेशांबु हन्ति पुण्यं दिवाकृतम् ॥ ३१७ ॥
 मृत्तिकाः सप्त न ग्राह्या वल्मीके ऊपरस्थले ॥
 अंतर्जले श्मशानान्ते वृक्षमूले सुरालये ॥ ३१८ ॥
 वृषभैश्च तथोत्खाते श्रेयस्कामैः सदा बुधैः ॥
 शुचा देशे तु संग्राह्या शर्कराश्माविवाजिता ॥ ३१९ ॥
 पुगीषे मैथुने होमे प्रस्त्रावे दंतधावन ॥
 स्नानभोजनजाप्येषु सदा मौनं सभाचरेत् ॥ ३२० ॥
 यस्तु संवत्सरं पूर्णं भुंक्ते मौनेन सर्वदा ॥
 युगकोटिसहस्रेषु स्वर्गलोके महीयते ॥ ३२१ ॥
 स्नानं दानं जपं होमं भोजनं देवतार्चनम् ॥
 प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ॥ ३२२ ॥
 सर्वस्वमपि यो दद्यात्पातयित्वा द्विजोत्तमम् ॥
 नाशयित्वा तु तत्सर्वं भ्रूणहत्याफलं लभेत् ॥ ३२३ ॥
 ग्रहणोद्वाहसंक्रांतौ स्त्रीणां च प्रसवे तथा ॥
 दानं नौमित्तिकं ज्ञेयं रात्रात्रपि प्रशस्यते ॥ ३२४ ॥
 क्षौमजं वाथ कार्पासं पट्टसूत्रमथापि वा ॥
 यज्ञोपवीतं यो दद्याद्वस्त्रदानफलं लभेत् ॥ ३२५ ॥
 कांस्यस्य भाजनं दद्याद्वृत्तपूर्णं सुशोभनम् ॥
 तथा भक्त्या विधानेन अग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ३२६ ॥

श्राद्धकाले तु यो दद्याच्छोभने च उपानहौ ॥
 स गच्छन्नन्यमार्गेऽपि अश्वदानफलं लभेत् ॥ ३२७ ॥
 तैलपात्रं तु यो दद्यात्संपूर्णं तु समाहितः ॥
 स गच्छति ध्रुवं स्वर्गे नरो नास्त्यत्र संशयः ॥ ३२८ ॥
 दुर्भिक्षे अन्नदाता च सुभिक्षे च हिरण्यदः ॥
 पानप्रदस्त्वरण्ये तु स्वर्गे लोके महीयते ॥ ३२९ ॥
 यावदर्धप्रसूता गौस्तावत्सा पृथिवी स्मृता ॥
 पृथिवी तेन दत्ता स्यादीदृशीं गां ददाति यः ॥ ३३० ॥
 तेनामयो हुताः सम्यक्पितरस्तेन तर्पिताः ॥
 देवाश्च पूजिताः सर्वे यो ददाति गवाह्निकम् ॥ ३३१ ॥
 जन्मप्रभृति यत्पापं मातृकं पैतृकं तथा ॥
 तत्सर्वं नश्यति क्षिप्रं वस्त्रदानान्न संशयः ॥ ३३२ ॥
 कृष्णाजिनं तु यो दद्यात्सर्वोपस्करसंयुतम् ॥
 उद्धरेन्नरकस्थानात्कुलान्प्रेकोत्तरं शतम् ॥ ३३३ ॥
 आदित्यो वरुणो विष्णुर्ब्रह्मा सोमो हुताशनः ॥
 शूलपाणिस्तु भगवानभिनन्दति भूमिदम् ॥ ३३४ ॥
 वालुकानां कृता राशिर्यावत्सप्तर्षिमंडलम् ॥
 गते वर्षशते चैव पलमेकं विशीयानि ॥ ३३५ ॥
 क्षयं च दृश्यते तस्य कन्यादाने न चैव हि ॥ ३३६ ॥

आतुरे प्राणदाता च त्रीणि दानफलानि च ॥

सर्वेषामेव दानानां विद्यादानं ततोऽधिकम् ॥ ३३७ ॥

पुत्रादिस्वजने दद्याद्विप्राय च न कैतवे ॥

सकामः स्वर्गमाप्नोति निष्कामो मोक्षमाप्नुयात् ॥ ३३८ ॥

ब्राह्मणे वेदविदुषि सर्वशास्त्रविशारदे ॥

मातृपितृपरे चैव ऋतुकालाभिगामिनि ॥ ३३९ ॥

शीलचात्रिसंपूर्णे प्रातःस्नानपरायणे ॥

तस्यैव दीयते दानं यदीच्छेच्छेय आत्मनः ॥ ३४० ॥

संपूज्यं विदुषो विप्रानन्येभ्योऽपि प्रदीयते ॥

तत्कार्यं नैव कर्तव्यं न दृष्टं न श्रुतं मया ॥ ३४१ ॥

अतःपरं प्रवक्ष्यामि श्राद्धकर्मणि ये द्विजाः ॥

पितृणामक्षयं दानं दत्तं येषां तु निष्फलम् ॥ ३४२ ॥

न हीनांगो न रोगी च श्रुतिस्मृतिविवर्जितः ॥

नित्यं चानृतवादी च तांस्तु श्राद्धे न भोजयेत् ३४३ ॥

हिंसारतं च कपटमुपगुह्य श्रुतं च यः ॥

किंकरं कपिलं काणं श्वित्रिणं रोगिणं तथा ॥ ३४४ ॥

बुध्मार्णं शीर्णकेशं पांडुरोगं जटाधरम् ॥

भारवाहिनं रौद्रं च द्विभार्यं वृषलीपतिम् ॥ ३४५ ॥

भेदकारी भवेच्चैव बहुपीडाकरोऽपि वा ॥

हीनातिरिक्तगात्रो वा तमप्यपनयेत्तथा ॥ ३४६ ॥

बहुभोक्ता दीनमुखो मत्सरी क्रूरबुद्धिमान् ॥

एतेषां नैव दातव्यः कदाचित्तु प्रतिग्रहः ॥ ३४७ ॥

अथ चेन्मंत्रविद्युक्तः शारीरैः पंक्तिदूषणैः ॥

अदूष्यं तं यमः प्राह पंक्तिपावन एव सः ॥ ३४८ ॥

श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां नयने द्वे प्रकीर्तिते ॥

काणः स्यादेकहीनोऽपि द्वाभ्यामंधः प्रकीर्तितः ॥ ३४९ ॥

न श्रुतिर्न स्मृतिर्यस्य न शीलं न कुलं यतः ॥

तस्यःश्राद्धं न दातव्यं त्वंधकस्यात्रिब्रवीत् ॥ ३५० ॥

तस्माद्वेदेन शास्त्रेण ब्राह्मण्यं ब्राह्मणस्य तु ॥

न चैकेनैव वेदेन भगवानत्रिब्रवीत् ॥ ३५१ ॥

योगस्यैर्लोचनैर्युक्तः पादाग्रं च प्रपश्यति ॥

लौकिकज्ञैश्च शास्त्रोक्तं पश्येच्चैषोऽधरोत्तरम् ॥ ३५२ ॥

वेदैश्च ऋषिभिर्गीतं दृष्टिमाञ्छास्त्रवेदवित् ॥

व्रतिनं च कुलीनं च श्रुतिस्मृतिरतं सदा ॥

तादृशं भोजयेच्छ्राद्धे पितॄणामक्षयं भवेत् ॥ ३५३ ॥

यावतो ग्रसते ग्रासान्पितॄणां दीप्ततेजसाम् ॥

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥ ३५४ ॥

नरकस्था विमुच्यन्ते ध्रुवं यांति त्रिविष्टपम् ॥
 तस्माद्विजं परीक्षेत श्राद्धकाले प्रयत्नतः ॥ ३५५ ॥
 न निर्वपति यः श्राद्धं प्रमीतपितृको द्विजः ॥
 इन्दुक्षये मासि मासि प्रायश्चित्ती भवेत्तु सः ॥ ३५६ ॥
 सूर्ये कन्यागते कुर्याच्छ्राद्धं यो न गृहाश्रमी ॥
 धनं पुत्राः कुलं तस्य पितृनिःश्वासपीडया ॥ ३५७ ॥
 कन्यागते सवितरि पितरो यांति तत्सुतान् ॥
 शून्या प्रेतपुरी सर्वा यावद्वृश्चिकदर्शनम् ॥ ३५८ ॥
 ततो वृश्चिकसंप्राप्तौ निराशाः पितरो गताः ॥
 पुनः स्वभवनं यांति शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥ ३५९ ॥
 पुत्रं वा भ्रातरं वापि दौहित्रं पौत्रकं तथा ॥
 पितृकार्ये प्रसक्ता ये ते यांति परमां गतिम् ॥ ३६० ॥
 यथा निर्मथनादग्निः सर्वकाष्ठेषु तिष्ठति ॥
 तथा संदृश्यते धर्मः श्राद्धदानान्न संशयः ॥ ३६१ ॥
 यः प्राप्नोति तदा सर्वं कन्यागते च गंगया ॥
 सर्वशास्त्रार्थगमनं सर्वतीर्थाविगाहनम् ॥ ३६२ ॥
 सर्वयज्ञफलं विद्याच्छ्राद्धदानान्न संशयः ॥ ३६३ ॥
 महापातकसंयुक्तो यो युक्तश्चोपपातकैः ॥

घनैर्मुक्तो यथा भानू राहुमुक्तश्च चंद्रमाः ॥ ३६४ ॥
 सर्वपापविनिर्मुक्तः संतापं च विलंघयेत् ॥
 सर्वसौख्यमयं प्राप्तः श्राद्धदानान्न संशयः ॥ ३६५ ॥
 सर्वेषामेव दानानां श्राद्धदानं विशिष्यते ॥
 मेरुतुल्यं कृतं पापं श्राद्धदानं विशोधनम् ॥ ३६६ ॥
 श्राद्धं कृत्वा तु मर्त्यो वै स्वर्गलोके महीयते ॥
 अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम् ॥ ३६७ ॥
 वैश्यस्य चान्नमेवाज्यं शूद्रान्नं रुधिरं भवेत् ॥
 एतत्सर्वं मयाऽऽख्यातं श्राद्धकाले समुत्थिते ॥ ३६८ ॥
 वैश्वदेवे च होमे च देवताभ्यर्चने जपेत् ॥
 अमृतं तेन विप्रान्नमृग्यजुःसामसंस्मृतम् ॥ ३६९ ॥
 व्यवहारानुपूर्व्येण धर्मेण बलिभिर्जितम् ॥
 क्षत्रियान्नं पयस्तेन घृतान्नं यज्ञपालने ॥ ३७० ॥
 देवो मुनिर्द्विजो राजा वैश्यः शूद्रो निषादकः ॥
 पशुम्लेच्छोऽपि चंडालो विप्रा दशविधाः स्मृताः ॥ ३७१ ॥
 सन्ध्या स्नानं जपं होमं देवतानित्यपूजनम् ॥
 अतिथिं वैश्वदेवं च देवब्राह्मण उच्यते ॥ ३७२ ॥
 श्राके पत्रे फले मूले वनवासे सदा रतः ॥
 निरतोऽहरहः श्राद्धे स विप्रो मुनिरुच्यते ॥ ३७३ ॥

वेदांतं पठते नित्यं सर्वसंगं परित्यजेत् ॥

सांख्ययोगविचारस्थः स विप्रो द्विज उच्यते ॥ ३७४ ॥

अस्त्राहताश्च धन्वानः संग्रामे सर्वसंमुखे ॥

आरंभे निर्जिता येन स विप्रः क्षत्र उच्यते ॥ ३७५ ॥

कृषिकर्मरतो यश्च गवां च प्रतिपालकः ॥

वाणिज्यव्यवसायश्च स विप्रो वैश्य उच्यते ॥ ३७६ ॥

लाक्षालवणसंमिश्रं कुसुमं क्षीरसर्पिषः ॥

विक्रेता मधुमांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते ॥ ३७७ ॥

चोरश्च तस्करश्चैव सूचको दंशकस्तथा ॥

मत्स्यमांसे सदा लुब्धो विप्रो निषाद उच्यते ॥ ३७८ ॥

ब्रह्मतत्त्वं न जानाति ब्रह्मसूत्रेण गर्वितः ॥

तेनैव स च पापेन विप्रः पशुरुदाहृतः ॥ ३७९ ॥

वापीकूपतडागानामारामस्य सरःसु च ॥

निश्शङ्कं रोधकश्चैव स विप्रो म्लेच्छ उच्यते ॥ ३८० ॥

क्रियाहीनश्च मूर्खश्च सर्वधर्मविवर्जितः ॥

निर्दयः सर्वभूतेषु विप्रश्चण्डाल उच्यते ॥ ३८१ ॥

वेदविहीनाश्च पठन्ति शास्त्रं शास्त्रेण हीनाश्च पुराणपाठाः ॥

पुराणहीना कृषिणो भवन्ति भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति ॥ ३८२ ॥

ज्योतिर्विदो ह्यथर्वाणः कीराः पौराणपाठकाः ॥

श्राद्धयज्ञे महादाने वरणीयाः कदाचन ॥ ३८३ ॥

श्राद्धे च पितरो धीरं दानं चैष तु निष्फलम् ॥
 यज्ञे च फलहानिः स्यात्तस्मात्तान्परिवर्जयेत् ॥ ३८४ ॥
 आविकश्चित्रकारश्च वैद्यो नक्षत्रपाठकः ॥
 चतुर्विंश न पूज्यन्ते बृहस्पतिसमा यदि ॥ ३८५ ॥
 मागधो माथुरश्चैव कापटः कीकटानजौ ॥
 पंच विंश न पूज्यन्ते बृहस्पतिसमा यदि ॥ ३८६ ॥
 क्रयक्रीता च या कन्या पत्नी सा न विधीयते ॥
 तस्यां जाताः सुतास्तेषां पितृपिंडं न विद्यते ॥ ३८७ ॥
 अष्टशल्यागतो नीरं पाणिना पिबते द्विजः ॥
 सुरापानेन तत्तुल्यं तुल्यं गोमांसभक्षणम् ॥ ३८८ ॥
 ऊर्ध्वजंघेषु विधेषु प्रक्षाल्य चरणद्वयम् ॥
 तावच्चंडालरूपेण यावद्दंगां न मज्जति ॥ ३८९ ॥
 दीपशय्यासनच्छायां कार्पासं दंतधावनम् ॥
 अजासुररजःस्पर्शः शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥ ३९० ॥
 गृहादशगुणं कूपं कूपादशगुणं तटम् ॥
 तटादशगुणं नद्यां गङ्गा संख्या न विद्यते ॥ ३९१ ॥
 स्रवद्यद्वाह्मणं तोयं रहस्यं क्षत्रियं तथा ॥
 वापी कूपे तु वैश्यस्य शौद्रं भांडोदकं तथा ॥ ३९२ ॥

तीर्थस्नानं महादानं यच्चान्यत्तिलतर्पणम् ॥
 अब्दमेकं न कुर्वीत महागुरुनिपाततः ॥ ३९३ ॥
 गंगा गया त्वमावास्या वृद्धिश्राद्धे क्षयेऽहनि ॥
 मघा पिंडप्रदानं स्यादन्यत्र परिवर्जयेत् ॥ ३९४ ॥
 घृतं वा यदि वा तैलं पयो वा यदि वा दधि ॥
 चत्वारो ह्याज्यसंस्थाना हृतं नैव तु वर्जयेत् ॥ ३९५ ॥
 श्रुत्वैतानृषयो धर्मान्भाषितानत्रिणा स्वयम् ॥
 इदमूचुर्महात्मानं सर्वे ते धर्मनिष्ठिताः ॥ ३९६ ॥
 य इदं धारयिष्यंति धर्मशास्त्रमतं द्विताः ॥
 इह लोके यशः प्राप्य ते यास्यंति त्रिविष्टपम् ॥ ३९७ ॥
 विद्यार्थी लभते विद्यां धनकामो धनानि च ॥
 आयुष्कामस्तथैवायुः श्रीकामो महर्तां श्रियम् ॥ ३९८ ॥
 इति श्रीमदत्रिमहर्षिस्मृतिः समाप्ता ॥ १ ॥

॥ श्रीः ॥

विष्णुस्मृतिः २.



प्रथमोऽध्यायः १.

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ विष्णुप्रोक्तधर्मशास्त्रप्रारंभः
विष्णुमेकाग्रमासीनं श्रुतिस्मृतिविशारदम् ॥
पप्रच्छुर्मुनयः सर्वे कलापग्रामवासिनः ॥ १ ॥
कृते युगे ह्यपक्षिणे लुप्तो धर्मः सनातनः ॥
तत्र वै शीर्यमाणे च धर्मो न प्रतिमार्गितः ॥ २ ॥
त्रेतायुगेऽथ संप्राप्ते कर्तव्यश्चास्य संग्रहः ॥
यथा संप्राप्यतेऽस्माभिस्तत्त्वन्नो वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥
वर्णाश्रमाणां यो धर्मो विशेषश्चैव यः कृतः ॥
भेदस्तथैव चैषां यस्तन्नो ब्रूहि द्विजोत्तम ॥ ४ ॥
ऋषीणां समवेतानां त्वमेव परमो मतः ॥
धर्मस्येह समस्तस्य नान्यो वक्तास्ति सुव्रत ॥ ५ ॥
श्रुत्वा धर्मं चरिष्यामो यथावत्परिभाषितम् ॥
तस्माद्ब्रूहि द्विजश्रेष्ठ धर्मकामा इमे द्विजाः ॥ ६ ॥
इत्युक्तो मुनिभिस्तैस्तु विष्णुः प्रोवाच तांस्तदा ॥
अनघाः श्रूयतां धर्मो वक्ष्यमाणो मया क्रमात् ॥ ७ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव तथा परे ॥
 एतेषां धर्मसारं यद्वक्ष्यमाणं निबोधत ॥ ८ ॥
 ऋतावृतौ तु संयोगाद्ब्राह्मणो जायते स्वयम् ॥
 तस्माद्ब्राह्मणसंस्कारं गर्भादौ तु प्रयोजयेत् ॥ ९ ॥
 समितोन्नयनं कर्म न स्त्रीसंस्कार इष्यते ॥
 गर्भस्यैव तु संस्कारो गर्भे गर्भे प्रयोजयेत् ॥ १० ॥
 जातकर्म तथा कुर्यात्पुत्रे जाते यथोदितम् ॥
 बहिर्निष्क्रमणं चैव तस्य कुर्याच्छिशोः शुभम् ॥ ११ ॥
 षष्ठे मासे च संप्राप्ते अन्नप्राशनमाचरेत् ॥
 तृतीयेऽब्दे च संप्राप्ते केशकर्म समाचरेत् ॥ १२ ॥
 गर्भाष्टमे तथा कर्म ब्राह्मणस्योपनायनम् ॥
 द्विजत्वे त्वथ संप्राप्ते सावित्र्यामधिकारभाक् ॥ १३ ॥
 गर्भादिकादशे सैके कुर्यात्क्षत्रियवैश्ययोः ॥
 कारयेद्विजकर्माणि ब्राह्मणेन यथाक्रमम् ॥ १४ ॥
 शूद्रश्चतुर्थो वर्णस्तु सर्वसंस्कारवर्जितः ॥
 उक्तस्तस्य तु संस्कारो द्विजे स्वात्मनिवेदनम् ॥ १५ ॥
 यो यस्य विहितो दंडो मेखलाजिनधारणम् ॥
 सूत्रं वस्त्रं च गृह्णीयाद्ब्रह्मचर्येण यंत्रितः ॥ १६ ॥
 ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय चोपस्पृश्य पयस्तया ॥
 त्रिरायम्य ततः प्राणांस्तिष्ठेन्मौनी समाहितः ॥ १७ ॥

अन्वेदवतैः पवित्रैस्तु कृत्वात्मपरिमार्जनम् ॥
 सावित्रीं च जपंस्तिष्ठेदा सूर्योदयनात्पुरा ॥ १८ ॥
 अग्निकार्यं ततः कुर्यात्पातरेव व्रतं चरेत् ॥
 गुरवे तु ततः कुर्यात्पादयोरभिवादनम् ॥ १९ ॥
 समित्कुशांश्चोदकुंभमाहृत्य गुरवे व्रती ॥
 प्रांजलिः सम्यगासीन उपस्थाय यतः सदा ॥ २० ॥
 यं यं ग्रंथमधीयीत तस्य तस्य व्रतं चरेत् ॥
 सावित्र्युपक्रमात्सर्वमावेदग्रहणोत्तरम् ॥ २१ ॥
 द्विजातिषु चरेद्भैक्ष्यं भिक्षाकाले समागते ॥
 निवेद्य गुरवेऽर्घनीयात्संमतो गुरुणा व्रती ॥ २२ ॥
 सायंसन्ध्यासुपासीनो गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥
 द्विकालभोजनार्थं च तथैव पुनराहरेत् ॥ २३ ॥
 वेदस्वीकरणे दृष्टो गुर्वधीनो गुरोर्हितः ॥
 निष्ठां तत्रैव यो गच्छेन्नैष्ठिकः स उदाहृतः ॥ २४ ॥
 अनेन विधिना सम्यक्कृत्वा वेदमधीत्य च ॥
 गृहस्थधर्ममाकांक्षन्गुरुगेहादुपागतः ॥ २५ ॥
 अनेनैव विधानेन कुर्याद्धारपरिग्रहम् ॥
 कुले महति सम्भूतां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ २६ ॥
 परिणीय तु षण्मासान्वत्सरं वा न संविशेत् ॥
 औदुम्बरायणो नाम ब्रह्मचारी गृहे गृहे ॥ २७ ॥

ऋतुकाले तु संप्राप्ते पुत्रार्थी संविशेत्तदा ॥
जाते पुत्रे तथा कुर्यादग्न्योधयं गृहे वसन् ॥ २८ ॥
पुत्रे जातेऽनृतौ गच्छन्संप्रदुष्येत्सदा गृही ॥
चतुर्थे ब्रह्मचारी च गृहे तिष्ठन्न विस्मृतः ॥ २९ ॥
इति वैष्णवधर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अतः परं प्रवक्ष्यामि गृहिणां धर्ममुत्तमम् ॥
प्राजापत्यपदस्थानं सम्यक्कृत्यं निबोधत ॥ १ ॥
सर्वः कल्ये समुत्थाय कृतशौचः समाहितः ॥
स्नात्वा संध्यामुपासीत सर्वकालमतंद्रितः ॥ २ ॥
अज्ञानाद्यदि वा मोहाद्रात्रौ यद्दुरितं कृतम् ॥
प्रातःस्नानेन तत्सर्वं शोधयन्ति द्विजोत्तमाः ॥ ३ ॥
प्रविश्याथामिहोत्रं तु द्रुत्वाग्निं विधिवत्ततः ॥
शुचौ देशे समासीनः स्वाध्यायं शक्तितोऽभ्यसेत् ॥ ४ ॥
स्वाध्यायान्ते समुत्थाय स्नानं कृत्वा तु मंत्रवत् ॥
देवानृषीन्पितॄंश्चापि तर्पयेत्तिलवारिणा ॥ ५ ॥
मध्याह्ने त्वथ संप्राप्ते शिष्टं भुंजीत वाग्यतः ॥
भुक्तोपविष्टो विश्रान्तो ब्रह्म किञ्चिद्विचारयेत् ॥ ६ ॥
इतिहासं प्रयुंजीत त्रिकालसमये गृही ॥

काले चतुर्थे संप्राप्ते गृहे वा यदि वा बहिः ॥ ७ ॥
 आसीनः पश्चिमां संध्यां गायत्रीं शक्तितो जपेत् ॥
 हुत्वा चाथामिहोत्रं तु कृत्वा चामिपरिक्रियाम् ॥ ८ ॥
 बलिं च विधिवदत्त्वा भुंजीत विधिपूर्वकम् ॥
 दिवा वा यदि वा रात्रावतिथिस्त्वाव्रजेद्यदि ॥ ९ ॥
 तृणभूवारिवाग्भिस्तु पूजयेत्तं यथाविधि ॥
 कथाभिः प्रीतिमाहृत्य विद्यादीनि विचारयेत् ॥ १० ॥
 संनिवेश्याथ विप्रं तु संविशेत्तदनुज्ञया ॥
 यदि योगी तु संप्राप्तो भिक्षार्थी समुपास्थितः ॥ ११ ॥
 योगिनं पूजयेन्नित्यमन्यथा किल्बिषी भवेत् ॥
 पुरे वा यदि वा ग्रामे योगी सन्निहितो भवेत् ॥ १२ ॥
 पूज्या नित्यं भवंत्येव सर्वे चैव निवासिनः ॥
 तस्मात्संपूजयेन्नित्यं योगिनं गृहमागतम् ॥ १३ ॥
 तस्मिन्प्रयुक्ता पूजा या साऽक्षयापोपकल्पते ॥
 गृहमेधिनां यत्प्रोक्तं स्वर्गसाधनमुत्तमम् ॥ १४ ॥
 ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय तत्सर्वं सम्यगाचरेत् ॥
 चतुःप्रकारं भिद्यंते गृहिणो धर्मसाधकाः
 वृत्तिभेदेन सततं ज्यायांस्तेषां परः परः ॥ १५ ॥
 कुसूलधान्यको वा स्यात्कुंभीधान्यक एव वा ॥ १६ ॥
 त्र्यहैहिको वापि भवेत्सद्यःप्रक्षालकोऽपि वा ॥

श्रौतं स्मार्तं च यत्किञ्चिद्विधानं धर्मसाधनम् ॥ १७

गृहे तद्वसता कार्यमन्यथा दोषभाग्भवेत् ॥

एवं विप्रो गृहस्थस्तु शांतः शुक्लांबरः शुचिः ॥ १८ ॥

प्रजापतेः परं स्थानं सम्प्राप्नोति न संशयः ॥ १९ ॥

इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वनवासं यदा चरेत् ॥

चीरवस्त्रकलधारी स्यादकृष्टान्नाशनो मुनिः ॥ १ ॥

गत्वा च विजनं स्थानं पंचयज्ञान्न हापयेत् ॥

अग्निहोत्रं च जुहुयादन्ननीवारकादिभिः ॥ २ ॥

श्रवणेनाग्निमाधाय ब्रह्मचारी वने स्थितः ॥

पंचयज्ञविधानेन यज्ञं कुर्यादतंद्रितः ॥ ३ ॥

संचितं तु यदारण्यं भक्तार्थं विधिवद्दत्ते ॥

त्यजेदाश्वपुजे मासि वन्यमन्यत्समाहरेत् ॥ ४ ॥

आकाशशायी वर्षासु हेमन्ते च जलाशयः ॥

ग्रीष्मे पंचाग्निमध्यस्थो भवेन्नित्यं वने वसन् ॥ ५ ॥

कृच्छ्रं चांद्रायणं चैव तुलापुरुषमेव च ॥

अपिकृच्छ्रं प्रकुर्वीत त्यक्त्वा कामाञ्छुचिस्ततः ॥ ६ ॥

त्रिसंध्यं स्नानमातिष्ठेत्साहिष्णुर्भूतजान्गुणान् ॥

पूजयेदतिथींश्चैव ब्रह्मचारी वनं गतः ॥ ७ ॥
 प्रतिग्रहं न गृहीपात्परेषां किञ्चिदारमवान् ॥
 दाता चैव भवेन्नित्यं श्रद्धधानः प्रियंवदः ॥ ८ ॥
 रात्रौ स्थण्डिलशायी स्यात्प्रपदैस्तु दिनं क्षिपेत् ॥
 वीरासनेन तिष्ठेद्वा क्लेशमात्मन्यर्चितयन् ॥ ९ ॥
 केशरोमनखश्मश्रून् छिद्यान्नापि कर्त्तयेत् ॥
 त्यजञ्छरीरसौहार्दं वनवासरतः शुचिः ॥ १० ॥
 चतुःप्रकारं भिद्यन्ते मुनयः शंसितव्रताः ॥
 अनुष्ठानाविशेषेण श्रेयांस्तेषां परः परः ॥ ११ ॥
 वार्षिकं वन्यमाहारमाहृत्य विधिपूर्वकम् ॥
 वनस्थधर्ममातिष्ठन्नपेत्कालं जितेन्द्रियः ॥ १२ ॥
 भूरिसंवार्षिकश्चायं वनस्थः सर्वकर्मकृत् ॥
 आदेहपतनं तिष्ठेन्मृत्युं चैव न कांक्षति ॥ १३ ॥
 षण्मासांस्तु ततश्चान्यः पञ्चयज्ञक्रियापरः ॥
 काले चतुर्थे भुञ्जानो देहं त्यजति धर्मतः ॥ १४ ॥
 त्रिंशद्दिनार्थमाहृत्य वन्यान्नानि शुचिव्रतः ॥
 निर्वर्त्य सर्वकार्याणि स्याच्च षष्ठेऽन्नभोजनः ॥ १५ ॥
 दिनार्थमन्नमादाय पञ्चयज्ञक्रियारतः ॥
 सद्यःप्रक्षालको नाम चतुर्थः परिकीर्तितः ॥ १६ ॥
 एवमेते हि वै मान्या मुनयः शंसितव्रताः ॥ १७ ॥
 इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

यथोत्तमानि स्थानानि प्राप्नुवंति दृढव्रताः ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ १ ॥

विरक्तः सर्वकामेषु पारिव्राज्यं समाश्रयेत् ॥

आत्मन्यमीन्समारोप्य दत्त्वा चाभयदाक्षिणाम् ॥ २ ॥

चतुर्थमाश्रमं गच्छेद्ब्राह्मणः प्रव्रजन्गृहात् ॥

आचार्येण समादिष्टं लिंगं यत्नात्समाश्रयेत् ॥ ३ ॥

शौचमाश्रयसम्बन्धं यतिधर्मांश्च शिक्षयेत् ॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यमफलगुता ॥ ४ ॥

दयां च सर्वभूतेषु नित्यमेतद्यतिश्चरेत् ॥

ग्रामान्ते वृक्षमूले च नित्यकालनिकेतनः ॥ ५ ॥

पर्यटेत्कीटवद्भूमिं वर्षास्वेकत्र संविशेत् ॥

वृद्धानामातुराणां च भीरूणां संगवर्जितः ॥ ६ ॥

ग्रामे वापि पुरे वापि वासो नैकत्र दुष्यति ॥

कौपीनाच्छादनं वासः कंथां शीतापहारिणीम् ॥ ७ ॥

पादुके चापि गृहीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ॥

संभाषणं सह स्त्रीभिरालम्भप्रेक्षणे तथा ॥ ८ ॥

नृत्यं गानं सभां सेवां परिवादांश्च वर्जयेत् ॥

वानप्रस्थगृहस्थाभ्यां प्रीतिं यत्नेन वर्जयेत् ॥ ९ ॥

एकाकी विचरेन्नित्यं त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहम् ॥
याचितायाचिताभ्यां तु भिक्षया कल्पयेत्स्थितिम् १०
साधुकारं याचितं स्यात्प्राक्प्रणीतमयाचितम् ॥
चतुर्विधा भिक्षुकाः स्युः कुटीचकबहूदकौ ॥ ११ ॥
हंसः परमहंसश्च पश्चाद्यो यः स उत्तमः ॥
एकदंडी भवेद्वापि त्रिदंडी चापि वा भवेत् ॥ १२ ॥
त्यक्त्वा सर्वसुखास्वादं पुत्रैश्वर्यसुखं त्यजेत् ॥
अपत्येषु वसेन्नित्यं ममत्वं यत्नतस्त्यजेत् ॥ १३ ॥
नान्यस्य गेहे भुंजीत भुंजानो दोषभाग्भवेत् ॥
कामं क्रोधं च लोभं च तथेष्ट्यां सत्यमेव च ॥ १४ ॥
कुटीचकस्त्यजेत्सर्वं पुत्रार्थं चैव सर्वतः ॥
भिक्षाटनादिकेऽशक्तो यातिः पुत्रेषु संन्यसेत् ॥ १५ ॥
कुटीचक इति ज्ञेयः परिव्राट् त्यक्तबांधवः ॥
त्रिदंडं कुंडिकां चैव भिक्षाधारं तथैव च ॥ १६ ॥
सूत्रं तथैव गृह्णीयान्नित्यमेव बहूदकः ॥
प्राणायामेऽप्यभिरतो गायत्रीं सततं जपेत् ॥ १७ ॥
विश्वरूपं हृदि ध्यायन्नयेत्कालं जितेन्द्रियः ॥
ईषत्कृतकषायस्य लिंगमाश्रित्य तिष्ठतः ॥ १८ ॥
अन्नार्थं लिंगमुद्दिष्टं न मोक्षार्थमिति स्थितिः ॥
त्यक्त्वा पुत्रादिकं सर्वं योगमार्गं व्यवास्थितः ॥ १९ ॥

इन्द्रियाणि मनश्चैव कर्षन्हंसोऽभिधीयते ॥

कृच्छैश्चान्द्रायणैश्चैव तुलापुरुषसंज्ञकैः ॥ २० ॥

अन्यैश्च शोषयेद्देहमाकांक्षन्ब्रह्मणः पदम् ॥

यज्ञोपवीतं दंडं च वस्त्रं जंतुनिवारणम् ॥ २१ ॥

अयं परिग्रहो नान्यो हंसस्य श्रुतिवेदिनः ॥

आध्यात्मिकं ब्रह्म जपन्प्राणायामांस्तथाचरन् ॥ २२ ॥

वियुक्तः सर्वसंगेभ्यो योगी नित्यं चरेन्महीम् ॥

आत्मनिष्ठः स्वयं युक्तस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ २३ ॥

चतुर्थोऽयं महानेषां ध्यानभिक्षुरुदाहृतः ॥

त्रिदंडं कुंडिकां चैव सूत्रं चाथ कपालिकाम् ॥ २४ ॥

जंतूनां वारणं वस्त्रं सर्वं भिक्षुरिदं त्यजेत् ॥

कौपीनाच्छादनार्थं च वासोऽथश्च परिग्रहेत् ॥ २५ ॥

कुर्यात्परमहंसस्तु दंडमेकं च धारयेत् ॥

आत्मन्येवात्मना बुद्ध्या परित्यक्तशुभाशुभः ॥ २६ ॥

अव्यक्तलिङ्गोऽव्यक्तश्च चरोद्भिक्षुः समाहितः ॥

प्राप्तपूजो न संतुष्येदलाभे त्यक्तमत्सरः ॥ २७ ॥

त्यक्ततृष्णः सदा विद्वान्मूकवत्पृथिवीं चरेत् ॥

देहसंरक्षणार्थं तु भिक्षामीहेद्विजातिषु ॥ २८ ॥

पात्रमस्य भवेत्पाणिस्तेन नित्यं गृहानटेत् ॥

अतैजसानि पात्राणि भिक्षार्थं क्लृप्तवान्मनुः ॥ २९ ॥

सर्वेषामेव भिक्षूणां दार्वलाबुमयानि च ॥
 कांस्यपात्रे न भुञ्जीत आपद्यपि कथंचन ॥ ३० ॥
 मलाशाः सर्वं उच्यन्ते यतयः कांस्यभोजिनः ॥
 कांसिकस्य तु यत्पापं गृहस्थस्य तथैव च ॥ ३१ ॥
 कांस्यभोजी यतिः सर्वं तयोः प्राप्नोति किल्बिषम् ॥
 ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥ ३२ ॥
 उत्तमां वृत्तिमाश्रित्य पुनरावर्त्तयेद्यदि ॥
 आरूढपतितो ज्ञेयः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥ ३३ ॥
 निन्द्यश्च सर्वदेवानां पितॄणां च तथोच्यते ॥
 त्रिदंडं लिंगमाश्रित्य जीवन्ति बहवो द्विजाः ॥ ३४ ॥
 न तेषामपवर्गोऽस्ति लिंगमात्रोपजीविनाम् ॥
 त्यक्त्वा लोकांश्च वेदांश्च विषयानिन्द्रियाणि च ॥ ३५ ॥
 आत्मन्येव स्थितो यस्तु प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ३६ ॥
 इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

राज्ञां तु पुण्यवृत्तानां त्रिवर्गपारिकांक्षिणाम् ॥
 वक्ष्यमाणस्तु यो धर्मस्तत्त्वतस्तन्निबोधत ॥ १ ॥
 तेजः सत्यं धृतिर्दाक्ष्यं संग्रामेष्वनिवर्तिता ॥
 दानमीश्वरभावश्च क्षत्रधर्मः प्रकीर्तितः ॥ २ ॥

क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानां परिपालनम् ॥
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रक्षयेन्नृपतिः प्रजाः ॥ ३ ॥
 त्रीणि कर्माणि कुर्वीत राजन्यस्तु प्रयत्नतः ॥
 दानमध्ययनं यज्ञं ततो योगनिषेवणम् ॥ ४ ॥
 ब्राह्मणानां च संतुष्टिमाचरेत्सततं तथा ॥
 तेषु तुष्टेषु नियतं राज्यं कोशश्च वर्धते ॥ ५ ॥
 वाणिज्यं कर्षणे चैव गवां च परिपालनम् ॥
 ब्राह्मणक्षत्रसेवा च वैश्यकर्म प्रकीर्तितम् ॥ ६ ॥
 खलयज्ञं कृषीणां च गोयज्ञं चैव यत्नतः ॥
 कुर्याद्वैश्यश्च सततं गवां च शरणं तथा ॥ ७ ॥
 ब्राह्मणक्षत्रवैश्यांश्च चरेन्नित्यममत्सरः ॥
 कुर्वस्तु शूद्रः शुश्रूषां लोकाञ्जयति धर्मतः ॥ ८ ॥
 पंचयज्ञविधानं तु शूद्रस्यापि विधीयते ॥
 तस्य प्रोक्तो नमस्कारः कुर्वन्नित्यं न हीयते ॥ ९ ॥
 शूद्रोऽपि द्विविधो ज्ञेयः श्राद्धी चैवतरस्तथा ॥
 श्राद्धी भोज्यस्तयोरुक्तो ह्यभोज्यस्त्वितरो मतः ॥ १० ॥
 प्राणानर्थस्तथा दारान्ब्राह्मणार्थं निवेदयेत् ॥
 स शूद्रजातिर्भोज्यः स्यादभोज्यः शेष उच्यते ॥ ११ ॥
 कुर्याच्छूद्रस्तु शुश्रूषां ब्रह्मक्षत्रविशां क्रमात् ॥
 कुर्यादुत्तरयोर्वैश्यः क्षत्रियो ब्राह्मणस्य तु ॥ १२ ॥

आश्रमास्तु त्रयः प्रोक्ता वैश्यराजन्ययोस्तथा ॥
 परिव्राज्याश्रमप्राप्तिर्ब्राह्मणस्यैव चोदिता ॥ १३ ॥
 आश्रमाणामयं प्रोक्तो मया धर्मः सनातनः ॥
 यदत्राविदितं किञ्चित्तदन्येभ्यो गमिष्यथ ॥ १४ ॥
 इति वैष्णवे धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥



श्रीः ॥

हारीतस्मृतिः ३.

प्रथमोऽध्यायः १.

ये वर्णाश्रमधर्मस्थास्ते भक्ताः केशवं प्रति ॥
इति पूर्वं त्वया प्रोक्तं भूर्भुवःस्वर्द्धिजोत्तम ॥ १ ॥
वर्णानामाश्रमाणां च धर्मान्नो ब्रूहि सत्तम ॥
येन संतुष्यते देवो नारसिंहः सनातनः ॥ २ ॥

अत्राहं कथयिष्यामि पुरावृत्तमनुत्तमम् ॥
ऋषिभिः सह संवादं हारीतस्य महात्मनः ॥ ३ ॥
हारीतं सर्वधर्मज्ञमासीनमिव पावकम् ॥

प्राणिपत्याऽब्रुवन्सर्वे मुनयो धर्मकाक्षिणः ॥ ४ ॥
भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वधर्मप्रवर्तक ॥

वर्णानामाश्रमाणां च धर्मान्नो ब्रूहि भार्गव ॥ ५ ॥
समासाद्योगशास्त्रं च विष्णुभक्तिकरं परम् ॥

एतच्चान्यच्च भगवन्ब्रूहि नः परमो गुरुः ॥ ६ ॥
हारीतस्तानुवाचाथ तैरेवं चोदितो मुनिः ॥

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे धर्मान्वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥ ७ ॥

वर्णानामाश्रमाणां च योगशास्त्रं च सत्तमाः ॥
 सन्धार्य मुच्यते मर्त्यो जन्मसंसारबंधनात् ॥ ८ ॥
 पुरा देवो जगत्सृष्टा परमात्मा जलोपरि ॥
 सुष्वाप भोगिपर्यंके शयने तु श्रिया सह ॥ ९ ॥
 तस्य सुप्तस्य नाभौ तु महत्पद्ममभूत्किल ॥
 पद्ममध्येऽभवद्ब्रह्मा वेदवेदांगभूषणः ॥ १० ॥
 स चोक्तो देवदेवेन जगत्सृज पुनः पुनः ॥
 सोऽपि सृष्ट्वा जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ११ ॥
 यज्ञसिद्ध्यर्थमनघान्ब्राह्मणान्मुखतोऽसृजत् ॥
 असृजत्क्षत्रियान्बाह्वोर्वैश्यान्पूरुदेशतः ॥ १२ ॥
 शूद्रांश्च पादयोः सृष्ट्वा तेषां चैवानुपूर्वशः ॥
 यथा प्रोवाच भगवान्पद्मयोनिः पितामहः ॥ १३ ॥
 तद्वचः संप्रवक्ष्यामि शृणुत द्विजसत्तमाः ॥
 धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं मोक्षफलप्रदम् ॥ १४ ॥
 ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैवमुत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः ॥
 तस्य धर्मं प्रवक्ष्यामि तद्योग्यं देशमेव च ॥ १५ ॥
 कृष्णसारो मृगो यत्र स्वभावेन प्रवर्तते ॥
 तस्मिन्देशे वसेद्धर्माः सिद्ध्यन्ति द्विजसत्तमाः ॥ १६ ॥
 षट्कर्माणि निजान्पादुर्ब्राह्मणस्य महात्मनः ॥
 तैरेव सततं यस्तु वर्तयेत्सुखमेधते ॥ १७ ॥

अध्यापनं चाध्ययनं याजनं यजनं तथा ॥
 दानं प्रतिग्रहश्चेति षट्कर्माणीति प्रोच्यते ॥ १८ ॥
 अध्यापनं च त्रिविधं धर्मार्थमृक्थकारणात् ॥
 शुश्रूषाकरणं चेति त्रिविधं परिकीर्तितम् ॥ १९ ॥
 एषामन्यतमाभावे वृथाचारो भवेद्विजः ॥
 तत्र विद्या न दातव्या पुरुषेण हितैषिणा ॥ २० ॥
 योग्यानध्यापयेच्छिष्यानयोग्यानपि वर्जयेत् ॥
 विदितात्प्रतिगृह्णीयाद्गृहे धर्मप्रसिद्धये ॥ २१ ॥
 वेदश्चैवाभ्यसेन्नित्यं शुचौ देशे समाहितः ॥
 धर्मशास्त्रं तथा पाठ्यं ब्राह्मणैः शुद्धमानसैः ॥ २२ ॥
 वेदवत्पठितव्यं च श्रोतव्यं च दिवानिशि ॥
 स्मृतिहीनाय विप्राय श्रुतिहीने तथैव च ॥ २३ ॥
 दानं भोजनमन्यच्च दत्तं कुलविनाशनम् ॥
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धर्मशास्त्रं पठेद्विजः ॥ २४ ॥
 श्रुतिस्मृती च विप्राणां चक्षुषी देवनिर्मिते ॥
 काणस्तत्रैकया हीनो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्तितः ॥ २५ ॥
 गुरुशुश्रूषणं चैव यथान्यायमतान्द्रितः ॥
 सायंप्रातरुपासीत विवाहार्पि द्विजोत्तमः ॥ २६ ॥
 सुस्नातस्तु प्रकुर्वीत वैश्वदेवं दिने दिने ॥
 अतिथीनागताञ्छक्त्या पूजयेदविचारतः ॥ २७ ॥

अन्यानभ्यागताऽन्विप्रान्पूजयेच्छक्तितो गृही ॥

स्वदारनिरतो नित्यं परदारविवर्जितः ॥ २८ ॥

कृतहोप्रस्तु भुञ्जीत सायंप्रातरुदारधीः ॥

सत्यवादी जितक्रोधो नाधर्मे वर्तयेन्मतिम् ॥ २९ ॥

स्वकर्माणि च संप्राप्ते प्रमादान्न निवर्तते ॥

सत्पां हितां वदेद्वाचं परलोकहितैषिणीम् ॥ ३० ॥

एष धर्मः समुद्दिष्टो ब्राह्मणस्य समासतः ॥

धर्ममेव हि यः कुर्यात्स याति ब्रह्मणः पदम् ॥ ३१ ॥

इत्येष धर्मः कथितो मयायं पृष्ठो भवद्भिस्त्वखिलाघहारी ॥

वदामि राज्ञामपि चैव धर्मान्पृथक्पृथग्बोधत विप्रवर्याः ३२ ॥

इति हारीते धर्मशाले प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

क्षत्रादीनां प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥

येषु प्रवृत्ता विधिना सर्वे यान्ति परां गतिम् ॥ १ ॥

राज्यस्थः क्षत्रियश्चापि प्रजा धर्मेण पालयन् ॥

कुर्यादध्ययनं सम्यग्यजेद्यज्ञान्यथाविधि ॥ २ ॥

दद्यादानं द्विजातिभ्यो धर्मबुद्धिसमन्वितः ॥

स्वभार्यानिरतो नित्यं षड्भागार्हः सदा नृपः ॥ ३ ॥

नीतिशास्त्रार्थकुशलः सन्धिविग्रहतत्त्ववित् ॥
 देवब्राह्मणभक्तश्च पितृकार्यपरस्तथा ॥ ४ ॥
 धर्मेण यजनं कार्यमधर्मपरिवर्जनम् ॥
 उत्तमां गतिमाप्नोति क्षत्रियोऽप्येवमाचरन् ॥ ५ ॥
 गोरक्षां कृषिवाणिज्यं कुर्याद्वैश्यो यथाविधि ॥
 दानं देयं यथाशक्ति ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥ ६ ॥
 दंभमोहविनिर्मुक्तः सत्यवागनसूयकः ॥
 स्वदारनिरतो दान्तः परदारविवर्जितः ॥ ७ ॥
 धनैर्विप्रान्भोजयित्वा यज्ञकाले तु याजकान् ॥
 अप्रभुत्वं च वर्तेत धर्मे चादेहपातनात् ॥ ८ ॥
 यज्ञाध्ययनदानानि कुर्यान्नित्यमतन्द्रितः ॥
 पितृकार्यपरश्चैव नरसिंहार्चनापरः ॥ ९ ॥
 एतद्वैश्यस्य धर्मोऽयं स्वधर्ममनुतिष्ठति ॥
 एतदाचरते यो हि स स्वर्गी नात्र संशयः ॥ १० ॥
 वर्णत्रयस्य शुश्रूषां कुर्याच्छूद्रः प्रयत्नतः ॥
 दासवद्ब्राह्मणानाञ्च विशेषेण समाचरेत् ॥ ११ ॥
 अयाचितप्रदाता च कष्टं वृत्त्यर्थमाचरेत् ॥
 पाकयज्ञविधानेन यजेद्देवमतन्द्रितः ॥ १२ ॥
 शूद्राणामधिकं कुर्याद्वर्चनं न्यायवर्तिनाम् ॥
 धारणं जीर्णवस्त्रस्य विप्रस्योच्छिष्टभोजनम् ॥ १३ ॥

स्वदारेषु रतिश्चैव परदाराविवर्जनम् ॥

इत्थं कुर्यात्सदा शूद्रो मनोवाकायकर्मभिः ॥ १४ ॥

स्थानमैद्रमवाप्नोति नष्टपापः सुपुण्यकृत् ॥ १५ ॥

वर्णेषु धर्मा विविधामयोक्ता यथा तथा ब्रह्ममुखेरिताःपुरा ॥

शृणुध्वमत्राश्रमधर्ममाद्यं मयोच्यमानं क्रमशो मुनीन्द्राः १६ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

उपनीतो माणवको वसेद्गुरुकुलेषु च ॥

गुरोः कुले प्रियं कुर्यात्कर्मणा मनसा गिरा ॥ १ ॥

ब्रह्मचर्यमधः शय्या तथा षष्ठेरुपासना ॥

उदकुम्भान्गुरोर्दद्याद्गोश्वं चैधनानि च ॥ २ ॥

कुर्यादध्ययनं चैव ब्रह्मचारी यथाविधि ॥

विधिं त्यक्त्वा प्रकुर्वाणो न स्वाध्यायफलं लभेत् ॥ ३ ॥

यः कश्चित्कुरुते धर्मं विधिं हित्वा दुरात्मवान् ॥

न तत्फलमवाप्नोति कुर्वाणोऽपि विधिच्युतः ॥ ४ ॥

तस्माद्वेदव्रतानीह चरेत्स्वाध्यायसिद्धये ॥

शौचाचारमशेषं तु शिक्षयेद्गुरुसन्निधौ ॥ ५ ॥

अजिने वटकाष्ठं च मेखलाश्चोपवीतकम् ॥

धारयेदप्रमत्तश्च ब्रह्मचारी समाहितः ॥ ६ ॥
 सायंप्रातश्चरेद्भैक्षं भोज्यार्थं संयतेन्द्रियः ॥
 आचम्य प्रयतो नित्यं न कुर्यादंतधावनम् ॥ ७ ॥
 छत्रं चोपानहं चैव गंधमाल्यादि वर्जयेत् ॥
 नृत्यं गीतमथालापं मैथुनं च विवर्जयेत् ॥ ८ ॥
 हस्त्यश्वारोहणं चैव संत्यजेत्संयतेन्द्रियः ॥
 संध्योपास्ति प्रकुर्वीत ब्रह्मचारी व्रतस्थितः ॥ ९ ॥
 अभिवाद्य गुरोः पादौ संध्याकर्मावसानतः ॥
 तथा योगं प्रकुर्वीत मातापित्रोश्च भक्तिः ॥ १० ॥
 एतेषु त्रिषु नष्टेषु नष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥
 एतेषां शासने तिष्ठेद्ब्रह्मचारी विमत्सरः ॥ ११ ॥
 अधीत्य च गुरोर्वेदान्वेदौ वा वेदमेव वा ॥
 गुरवे दक्षिणां दद्यात्संयमी ग्राममावसेत् ॥ १२ ॥
 यस्यैतानि सुगुप्तानि जिह्वोपस्थोदरं करः ॥
 संन्याससमयं कृत्वा ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यया ॥ १३ ॥
 तस्मिन्नेव नयेत्कालमाचार्यं यावदायुषम् ॥
 तदभावे च तत्पुत्रे तच्छिष्येऽप्यथवा कुले ॥ १४ ॥
 न विवाहो न संन्यासो नैष्टिकस्य विधीयते ॥
 इमं यो विधिमास्थाय त्यजेद्देहमतंद्रितः ॥ १५ ॥
 नेह भूयोऽपि जायेत ब्रह्मचारी दृढव्रतः ॥ १६ ॥

यो ब्रह्मचारी विधिना समाहितश्चैतृथिव्यां गुरुसेवने रतः॥
संप्राप्यविद्यामतिदुर्लभांशिवांफलञ्चतस्याःसुलभं स विंदति१७
इति हारीते धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

गृहीतवेदाध्ययनः श्रुतशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥
असमानर्षिगोत्रां हि कन्यां सभ्रातृकां शुभाम् ॥ १ ॥
सर्वावयवसंपूर्णा सुवृत्तामुद्वहेन्नरः ॥
ब्राह्मेण विधिना कुर्यात्प्रशस्तेन द्विजोत्तमः ॥ २ ॥
तथान्ये बहवः प्रोक्ता विवाहा वर्णधर्मतः ॥
औपासनं च विधिवदाहृत्य द्विजपुंगवाः ॥ ३ ॥
साधं प्रातश्च जुहुयात्सर्वकालमतन्द्रितः ॥
स्नानं कार्यं ततो नित्यं दन्तधावनपूर्वकम् ॥ ४ ॥
उषःकाले समुत्थाय कृतशौचो यथाविधि ॥
मुखे पर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः ॥ ५ ॥
तस्माच्छुष्कमथार्द्रं वा भक्षयेदन्तकाष्ठकम् ॥
करंजं खादिरं वापि कदंबं कुरबं तथा ॥ ६ ॥
सप्तपर्णं पृश्निपर्णी जंबू निंबं तथैव च ॥
अपामार्गं च बिल्वं चार्कं चोदुंबरमेव च ॥ ७ ॥
एते प्रशस्ताः कथिता दंतधावनकर्मणि ॥

दंतकाष्ठस्य भक्ष्यस्य समासेन प्रकीर्तितः ॥ ८ ॥

सर्वे कंटकिनः पुण्याः क्षीरिणश्च यशस्विनः ॥

अष्टांगुलेन मानेन दंतकाष्ठमिहोच्यते ॥

प्रादेशमात्रमथवा तेन दन्तान्विशोधयेत् ॥ ९ ॥

प्रतिपत्पर्वषष्ठाषु नवम्यां चैव सप्तमाः ॥

दंतानां काष्ठसंयोगाद्दृष्ट्यासप्तमं कुलम् ॥ १० ॥

अभावे दन्तकाष्ठानां प्रतिषिद्धदिनेषु च ॥

अपां द्वादशगङ्गैर्मुखशुद्धिं समाचरेत् ॥ ११ ॥

स्नात्वा मंत्रवदाचम्य पुनराचमनं चरेत् ॥

मंत्रवत्प्रोक्ष्य चात्मानं प्रक्षिपेदुदकांजलिम् ॥ १२ ॥

आदित्येन सह प्रातर्मन्देहा नाम राक्षसाः ॥

युद्ध्यन्ति वरदानेन ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ १३ ॥

उदकांजलिनिःक्षेपाद्वायव्या चाभिमंत्रिताः ॥

निघ्नन्ति राक्षसान्सर्वान्मन्देहाख्यान्दिजेरिताः ॥ १४ ॥

ततः प्रयाति सविता ब्राह्मणैरभिरक्षितः ॥

मरीच्याद्यैर्महाभागैः सनकाद्यैश्च योगिभिः ॥ १५ ॥

तस्मान्न लब्धयेत्संध्यां सायं प्रातः समाहितः ॥

उल्लघंयति यो मोहात्स याति नरकं ध्रुवम् ॥ १६ ॥

सायं मंत्रवदाचम्य प्रोक्ष्य सूर्यस्य चाञ्जलिम् ॥

दत्त्वा प्रदक्षिणं कुर्यात्कलं स्पृष्ट्वा विशुद्ध्यति ॥ १७ ॥

पूर्वा संध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि ॥
 गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावदादित्यदर्शनम् ॥ १८ ॥
 उपास्य पश्चिमां संध्यां सादित्यां च यथाविधि ॥
 गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावत्ताराणि पश्यति ॥ १९ ॥
 ततश्चावसथं प्राप्य कृत्वा होमं स्वयं बुधः ॥
 संचित्य पोष्यवर्गस्य भरणार्थं विचक्षणः ॥ २० ॥
 ततः शिष्यहितार्थाय स्वाध्यायं किञ्चिदाचरेत् ॥
 ईश्वरं चैव कार्य्यार्थमभिगच्छेद्विजोत्तमः ॥ २१ ॥
 कुशपुष्पेधनादीनि गत्वा दूरं समाहरेत् ॥
 ततो मध्याह्निकं कुर्याच्छुचौ देशे मनोरमे ॥ २२ ॥
 विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि समासात्पापनाशनम् ॥
 स्नात्वा येन विधानेन मुच्यते सर्वकिल्बिषात् ॥ २३ ॥
 स्नानार्थं मृदमानीय शुद्धाक्षतातिलैः सह ॥
 सुमनाश्च ततो गगच्छेन्नदीं शुद्धजलाधिकाम् ॥ २४ ॥
 नद्यां तु विद्यमानायां न स्नायादन्यवारिणि ॥
 न स्नायादल्पतोयेषु विद्यमाने बहूदके ॥ २५ ॥
 सरिद्धरं नदीस्नानं प्रतिस्त्रोतः स्थितश्चरेत् ॥
 तडागादिषु तोयेषु स्नायाच्च तदभावतः ॥ २६ ॥
 शुचिदेशे समभ्युक्ष्य स्थापयेत्सकलांबरम् ॥

मृतोयेने स्वकं देहं लिपेत्प्रक्षाल्य यत्नतः ॥ २७ ॥
 स्नानादिकं समार्षेयं कुर्यादाचमनं बुधः ॥
 सोऽन्तर्जलं प्रविश्याथ वाग्यतो नियमेन हि ॥ २८ ॥
 हरिं संस्मृत्य मनसा मज्जयेच्चोरुमज्जले ॥
 ततस्तीरं समासाद्य आचम्यापः समंत्रतः ॥ २९ ॥
 प्रोक्षयेद्धारुणैर्मन्त्रैः पावमानीभिरेव च ॥
 कुशाग्रकृततोयेन प्रोक्ष्यात्मानं प्रयत्नतः ॥ ३० ॥
 स्योना पृथ्वीति मृद्गात्रे इदंविष्णुरिति द्विजाः ॥
 ततो नारायणं देवं संस्मरेत्प्रतिमज्जनम् ॥ ३१ ॥
 निमज्ज्यांतर्जले सम्यक्क्रियते चाधमर्षणम् ॥
 स्नात्वाक्षततिलैस्तद्देवर्षिपितृभिः सह ॥ ३२ ॥
 तर्पयित्वा जलं तस्मान्निष्पीड्य च समाहितः ॥
 जलतीरं समासाद्य तत्र शुक्ले च वाससी ॥ ३३ ॥
 परिधायोत्तरीयं च कुर्यात्केशान्न धूनयेत् ॥
 न रक्तमुल्बणं वासो न नीलं च प्रशस्यते ॥ ३४ ॥
 मलाक्तं गंधहीनं च वर्जयेदंबरं बुधः ॥
 ततः प्रक्षालयेत्पादौ मृतोयेन विचक्षणः ॥ ३५ ॥
 दक्षिणं तु करं कृत्वा गोकर्णाकृतिवत्पुनः
 त्रिः पिबेदीक्षितं तोयमास्यं द्विः परिमार्जयेत् ॥ ३६ ॥
 पादौ शिरस्ततोऽभ्युक्ष्य त्रिभिरास्यमुपस्पृशेत् ॥

अंगुष्ठानामिकाभ्यां च चक्षुषी समुपस्पृशेत् ॥ ३७ ॥
 तथैव पंचभिर्मूर्ध्नि स्पृशेदेवं समाहितः ॥
 अनेन विधिनाऽऽचम्य ब्राह्मणः शुद्धमानसः ॥ ३८ ॥
 कुर्वीत दर्भपाणिस्तूदङ्मुखः प्राङ्मुखोऽपि वा ॥
 प्राणायामत्रयं धीमान्यथान्यायमतंद्रितः ॥ ३९ ॥
 जपयज्ञं ततः कुर्याद्गायत्रीं वेदमातरम् ॥
 त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य तत्त्वं निबोधत ॥ ४० ॥
 वाचिकश्चाप्युपांशुश्च मानसश्च त्रिधा कृतिः ॥
 त्रयाणामपि यज्ञानां श्रेष्ठः स्यादुत्तरोत्तरः ॥ ४१ ॥
 यदुच्चनीचोच्चरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः ॥
 मंत्रमुच्चारयन्वाचा जपयज्ञस्तु वाचिकः ॥ ४२ ॥
 शनैरुच्चारयन्मंत्रं किञ्चिदोष्ठौ प्रचालयेत् ॥
 किञ्चिच्छ्रवणयोग्यः स्यात्स उपांशुर्जपः स्मृतः ॥ ४३ ॥
 धिया पदाक्षाश्रेण्या अवर्णमपदाक्षरम् ॥
 शब्दार्थचिंतनाभ्यां तु तदुक्तं मानसं स्मृतम् ॥ ४४ ॥
 जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति ॥
 प्रसन्ने विपुलान्गोत्रान्प्राप्नुवंति मनीषिणः ४५ ॥
 राक्षसाश्च पिशाचाश्च महासर्पाश्च भीषणाः ॥
 जपितान्नोपसर्पति द्यूदेव प्रयांति ते ॥ ४६ ॥
 छंदऋष्यादि विज्ञाय जपेन्मंत्रमतंद्रितः ॥

जपेदहरहर्ज्ञात्वा गायत्रीं मनसा द्विजः ॥ ४७ ॥
 सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् ॥
 गायत्रीं यो जपेन्नित्यं स न पापेन लिप्यते ॥ ४८ ॥
 अथ पुष्पांजलिं कृत्वा भानवे चोर्ध्वबाहुकः ॥
 उदुत्यं च जपेत्सूक्तं तच्चक्षुरिति चापरम् ॥ ४९ ॥
 प्रदक्षिणमुपावृत्य नमस्कुर्याद्दिवाकरम् ॥
 तत्तत्तीर्थेन देवादीनद्भिः संतर्पयेद्विजः ॥ ५० ॥
 स्नानं वस्त्रं तु निष्पीड्य पुनराचमनं चरेत् ॥
 तद्वद्भक्तजनस्येह स्नानं दानं प्रकीर्तितम् ॥ ५१ ॥
 दर्भासीनो दर्भपाणिर्ब्रह्मयज्ञविधानतः ॥
 प्राङ्मुखो ब्रह्मयज्ञं तु कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः ॥ ५२ ॥
 ततोऽर्घ्यं भानवे दद्यात्तिलपुष्पाक्षनान्वितम् ॥
 उत्थाय मूर्द्धपथ्यतं हंसः शुचिषादित्यृचा ॥ ५३ ॥
 ततो देवं नमस्कृत्य गृहं गच्छेत्ततः पुनः ॥
 विधिना पुरुषसूक्तस्य गत्वा विष्णुं समर्चयेत् ॥ ५४ ॥
 वैश्वदेवं ततः कुर्याद्वलिकर्म विधानतः ॥
 गोदोहमात्रमाकांक्षेदतिथिं प्रति वै गृही ॥ ५५ ॥
 अदृष्टपूर्वमज्ञातमातिथिं प्राप्तमर्चयेत् ॥
 स्वागतासनदानेन प्रत्युत्थानेन चांबुना ॥ ५६ ॥
 स्वागतेनामयस्तुष्टा भवंति गृहमेधिनः ॥

आसनेन तु दत्तेन प्रीतो भवति देवराट् ॥ ५७ ॥
 पादशौचेन पितरः प्रीतिमायांति दुर्लभाम् ॥
 अन्नदानेन युक्तेन तृप्यते हि प्रजापतिः ॥ ५८ ॥
 तस्मादतिथये कार्यं पूजनं गृहमेधिना ॥
 भक्त्या च शक्तितो नित्यं पूजयोद्विष्णुमन्वहम् ॥ ५९ ॥
 भिक्षां च भिक्षवे दद्यात्परिव्राड् ब्रह्मचारिणे ॥
 अकल्पितान्नादुद्धृत्य सव्यंजनसमन्विताम् ॥ ६० ॥
 अकृते वैश्वदेवेऽपि भिक्षौ च गृहमागते ॥
 उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत् ॥ ६१ ॥
 वैश्वदेवात्कृतान्दोषाञ्छुक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ॥
 न हि भिक्षुकृतान्दोषान्वैश्वदेवो व्यपोहति ॥ ६२ ॥
 तस्मात्प्राप्ताय यतये भिक्षां दद्यात्समाहितः ॥ ६३ ॥
 सुवासिनीं कुमारीं च भोजयित्वा नरानपि ॥
 बालवृद्धांस्ततः शेषं स्वयं भुंजति वा गृही ॥ ६४ ॥
 प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि मौनी च मितभाषणः ॥
 अन्नमादौ नमस्कृत्य ग्रहेष्टेनांतरात्मना ॥ ६५ ॥
 पञ्च प्राणाहुतीः कुर्यान्मंत्रेण च पृथक्पृथक् ॥
 ततः स्वादुकरान्नं च भुंजीत सुसमाहितः ॥ ६६ ॥
 आचम्य देवतामिष्टां संस्मरन्नुदरं स्पृशेत् ॥

इतिहासपुराणाभ्यां कंचित्कालं नयेद्बुधः ॥ ६७ ॥
 ततः संध्यामुपासीत बहिर्गत्वा विधानतः ॥
 कृतहोमस्तु भुंजीत रात्रौ चातिथिभोजनम् ॥ ६८ ॥
 सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् ॥
 नांतरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः ॥ ६९ ॥
 शिष्यान्ध्यापयेच्चापि अनध्याये विसर्जयेत् ॥
 स्मृत्युक्तानखिलांश्चापि पुराणोक्तानपि द्विजः ॥ ७० ॥
 महानवम्यां द्वादश्यां भरण्यामपि पर्वसु ॥
 तथाक्षयतृतीयायां शिष्यान्नाध्यापयेद्विजः ॥ ७१ ॥
 माघमासे तु सप्तम्यां रथाख्यायां तु वर्जयेत् ॥
 अध्यापनं समभ्यस्यन्स्नानकाले च वर्जयेत् ॥ ७२ ॥
 नीयमानं शवं दृष्ट्वा महीस्थं वा द्विजोत्तमाः ॥
 न पठेद्बुदितं श्रुत्वा संध्यायां तु द्विजोत्तमाः ॥ ७३ ॥
 दानानि च प्रदेयानि गृहस्थेन द्विजोत्तमाः ॥
 हिरण्यदानं गोदानं पृथिवीदानमेव च ॥ ७४ ॥
 एवं धर्मो गृहस्थस्य सारभूत उदाहृतः ॥
 य एवं श्रद्धया कुर्यात्स याति ब्रह्मणः पदम् ॥ ७५ ॥
 ज्ञानोत्कर्षश्च तस्य स्यान्नरसिंहप्रसादतः ॥
 तस्मान्मुक्तिमवाप्नोति ब्राह्मणो द्विजसत्तमाः ॥ ७६ ॥

एवं हि विप्राः कथितो मया वः समासतः शाश्वतधर्मराशिः ॥
यहीगृहस्थस्य सतो हि धर्मं कुर्वन्प्रयत्नाद्वारिमेति युक्तम् ॥ ७७ ॥
इति हारीते धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

अतः परं प्रक्ष्यामि वानप्रस्थस्य सत्तमाः ॥
धर्माश्रमं महाभागाः कथ्यमानं निबोधत ॥ १ ॥
गृहस्थः पुत्रपौत्रादीन्दृष्ट्वा पलितमात्मनः ॥
भार्या पुत्रेषु निःक्षिप्य सह वा प्रविशेद्धनम् ॥ २ ॥
नखरोमाणि च तथा सितगात्रत्वगादि च ॥
धारयञ्जुहुयादग्निं वनस्थो विधिमाश्रितः ॥ ३ ॥
धान्यैश्च वनसंभूतैर्नारिवाद्यैरनिदितैः ॥
शाकमूलफलैर्वापि कुर्यान्नित्यं प्रयत्नतः ॥ ४ ॥
त्रिकालस्नानयुक्तस्तु कुर्यात्तीव्रं तपस्तदा ॥
पक्षांते वा समश्नीयान्मासान्ते वा स्वपक्कभुक् ॥ ५ ॥
तथा चतुर्थकाले तु भुञ्जीयादष्टमेऽथवा ॥
षष्ठे च कालेऽप्यथवा वायुभक्षोऽथवा भवेत् ॥ ६ ॥
घर्मे पञ्चामिमध्यस्थस्तथा वर्षे निराश्रयः ॥
हेमन्ते च जले स्थित्वा नयेत्कालं तपश्चरन् ॥ ७ ॥
एवं च कुर्वता येन कृतबुद्धिर्यथाक्रमम् ॥

अग्निं स्वात्मनि कृत्वा तु प्रव्रजेदुत्तरां दिशम् ॥ ८ ॥

आदेहपातं वनगो मौनमास्थाय तापसः ॥

स्मरन्नतीन्द्रियं ब्रह्म ब्रह्मलोके महीयते ॥ ९ ॥

तपो हि यः सेवति वन्यवासः समाधियुक्तः प्रयतांतरात्मा ॥

विमुक्तपापो विमलः प्रशांतः स याति दिव्यं पुरुषं पुराणम् १०

इति हारीते धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अतः परं प्रवक्ष्यामि चतुर्थाश्रममुत्तमम् ॥ १ ॥

एवं वनाश्रमे तिष्ठन्पातयंश्चैव किल्बिषम् ॥

चतुर्थमाश्रमं गच्छेत्संन्यासविधिना द्विजः ॥ २ ॥

दत्त्वा पितृभ्यो देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च यत्नतः ॥

दत्त्वा श्राद्धं पितृभ्यश्च मानुषेभ्यस्तथात्मनः ॥ ३ ॥

इष्टिं वैश्वानरीं कृत्वा प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ॥

अग्निं स्वात्मनि संरोप्य मंत्रवत्प्रव्रजेत्पुनः ॥ ४ ॥

ततःप्रभृति पुत्रादौ स्नेहालापादि वर्जयेत् ॥

बंधूनामभयं दद्यात्सर्वभूताभयं तथा ॥ ५ ॥

त्रिदंडं वैष्णवं सम्यक् संततं समपर्वकम् ॥

वेष्टितं कृष्णगोवालरज्जुमच्चतुरंगुलम् ॥ ६ ॥

शौचार्थमासनार्थं च मुनिभिः समुदाहृतम् ॥
 कौपीनाच्छादनं वासः कंथां शीतनिवारिणीम् ॥ ७ ॥
 पादुके चापि गृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ॥
 एतानि तस्य लिंगानि यतेः प्रोक्तानि सर्वदा ॥ ८ ॥
 संगृह्य कृतसंन्यासो गत्वा तीर्थमनुत्तमम् ॥
 स्नात्वाऽऽचम्य च विधिवद्वस्त्रपूतेन वारिणा ॥ ९ ॥
 तर्पयित्वा तु देवांश्च मंत्रवद्भास्करं नमेत् ॥
 आत्मानं प्राङ्मुखो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत् ॥ १० ॥
 गायत्रीं च यथाशक्ति जप्त्वा ध्यायेत्परं पदम् ॥
 स्थित्यर्थमात्मनो नित्यं भिक्षाटनमथाचरेत् ॥ ११ ॥
 सायंकाले तु विप्राणां गृहाण्यभ्यवपद्य तु ॥
 सम्यग्याचेच्च कवलं दक्षिणेन करेण वै ॥ १२ ॥
 पात्रं वामकरे स्थाप्य दक्षिणेन तु शोषयेत् ॥
 यावत्पात्रेन तृप्तिः स्यात्तावद्भैक्षं समाचरेत् ॥ १३ ॥
 ततो निवृत्य तत्पात्रं संस्थाप्यान्यत्र संयमी ॥
 चतुर्भिरंगुलैश्छाद्य ग्रासमात्रं समाहितः ॥ १४ ॥
 सर्वव्यंजनसंयुक्तं पृथक्पात्रं नियोजयेत् ॥
 सूर्यादिभूतदेवम्यो दत्त्वा संप्रोक्ष्य वारिणा ॥ १५ ॥
 भुंजीत पात्रपुटके पात्रे वा वाग्यतो यतिः ॥

वटकाश्वत्थपर्णेषु कुम्भितैन्दुकपात्रके ॥ १६ ॥

कोविदारकदंबेषु न भुञ्जीयात्कदाचन ॥

मलाक्ताः सर्व उच्यन्ते यतयः कांस्यभोजिनः ॥ १७ ॥

कांस्यभाण्डेषु यत्पाको गृहस्थस्य तथैव च ॥

कांस्ये भोजयतः सर्व्वं किल्बिषं प्राप्नुयात्तयोः ॥ १८ ॥

भुक्त्वा पात्रे यतिर्नित्यं क्षालयेन्मंत्रपूर्वकम् ॥

न दुष्यते च तत्पात्रं यज्ञेषु चमसा इव ॥ १९ ॥

अथाचम्य निदिध्यास्य उपतिष्ठेच्च भास्करम् ॥

जपध्यानेतिहासैश्च दिनशेषं नयेद्बुधः ॥ २० ॥

कृतसंध्यस्तंतो रात्रिं नयेद्देवगृहादिषु ॥

हृत्पुंडरीकनिलये ध्यायेदात्मानमव्ययम् ॥ २१ ॥

यदि धर्मरतिः शान्तः सर्वभूतसमो वशी ॥

प्राप्नोति परमं स्थानं यत्प्राप्य न निवर्तते ॥ २२ ॥

त्रिदंडभृद्यो हि पृथक्समाचरे

च्छन्नैः शनैर्यस्तु बहिर्मुखाक्षः ॥

संमुच्य संसारसमस्तबंधनात्

स यातिविष्णोरमृतात्मनःपदम् ॥ २३ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७

वर्णानामाश्रमाणां च कथितं धर्मलक्षणम् ॥
 येन स्वर्गापवर्गौ च प्राप्नुवंति द्विजातयः ॥ १ ॥
 योगशास्त्रं प्रवक्ष्यामि संक्षेपात्सारमुत्तमम् ॥
 यस्य च श्रवणाद्यांति मोक्षं चैव मुमुक्षवः ॥ २ ॥
 योगाभ्यासबलेनैव नश्येयुः पातकानि तु ॥
 तस्माद्योगपरो भूत्वा ध्यायेन्नित्यं क्रियापरः ॥ ३ ॥
 प्राणायामेन वचनं प्रत्याहारेण चैन्द्रियम् ॥
 धारणाभिर्वशे कृत्वा पूर्वं दुर्धर्षणं मनः ॥ ४ ॥
 एकाकारमनानंतं बुद्धौ रूपमनामयम् ॥
 सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ध्यायेज्जगदाधारमच्युतम् ॥ ५ ॥
 आत्मना बहिरंतःस्थं शुद्धचामीकरप्रभम् ॥
 रहस्येकांतमासीनो ध्यायेदाभरणांतिकम् ॥ ६ ॥
 यत्सर्वप्राणिहृदयं सर्वेषां च हृदि स्थितम् ॥
 यच्च सर्वजनैर्ज्ञेयं सोऽहमस्मीति चिंतयेत् ॥ ७ ॥
 आत्मलाभसुखं यावत्तपोध्यानमुदीरितम् ॥
 श्रुतिस्मृत्यादिकं धर्मं तद्विरुद्धं न चाचरेत् ॥ ८ ॥
 यथा रथोऽश्वहीनस्तु यथाश्वो रथिहीनकः ॥
 एवं तपश्च विद्या च संयुतं भेषजं भवेत् ॥ ९ ॥

यथान्नं मधुसंयुक्तं मधु वान्नेन संयुतम् ॥

उभाभ्यामपि पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः ॥ १० ॥

तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ॥

विद्यातपोभ्यां संपन्नो ब्राह्मणो योगतत्परः ॥ ११ ॥

देहद्वयं विहायाशु मुक्तो भवति बंधनात् ॥

न तथा क्षीणदेहस्य विनाशो विद्यते कचित् ॥ १२ ॥

मया वः कथितः सर्वो वर्णाश्रमाविभागशः ॥

संक्षेपेण द्विजश्रेष्ठा धर्मस्तेषां सनातनः ॥ १३ ॥

श्रुत्वैवं मुनयो धर्मं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ॥

प्रणम्य तमृषिं जग्मुर्मुदिताः स्वं स्वमाश्रमम् ॥ १४ ॥

धर्मशास्त्रमिदं सर्वं हारीतमुखनिःसृतम् ॥

अधर्त्य कुरुते धर्मं स याति परमां गतिम् ॥ १५ ॥

ब्राह्मणस्य तु यत्कर्म कथितं बाहुजस्य च ॥

ऊरुजस्यापि यत्कर्म कथितं पादजस्य च ॥ १६ ॥

अन्यथा वर्तमानस्तु सद्यः पतति जातितः ॥

यो यस्याभिहितो धर्मः स तु तस्य तथैव च ॥ १७ ॥

तस्मात्स्वधर्मं कुर्वीत द्विजो नित्यमनापदि ॥

राजेंद्र वर्णाश्चत्वारश्चत्वारश्चापि चाश्रमाः ॥ १८ ॥

स्वधर्मं येऽनुतिष्ठन्ति ते यांति परमां गतिम् ॥

स्वधर्मेण यया नृणां नरसिंहः प्रसीदति ॥ १९ ॥

न तुष्यति तयान्येन कर्मणा मधुसूदनः ॥

अतः कुर्वन्निजं कर्म यथाकालमतन्द्रितः ॥ २० ॥

सहस्रानीकदेवेशं नरसिंहं च सालयम् ॥ २१ ॥

उत्पन्नवैराग्यबलेन योगी

ध्यायेत्परं ब्रह्म सदा क्रियावान् ॥

सत्यं सुखं रूपमनंतमाद्यं

विहाय देहं पदमेति विष्णोः ॥ २२ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इति हारीतस्मृतिः समाप्ता ३.



॥ श्रीः ॥

औशनसी स्मृतिः ४.

—ॐ—

अथौशनसं धर्मशास्त्रम् ॥ उशना उवाच ॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि जातिवृत्तिविधानकम् ॥
अनुलोमविधानं च प्रतिलोमविधिं तथा ॥ १ ॥
सांतरालकसंयुक्तं सर्वं संक्षिप्य चोच्यते ॥
नृपाद्ब्राह्मणकन्यायां विवाहेषु समन्वयात् ॥ २ ॥
जातः सूतोऽत्र निर्दिष्टः प्रतिलोमविधिर्द्विजः ॥
वेदानर्हस्तथा चैषां धर्माणामनुबोधकः ॥ ३ ॥
सूताद्विप्रसूतायां सुतो वेणुक उच्यते ॥
नृपायामेव तस्यैव जातो यश्चर्मकारकः ॥ ४ ॥
ब्राह्मण्यां क्षत्रियाच्चौर्याद्रथकारः प्रजायते ॥
वृत्तं च शूद्रवत्तस्य द्विजत्वं प्रतिषिध्यते ॥ ५ ॥
यानानां ये च वोढारस्तेषां च परिचारकाः ॥
शूद्रवृत्त्या तु जीवन्ति न क्षात्रं धर्ममाचरेत् ॥ ६ ॥
ब्राह्मण्यां वैश्यसंसर्गाज्जातो मागध उच्यते ॥
बन्दिष्वं ब्राह्मणानां च क्षत्रियाणां विशेषतः ॥ ७ ॥

प्रशमावृत्तिको जीवेद्वैश्यप्रेष्यकरस्तथा ॥

ब्राह्मण्यां शूद्रसंसर्गाजातश्चण्डाल उच्यते ॥ ८ ॥

सीसमाभरणं तस्य काष्णायिसमथापि वा ॥

वधी कंठे समाबद्ध्य झल्लरीं कक्षतोऽपि वा ॥ ९ ॥

मलापकर्षणं ग्रामे पूर्वाह्णे परिशुद्धिकम् ॥

नापराह्णे प्रविष्टोऽपि बहिर्गामाच्च नैर्ऋते ॥ १० ॥

पिंडीभूता भवंत्यत्र नो चेद्वध्या विशेषतः ॥

चण्डालाद्वैश्यकन्यायां जातः श्वपच उच्यते ॥ ११ ॥

श्वमांसभक्षणं तेषां श्वान एव च तद्वलम् ॥

नृपायां वैश्यसंसर्गादायोगव इति स्मृतः ॥ १२ ॥

तंतुवाया भवंत्येव वसुकांस्योपजीविनः ॥

शीलिकाः केचिदत्रैव जीवनं वस्त्रनिर्मिते ॥ १३ ॥

आयोगवेन विप्रायां जातास्ताम्रोपजीविनः ॥

तस्यैव नृपकन्यायां जातः सूनिक उच्यते ॥ १४ ॥

सूनिकस्य नृपायां तु जाता उद्धंधकाः स्मृताः ॥

निर्णेजयेयुर्वस्त्राणि अस्पृश्याश्च भवंत्यतः ॥ १५ ॥

नृपायां वैश्यतश्चौर्यात्पुल्लिंदः परिकीर्तितः ॥

पशुवृत्तिर्भवेत्तस्य हन्युस्तान्दुष्टसत्त्वकान् ॥ १६ ॥

नृपायां शूद्रसंसर्गाजातः पुल्कस उच्यते ॥

सुरावृत्तिं समारुह्य मध्वविक्रयकर्मणा ॥ १७ ॥

कृतकानां सुराणां च विक्रेता पाचको भवेत् ॥

पुलकसाद्वैश्यकन्यायां जातो रजक उच्यते ॥ १८ ॥

नृपायां शूद्रतश्चौर्याज्जातो रंजक उच्यते ॥

वैश्यायां रंजकाज्जातो नर्तको गायको भवेत् ॥ १९ ॥

वैश्यायां शूद्रसंसर्गाज्जातो वैदेहिकः स्मृतः ॥

अजानां पालनं कुर्यान्महिषीणां गवामपि ॥ २० ॥

दधिक्षीराज्यतक्राणां विक्रयाज्जीवनं भवेत् ॥

वैदेहिकात्तु विप्रायां जाताश्चर्मोपजीविनः ॥ २१ ॥

नृपायामेव तस्यैव सूचिकः पाचकः स्मृतः ॥

वैश्यायां शूद्रतश्चौर्याज्जातश्चक्री स उच्यते ॥ २२ ॥

तैलपिष्टकजीवी तु लवणं भावयन्पुनः ॥

विधिना ब्राह्मणः प्राप्य नृपायां तु समंत्रकम् ॥ २३ ॥

जातः सुवर्ण इत्युक्तः सानुलोमद्विजः स्मृतः ॥

अथ वर्णक्रियां कुर्वन्नित्यनैमित्तिकीं क्रियाम् ॥ २४ ॥

अश्वं रथं हस्तिनं च वाहयेद्वा नृपाज्ञया ॥

सैनारत्यं च भैषज्यं कुर्याज्जीवेत्तु वृद्धिषु ॥ २५ ॥

नृपायां विप्रतश्चौर्यात्संजातो यो भिषकस्मृतः ॥

अभिषिक्तनृपस्याज्ञां परिपाल्येत्तु वैद्यकम् ॥ २६ ॥

आयुर्वेदमथाष्टांगं तत्रोक्तं धर्ममाचरेत् ॥

ज्योतिषं गणितं वापि कायिकीं वृद्धिमाचरेत् ॥ २७ ॥

नृपायां विधिना विप्राज्जातो नृप इति स्मृतः ॥
 नृपायां नृपसंसर्गात्प्रमादाद्गूढजातकः ॥ २८ ॥
 सोऽपि क्षत्रिय एव स्यादभिषेके च वर्जितः ॥
 अभिषेकं विना प्राप्य गोज इत्यभिधायकः ॥ २९ ॥
 सर्वं तु राजवृत्तस्य शस्यते पदवन्दनम् ॥
 पुनर्भूकरणे राज्ञां नृपकालीन एव च ॥ ३० ॥
 वैश्यायां विधिना विप्राज्जातो ह्यंबष्ठ उच्यते ॥
 कृष्याजीवी भवेत्तस्य तथैवाग्नेयवृत्तिकः ॥ ३१ ॥
 ध्वजिनी जीविका वापि अंबष्ठाः शस्त्रजीविनः ॥
 वैश्यायां विप्रतश्चौर्यात्कुंभकारः स उच्यते ॥ ३२ ॥
 कुलालवृत्त्या जीवेत नापिता वा भवन्त्यतः ॥
 सूतके प्रेतके वापि दीक्षाकालेऽथ वापनम् ॥ ३३ ॥
 नाभेरूर्ध्वं तु वपनं तस्मान्नापित उच्यते ॥
 कायस्थ इति जीवेतु विचरेच्च इतस्ततः ॥ ३४ ॥
 काकाल्लौल्यं यमात्क्रौर्यं स्थपतेरथ कृतनम् ॥
 आद्यक्षराणि संगृह्य कायस्थ इति कीर्तितः ॥ ३५ ॥
 शूद्रायां विधिना विप्राज्जातः पारशवो मतः ॥
 भद्रकादीन्समाश्रित्य जीवेयुः पूतकाः स्मृताः ॥ ३६ ॥
 शिवाद्यागमविद्याद्यैस्तथा मंडलवृत्तिभिः ॥

तस्यां वै चौरसो वृत्तो निषादो जात उच्यते ॥
 वने दुष्टमृगान्हत्वा जीवनं मांसविक्रयः ॥ ३७ ॥
 नृपाज्जातोऽथ वैश्यायां गृह्यायां विधिना सुतः ॥
 वैश्यवृत्त्या तु जीवेत क्षत्रधर्मं न चारयेत् ॥ ३८ ॥
 तस्यां तस्यैव चौर्येण मणिकारः प्रजायते ॥
 मणीनां राजतां कुर्यान्मुक्तानां वेधनक्रियाम् ॥
 प्रवालानां च सूत्रित्वं शाखानां वलयक्रियाम् ॥ ३९ ॥
 शूद्रस्य विप्रसंसर्गाज्जात उग्र इति स्मृतः ॥
 नृपस्य दंडधारः स्याद्दंडं दंड्येषु संचरेत् ॥ ४० ॥
 तस्यैव चावसंवृत्त्या जातः शुंडिक उच्यते ॥
 जातदुष्टान्समारोप्य शुंडाकर्मणि योजयेत् ॥ ४१ ॥
 शूद्रायां वैश्यसंसर्गाद्विधिना सूचिकः स्मृतः ॥ ४२ ॥
 सूचिकाद्विप्रकन्यायां जातस्तक्षक उच्यते ॥
 शिल्पकर्माणि चान्यानि प्रासादलक्षणं तथा ॥ ४३ ॥
 नृपायामेव तस्यैव जातो यो मत्स्यबंधकः ॥
 शूद्रायां वैश्यतश्चौर्यात्कटकार इति स्मृतः ॥ ४४ ॥
 वशिष्ठशापात्रेतायां केचित्पारशवास्तथा ॥
 वैखानसेन केचित्तु केचिद्भागवतेन च ॥ ४५ ॥
 वेदशास्त्रावलंबास्ते भविष्यांति कलौ युगे ॥
 कटकारास्ततः पश्चान्नारायणगणाः स्मृताः ॥ ४६ ॥

शाखा वैखानसेनोक्तास्तंत्रमार्गविधिक्रियाः ॥
 निषेकाद्याः श्मशानांताः क्रियाः पूजांगसूचिकाः ॥ ४७ ॥
 पञ्चरात्रेण वा प्राप्तं प्रोक्तं धर्मं समाचरेत् ॥
 शूद्रादेव तु शूद्रायां जातः शूद्र इति स्मृतः ॥ ४८ ॥
 द्विजशुश्रूषणपरः पाकयज्ञपरान्वितः ॥
 सच्छूद्रं तं विजानीयादसच्छूद्रस्ततोऽन्यथा ॥ ४९ ॥
 चौर्यात्काकवचो ज्ञेयश्चाश्वानां तृणवाहकः ॥ ५० ॥
 एतत्संक्षेपतः प्रोक्तं जातिवृत्तिविभागशः ॥
 जात्यंतराणि दृश्यन्ते संकल्पादित एष तु ॥ ५१ ॥
 इत्यौशनसं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ ४ ॥
 औशनसी स्मृतिः समाप्ता ४.



॥ श्रीः ॥

आंगिरसस्मृतिः ५.



गृहाश्रमेषु धर्मेषु वर्णानामनुपूर्वशः ॥
प्रायश्चित्तविधिं दृष्ट्वा अंगिरा मुनिरब्रवीत् ॥ १ ॥
अंत्यानामपि सिद्धान्नं भक्षयित्वा द्विजातयः ॥
चांद्रं कृच्छ्रं तदर्थं तु ब्रह्मक्षत्रविशां विदुः ॥ २ ॥
रजकश्चर्मकश्चैव नटो बुरुड एव च ॥
कैवर्तमेदामिल्लाश्च सप्तैते चांत्यजाः स्मृताः ॥ ३ ॥
अंत्यजानां गृहे तोयं भांडे पर्युषितं च यत् ॥
यद्विजेन यदा पीतं तदैव हि समाचरेत् ॥ ४ ॥
चण्डालकूपे भांडेषु त्वज्ञानात्पिबते यदि ॥
प्रायश्चित्तं कथं तेषां वर्णे वर्णे विधीयते ॥ ५ ॥
चरेत्सांतपनं विप्रः प्राजापत्यं तु भूमिपः ॥
तदर्थं तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रेषु दापयेत् ॥ ६ ॥
अज्ञानात्पिबते तोयं ब्राह्मणस्त्वं त्यजातिषु ॥
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥
विप्रो विप्रेण संस्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ॥
आचांत एव शुद्ध्येत अंगिरा मुनिरब्रवीत् ॥ ८ ॥

क्षत्रियेण यदा स्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ॥
 स्नानं जप्यं तु कुर्वीत दिनस्यार्द्धेन शुद्ध्यति ॥ ९ ॥
 वैश्येन तु यदा स्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः ॥
 ठपोष्य रजनमिकां पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १० ॥
 अनुच्छिष्टेन संस्पृष्टः स्नानं येन विधीयते ॥
 तेनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ११ ॥
 अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि नीलीशौचस्य वै विधिम् ॥
 स्त्रीणां क्रीडार्थसंभोगे शयनीये न दुष्यति ॥ १२ ॥
 पालनं विक्रयश्चैव तद्वृत्त्या चोपजीवनम् ॥
 पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥ १३ ॥
 स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ॥
 स्पृष्ट्वा तस्य महापापं नीलीवस्त्रस्य धारणम् ॥ १४ ॥
 नीलीरक्तं यदा वस्त्रमज्ञानेन तु धारयेत् ॥
 अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १५ ॥
 नीलीदारु यदा भिद्याद्वाह्मणो वै प्रमादतः ॥
 शोणितं दृश्यते यत्र द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥ १६ ॥
 नीलीवृक्षेण पकं तु अन्नमश्नाति चेद्विजः ॥
 आहारवमनं कृत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १७ ॥
 भक्षेत्प्रमादतो नीलीं द्विजातिस्त्वसमाहितः ॥
 त्रिषु वर्णेषु सामान्यं चांद्रायणमिति स्थितम् ॥ १८ ॥

नीलीरक्तेन वस्त्रेण यदन्नमुपदीयते ॥

नोपतिष्ठति दातारं भोक्ता भुंक्ते तु किल्बिषम् ॥ १९ ॥

नीलीरक्तेन वस्त्रेण यत्पाके श्रपितं भवेत् ॥

तेन भुक्तेन विप्राणां दिनमेकमभोजनम् ॥ २० ॥

मृते भर्तरि या नारी नीलीवस्त्रं प्रधारयेत् ॥

भर्ता तु नरकं याति सा नारी तदनंतरम् ॥ २१ ॥

नील्या चोपहते क्षेत्रे सस्यं यत्तु प्ररोहति ॥

अभोज्यं तद्विजातीनां भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ २२ ॥

देवद्रोणे वृषोत्सर्गे यज्ञे दाने तथैव च ॥

अत्र स्नानं न कर्तव्यं दूषिता च वसुंधरा ॥ २३ ॥

वापिता यत्र नीली स्यात्तावद्भूरशुचिर्भवेत् ॥

यावद्द्वादशवर्षाणि अत ऊर्ध्वं शुचिर्भवेत् ॥ २४ ॥

भोजने चैव पाने च तथा चौषधसेवनेः ॥

एवं म्रियन्ते या गावः पादमेकं समाचरेत् ॥ २५ ॥

घंटाभरणदोषेण यत्र गौर्विनिपीड्यते ॥

चरेदूर्ध्वं व्रतं तेषां भूषणार्थं तु यत्कृतम् ॥ २६ ॥

दमने दामने रोधे अवघाते च वैकृते ॥

गवां प्रभवतां घातैः पादोनं व्रतमाचरेत् ॥ २७ ॥

अंगुष्ठपर्वमात्रस्तु बाहुमात्रप्रमाणतः ॥

सपल्लवश्च साग्रश्च दंड इत्यभिधीयते ॥ २८ ॥

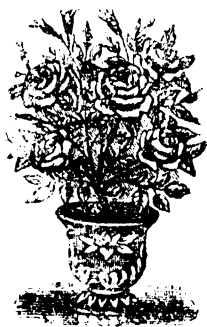
दंडादुक्ताद्यदान्येन पुरुषाः प्रहरन्ति गाम् ॥
 द्विगुणं गोव्रतं तेषां प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ २९ ॥
 शृंगभंगे त्वस्थिभंगे चर्मनिर्मोचने तथा ॥
 दशरात्रं चरेत्कृच्छ्रं यावत्स्वस्थो भवेत्तदा ॥ ३० ॥
 गोमूत्रेण तु संमिश्रं यावकं चोपजायते ॥
 एतदेव हितं कृच्छ्रमित्थमंगिरसा स्मृतम् ॥ ३१ ॥
 असमर्थस्य बालस्य पिता वा यदि वा गुरुः ॥
 यमुद्दिश्य चरेद्धर्मं पापं तस्य न विद्यते ॥ ३२ ॥
 अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यूनषोडशः ॥
 प्रायश्चित्तार्द्धमर्हति स्त्रियो रोगिण एव च ॥ ३३ ॥
 मूर्च्छिते पतिते चापि गवि यष्टिप्रहारिते ॥
 गायत्र्यष्टसहस्रं तु प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ ३४ ॥
 स्नात्वा रजस्वला चैव चतुर्थेऽह्नि विशुद्ध्यति ॥
 कुर्याद्रजसि निर्वृत्तेऽनिर्वृत्ते न कथंचन ॥ ३५ ॥
 रोगेण यद्रजः स्त्रीणामत्यर्थं हि प्रवर्तते ॥
 अशुद्धास्ता न तेन स्युस्तासां वैकारिकं हि तत् ॥ ३६ ॥
 साध्वाचारा न तावत्स्याद्रजो यावत्प्रवर्तते ॥
 वृत्ते रजसि गम्या स्त्री गृहकर्मणि चैन्द्रिये ॥ ३७ ॥
 प्रथमेऽहनि चण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ॥
 तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ॥ ३८ ॥

रजस्वला यदा स्पृष्टा शुना शूद्रेण चैव हि ॥
 उपोष्य रजनीमिकां पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३९ ॥
 द्रावेतावशुची स्यातां दंपती शयनं गतौ ॥
 शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान् ॥ ४० ॥
 रजसा शुद्ध्यते नारी नदी वेगेन शुध्यति ॥
 भूमौ निःक्षिप्य षण्मासमत्यंतोपहतं शुचि ॥ ४१ ॥
 गवाघ्रातानि कांस्यानि शूद्रोच्छिष्टानि यानि तु ॥
 भस्मना दशभिः शुद्ध्येत्काकेनोपहते तथा ॥ ४२ ॥
 शौचं सौवर्णराप्याणां वायुनाकैंदुरश्मिभिः ॥
 रजःस्पृष्टं शवस्पृष्टमाविकं च न शुद्ध्यति ॥ ४३ ॥
 अद्भिर्मृदा च यन्मात्रं प्रक्षाल्य च विशुद्ध्यति ॥
 शुष्कमन्नमविप्रस्य भुक्त्वा सप्ताहमृच्छति ॥ ४४ ॥
 अन्नव्यंजनसंयुक्तमर्द्धमासेन शुद्ध्यति ॥
 पयो दधि च मासेन षण्मासेन घृतं तथा ॥
 तैलं संवत्सरेणैव काये जीर्यति वा न वा ॥ ४५ ॥
 यो भुंक्ते हि च शूद्रान्नं मासमेकं निरंतरम् ॥
 इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा चाभिजायते ॥ ४६ ॥
 शूद्रान्नं शूद्रसंपर्कः शूद्रेण च सहासनम् ॥

शूद्राज्ज्ञानागमः कश्चिज्ज्वलंतमपि पातयेत् ॥ ४८ ॥
 अप्रणामं गते शूद्रे स्वास्ति कुर्वति ये द्विजाः ॥
 शूद्रोऽपि नरकं याति ब्राह्मणोऽपि तथैव च ॥ ४९ ॥
 दशाहाच्छुद्ध्यते विप्रो द्वादशाहेन भूमिपः ॥
 पाक्षिकं वैश्य एवाहुः शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ५० ॥
 अग्निहोत्रो तु यो विप्रः शूद्रान्नं चैव भोजयेत् ॥
 पंच तस्य प्रणश्यंति चात्मा वेदास्त्रयोऽग्रयः ॥ ५१ ॥
 शूद्रान्नेन तु भुक्तेन यो द्विजो जनयेत्सुतान् ॥
 यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाच्छुक्रं प्रवर्तते ॥ ५२ ॥
 शूद्रेण स्पृष्टमुच्छिष्टं प्रमादादथ पाणिना ॥
 तद्विजेभ्यो न दातव्यमापस्तत्रोब्रवीन्मुनिः ॥ ५३ ॥
 ब्राह्मणस्य सदा भुंक्ते क्षत्रियस्य च पर्वसु ॥
 वैश्येष्वपि त्सु भुंजीत न शूद्रेऽपि कदाचन ॥ ५४ ॥
 ब्राह्मणान्ने दरिद्रत्वं क्षत्रियान्ने पशुस्तथा ॥
 वैश्यान्नेन तु शूद्रत्वं शूद्रान्ने नरकं ध्रुवम् ॥ ५५ ॥
 अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम् ॥
 वैश्यस्य चान्नमेवान्नं शूद्रान्नं रुधिरं ध्रुवम् ॥ ५६ ॥
 दुष्कृतं हि मनुष्याणामन्नमाश्रित्य तिष्ठति ॥
 यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषम् ॥ ५७ ॥
 सूतकेषु यदा विप्रो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥

विवेत्पानीयमज्ञानाद्भुङ्क्ते भक्तमथापि वा ॥ ५८ ॥
 उत्तार्याचम्य उदकमवतर्यि उपस्पृशेत् ॥
 एवं हि स मुधाचारो वारुणेनाभिमंत्रितः ॥ ५९ ॥
 अग्न्यगारे गवां गोष्ठे देवब्राह्मणसन्निधौ ॥
 आचरेज्जपकाले च पादुकानां विसर्जनम् ॥ ६० ॥
 पादुकासनमारूढो गेहात्पंचगृहं व्रजेत् ॥
 छेदयेत्तस्य पादौ तु धार्मिकः पृथिवीपतिः ॥ ६१ ॥
 अग्निहोत्री तपस्वी च श्रोत्रियो वेदपारगः ॥
 एते वै पादुकैर्यान्ति शेषान्दंडेन ताडयेत् ॥ ६२ ॥
 जन्मप्रभृतिसंस्कारे चूडांते भोजने नवे ॥
 असर्पिडे न भोक्तव्यं चूडस्यांते विशेषतः ॥ ६३ ॥
 याचकान्नं नवश्राद्धमपि सूतकभोजनम् ॥
 नारीप्रथमगर्भेषु भुक्त्वा चांदायणं चरेत् ॥ ६४ ॥
 अन्यदत्ता तु या कन्या पुनरन्यस्य दीयते ॥
 तस्य चान्नं न भोक्तव्यं पुनर्भूः सा प्रणीयते ॥ ६५ ॥
 पूर्वस्य श्रावितो यश्च गर्भो यश्चाप्यसंस्कृतः ॥
 द्वितीये गर्भसंस्कारस्तेन शुद्धिर्विधीयते ॥ ६६ ॥
 राजार्थैर्दशभिर्मासैर्यावत्तिष्ठति गुर्विणी ॥
 तावद्रक्षा विधातव्या पुनरन्यो विधीयते ॥ ६७ ॥
 भर्तृशासनमुल्लंघ्य या च स्त्री विप्रवर्तते ॥

तस्याश्चैव न भोक्तव्यं विज्ञेया कामचारिणी ॥ ६८ ॥
 अनपत्या तु या नारी नाशनीयात्तद्गृहेऽपि वै ॥
 अथ भुंक्ते तु यो मोहात्पूयं स नरकं व्रजेत् ॥ ६९ ॥
 स्त्रिया धनं तु ये मोहादुपजीवंति मानवाः ॥
 स्त्रिया यानानि वासांसि ते पापा यांत्यधोगतिम् ॥ ७० ॥
 राजान्नं हरते तेजः शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ॥
 सूतकेषु च यो भुंक्ते स भुंक्ते पृथिवीमलम् ॥ ७१ ॥
 इत्यंगिरःप्रणीतं धर्मशास्त्रं सम्पूर्णम् ॥ ५ ॥
 इत्याङ्गिरसस्मृतिः समाप्ता ॥ ५ ॥



॥ श्रीः ॥

यमस्मृतिः ६.



श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं वर्णानामनुपूर्वशः ॥
प्राब्रवीद्दृषिभिः पृष्टो मुनीनामग्रणीर्यमः ॥ १ ॥
यो भुञ्जानोऽशुचिर्वापि चंडालं पतितं स्पृशेत् ॥
क्रोधादज्ञानतो वापि तस्य वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥ २ ॥
षट्पात्रं वा त्रिरात्रं वा यथासंख्यं समाचरेत् ॥
स्नात्वा त्रिषवणं विप्रः पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३ ॥
भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित्स्रवते गुदम् ।
उच्छिष्टत्वे शुचित्वे च तस्य शौचं विनिर्दिशेत् ॥ ४ ॥
पूर्वं कृत्वा द्विजः शौचं पश्चादप उपस्पृशेत् ॥
अहोरात्रोषितो भूत्वा जुहुयात्सर्पिषाहुतिम् ॥ ५ ॥
निगिरन् यदि मेहेत भुक्त्वा वा मेहने कृते ॥
अहोरात्रोषितो भूत्वा जुहुयात्सर्पिषाहुतिम् ॥ ६ ॥
यदा भोजनकाले स्यादशुचिर्ब्राह्मणः क्वचित् ॥
भूमौ निधाय तद्भासं स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥
भक्षयित्वा तु तद्भासमुपवासेन शुद्ध्यति ॥

अशित्वा चैव तत्सर्वं त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ ८ ॥
 अश्नतश्चेद्विरेकः स्यादस्वस्थस्त्रिशतं जपेत् ॥
 स्वस्थस्त्रीणि सहस्राणि गापय्याः शोधनं परम् ॥ ९ ॥
 चंडालैः श्वपचैः स्पृष्टो विष्मूत्रे च कृते द्विजः ॥
 त्रिरात्रं तु प्रकुर्वीत भुक्तोच्छिष्टः षडाचरेत् ॥ १० ॥
 उदक्यां सूतिकां वापि संस्पृशेदंत्यजो यदि ॥
 त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्यादिति शातातपोब्रवीत् ॥ ११ ॥
 रजस्वला तु संस्पृष्टा श्रमातंगादिवायसैः ॥
 निराहाराशुचिस्तिष्ठेत्कालस्नानेन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥
 रजस्वले यदा नार्यावन्प्योन्यं स्पृशतः क्वचित् ॥
 शुद्ध्यतः पंचगव्येन ब्रह्मकूर्चेन चोपरि ॥ १३ ॥
 उच्छिष्टेन च संस्पृष्टा कदाचित्स्त्री रजस्वला ॥
 कृच्छ्रेण शुद्धिमप्नोति शूद्रा दानोपवासतः ॥ १४ ॥
 अनुच्छिष्टेन संस्पृष्टे स्नानं येन विधीयते ॥
 तैर्नवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ १५ ॥
 ऋतौ तु गर्भं शंकित्वा स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ॥
 अनृतौ तु स्त्रियं गत्वा शौचं मूत्रपुरीषवत् ॥ १६ ॥
 उभावप्यशुची स्यातां दंपती शयने गतौ ॥
 शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान् ॥ १७ ॥

भर्तुः शरीरशुश्रूषां दौरात्म्यादप्रकुर्वती ॥

दंड्या द्वादशकं नारी वर्षं त्याज्या धनं विना ॥ १८ ॥

त्यजंतोऽपतितान्बन्धून्दंड्या उत्तमसाहसम् ॥

पिता हि पतितः कामं न तु माता कदाचन ॥ १९ ॥

आत्मानं घातयेद्यस्तु रज्ज्वाऽऽदिभिरुपक्रमैः ॥

मृतोऽमेध्येन लेप्तव्यो जीवतो द्विशतं दमः ॥ २० ॥

दंड्यास्तत्पुत्रमित्राणि प्रत्येकं पणिकं दमम् ॥

प्रायश्चित्तं ततः कुर्यूर्यथाशास्त्रप्रचोदितम् ॥ २१ ॥

जलाद्युद्धं धनभ्रष्टाः प्रव्रज्यानाशकच्युताः ॥

विषप्रपतनं प्रायः शस्त्रघातहताश्च ये ॥ २२ ॥

न चैते प्रत्यवसिताः सर्वलोकबहिष्कृताः ॥

चांद्रायणेन शुद्ध्यति तप्तकृच्छ्रद्वयेन वा ॥ २३ ॥

उभयावसितः पापः श्यामाच्छबलकाच्छ्रुतः ॥

चांद्रायणाभ्यां शुद्ध्येत दत्त्वा धेनुं तथा वृषम् ॥ २४ ॥

श्वशृगालप्लवंगाद्यैर्मानुषैश्च रतिं विना ॥

दष्टः स्नात्वा शुचिः सद्यो दिवा संध्यासु रात्रिषु ॥ २५ ॥

अज्ञानाद्ब्राह्मणो भुक्त्वा चंडालान्नं कदाचन ॥

गोमूत्रयावकाहारो मासाद्धेन विशुद्ध्यति ॥ २६ ॥

गोब्राह्मणहनं दग्ध्वा मृतं चोद्धन्यादिना ॥

पाशं छित्त्वा तथा तस्य कृच्छ्रमेकं चरेद्विजः ॥ २७ ॥

चंडालपुलकसानां च भुक्त्वा गत्वा च योषितम् ॥
 कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैंदवद्वयम् ॥ २८ ॥
 कापालिकान्नभोक्तृणां तन्नारीगामिनां तथा ॥
 कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैंदवद्वयम् ॥ २९ ॥
 अगम्यागमने विप्रो मद्यगोमांसभक्षणे ॥
 तप्तकृच्छ्रपरिक्षितो मौर्षाहोमेन शुद्ध्यति ॥ ३० ॥
 महापातककर्तारश्चत्वारोऽथ विशेषतः ॥
 अग्निं प्रविश्य शुद्ध्यन्ति स्थित्वा वा महति क्रतौ ॥ ३१ ॥
 रहस्यकरणेऽप्येवं मासमभ्यस्य पुरुषः ॥
 अघमर्षणसूक्तं वा शुद्ध्येदंतर्जले स्थितः ॥ ३२ ॥
 रजकश्चर्मकश्चैव नटो बुरुड एव च ॥
 कैवर्त्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते अन्त्यजाः स्मृताः ॥ ३३ ॥
 भुक्त्वा चैषां स्त्रियो गत्वा पीत्वाऽपः प्रतिगृह्य च ॥
 कृच्छ्राब्दमाचरेज्ज्ञानादज्ञानादैंदवद्वयम् ॥ ३४ ॥
 मातरं गुरुपत्नीं च स्वसृद्दुहितरं स्नुषाम् ॥
 गत्वैताः प्रविशेदग्निं नान्या शुद्धिर्विधीयते ॥ ३५ ॥
 राज्ञीं प्रव्राजितां धात्रीं तथा वर्णोत्तमामपि ॥
 कृच्छ्रद्वयं प्रकुर्वीत सगोत्रामभिगम्य च ॥ ३६ ॥
 अन्यासु पितृगोत्रासु मातृगोत्रगतास्वपि ॥
 परदारेषु सर्वेषु कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ ३७ ॥

वेद्याभिगमने पापं व्यपोहन्ति द्विजातयः ॥
 पीत्वा सकृत्सुतप्तं च पंचरात्रं कुशोदकम् ॥ ३८ ॥
 गुरुतल्पव्रतं केचित्केचिद्ब्रह्महणो व्रतम् ॥
 गोघ्नस्य केचिदिच्छन्ति केचिच्चैवावकाणिनः ॥ ३९ ॥
 दंडादूर्ध्वप्रहारेण यस्तु गां विनिपातयेत् ॥
 द्विगुणं गोव्रतं तस्य प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ४० ॥
 अंगुष्ठमात्रस्थूलस्तु बाहुपात्रप्रमाणकः ॥
 सार्द्रश्च सपलाशश्च गोदंडः परिकीर्तितः ॥ ४१ ॥
 गवां निपातने चैव गर्भोऽपि संपतेद्यदि ॥
 एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रं यथापूर्वं तथा पुनः ॥ ४२ ॥
 पादमुत्पन्नमात्रे तु द्वौ पादौ मात्रसंभवे ॥
 पादोनं कृच्छ्रमाचष्टे हत्वा गर्भमचेतनम् ॥ ४३ ॥
 अंगप्रत्यंगसंपूर्णे गर्भे रेतःसमन्विते ॥
 एकैकशश्चरेत्कृच्छ्रमेषा गोघ्नस्य निष्कृतिः ॥ ४४ ॥
 बंधने रोधने चैव पोषणे वा गवां रुजा ॥
 संपद्यते चेन्मरणं निमित्ती नैव लिप्यते ॥ ४५ ॥
 मूर्च्छितः पतितो वापि दंडेनाभिहतस्तथा ॥
 उत्थाय षट्पदं गच्छेत्सप्त पंच दशापि वा ॥ ४६ ॥
 ग्रासं वा यदि गृह्णीयात्तोयं वापि पिबेद्यदि ॥
 पूर्वव्याधिप्रनष्टानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४७ ॥

काष्ठलोष्टाश्मभिर्गावः शस्त्रैर्वा निहता यदि ॥
 प्रायश्चित्तं कथं तत्र शास्त्रे शास्त्रे निगद्यते ॥ ४८ ॥
 काष्ठे सांतपनं कुर्व्यात्प्राजापत्यं तु लोष्टके ॥
 तप्तकृच्छ्रं तु पाषाणे शस्त्रे चाप्यतिकृच्छ्रकम् ॥ ४९ ॥
 औषधं स्नेहमाहारं दद्याद्गोब्राह्मणेषु च ॥
 दीयमाने विपत्तिः स्यात्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ५० ॥
 तैलभेषजपाने च भेषजानां च भक्षणे ॥
 निःशल्यकरणे चैव प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ५१ ॥
 वस्त्रानां कंठबंधे च क्रिया भेषजेन तु ॥
 स्यात्संगोपनार्थं च न दोषो रोधबंधयोः ॥ ५२ ॥
 पादे चैवास्य रोमाणि द्विपादे श्मश्रु केवलम् ॥
 त्रिपादे तु शिखावर्जं मूले सर्वं समाचरेत् ॥ ५३ ॥
 सर्वान्केशान्समुद्धृत्य च्छेदयेदंगुलद्वयम् ॥
 एवमेव तु नारीणां मुंडमुंडापनं स्मृतम् ॥ ५४ ॥
 न स्त्रिया वपनं कार्यं न च वीरासनं स्मृतम् ॥
 न च गोष्ठे निवासोऽस्ति न गच्छंतीमनुव्रजेत् ॥ ५५ ॥
 राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः ॥
 अकृत्वा वपनं तेषां प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ५६ ॥
 केशानां रक्षणार्थं च द्विगुणं व्रतमादिशेत् ॥

द्विगुणं तु व्रते चीर्णे द्विगुणैव तु दक्षिणा ॥ ५७ ॥
 द्विगुणं चेन्न दत्तं हि केशांश्च परिरक्षयेत् ॥
 पापं न क्षीयते हंतुर्दाता च नरकं व्रजेत् ॥ ५८ ॥
 अश्रौतस्मार्तविहितं प्रायश्चित्तं वदन्ति ये ॥
 तान्धर्मविघ्नकर्तृश्च राजा दंडेन पीडयेत् ॥ ५९ ॥
 न चेत्तान्पीडयेद्राजा कथंचित्काममोहितः ॥
 तत्पापं शतधा भूत्वा तमेव परिसर्पति ॥ ६० ॥
 प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥
 विंशतिं गा वृषं चैकं दद्यात्तेषां च दक्षिणाम् ॥ ६१ ॥
 कुम्भिभिर्व्रणसंभूतैर्मक्षिकाभिश्च पातितैः ॥
 कृच्छ्राद्धं संप्रकुर्वीत शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ ६२ ॥
 प्रायश्चित्तं च कृत्वा वै भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥
 सुवर्णमाषकं दद्यात्ततः शुद्धिर्विधीयते ॥ ६३ ॥
 चण्डालश्चपचैः स्पृष्टे निशि स्नानं विधीयते ॥
 न वसेत्तत्र रात्रौ तु सद्यः स्नानेन शुद्ध्यति ॥ ६४ ॥
 अथ वसेद्यदा रात्रौ अज्ञानादविचक्षणः ॥
 तदा तस्य तु तत्पापं शतधा परिवर्त्तते ॥ ६५ ॥
 उद्गच्छन्ति हि नक्षत्राण्युपरिष्ठाच्च ये ग्रहाः ॥
 संस्पृष्टे रश्मिभिस्तेषामुदके स्नानमाचरेत् ॥ ६६ ॥

कुड्यांतर्जलवल्मीकमूषिकोत्करवर्त्मसु ॥
 श्मशाने शौचशेषे च न ग्राह्याः सप्त मृत्तिकाः ॥ ६७ ॥
 इष्टापूर्तं तु कर्त्तव्यं ब्राह्मणेन प्रयत्नतः ॥
 इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्तं मोक्षं समश्नुते ॥ ६८ ॥
 वित्तापेक्षं भवेदिष्टं तडागं पूर्तमुच्यते ॥
 आरामश्च विशेषेण देवद्रोण्यस्तथैव च ॥ ६९ ॥
 वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च ॥
 पतितान्युद्धरेद्यस्तु स पूर्तफलमश्नुते ॥ ७० ॥
 शुक्लाया मूत्रं गृह्णीयात्कृष्णाया गोः शकृत्तथा ॥
 ताम्रायाश्च पयो ग्राह्यं श्वेताया दधि चोच्यते ॥ ७१ ॥
 कपिलाया घृतं ग्राह्यं महापातकनाशनम् ॥
 सर्वतीर्थे नदीतोये कुशैर्द्रव्यं पृथक्पृथक् ॥ ७२ ॥
 आहृत्य प्रणवेनैव उत्थाप्य प्रणवेन च ॥
 प्रणवेन समालोडय प्रणवेन तु संपिबेत् ॥ ७३ ॥
 पालाशे मध्यमे पर्णे भांडे ताम्रमये तथा ॥
 पिबेत्पुष्करपर्णे वा ताम्रे वा मृन्मये शम्भ ॥ ७४ ॥
 शुक्लाया मूत्रं गृह्णीयात्कृष्णाया गोः शकृत्तथा ॥
 द्वितीये नास्ति दोषस्तु प्रथमेनैव शुद्ध्यति ॥ ७५ ॥
 जातेन शुद्ध्यते जातं मृतेन मृतकं तथा ॥

गर्भे संस्रवणे मासे त्रीण्यहानि विनिर्दिशेत् ॥ ७६ ॥
 सूतके तु समुत्पन्ने द्वितीये समुपस्थिते ॥
 रजस्युपरते साध्वी स्नानेन स्त्री रजस्वला ॥ ७७ ॥
 स्वगोत्राद्भ्रश्यते नागि विवाहात्सप्तमे पदे ॥
 स्वामिगोत्रेण कर्तव्या तस्याः पिंडोदकक्रिया ॥ ७८ ॥
 द्वे पितुः पिण्डदानं स्यात्पिण्डे पिण्डे द्विनामता ॥
 षण्णां देयास्त्रयः पिंडा एवं दाता न मुह्यति ॥ ७९ ॥
 स्वेन भर्त्रा सह श्राद्धं माता भुक्त्वा सदैवतम् ॥
 पितामह्यपि स्वेनैव स्वेनैव प्रपितामही ॥ ८० ॥
 वर्षे वर्षे तु कुर्वीत मातापित्रोस्तु सत्कृतिम् ॥
 अदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिण्डमेकं तु निर्वपेत् ॥ ८१ ॥
 नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धमथापरम् ॥
 पार्वणं चेति विज्ञेयं श्राद्धं पंचविधं बुधैः ॥ ८२ ॥
 ग्रहोपरागे संक्रांती पर्वोत्सवमहालये ॥
 निर्वपेत्त्रीन्नरः पिंडानेकमेव मृतेहनि ॥ ८३ ॥
 अनूठा न पृथक्कन्या पिण्डे गोत्रे च सूतके ॥
 पाणिग्रहणमंत्राभ्यां स्वगोत्राद्भ्रश्यते ततः ॥ ८४ ॥
 येन येन तु वर्णेन या कन्या परिणीयते ॥
 तत्समं सूतकं याति तथा पिण्डोदकेऽपि च ॥ ८५ ॥

विवाहे चैव संवृत्ते चतुर्थेऽहनि रात्रिषु ॥
 एकत्वं सा व्रजेद्भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके ॥ ८६ ॥
 प्रथमेऽहि द्वितीये वा तृतीये वा चतुर्थके ॥
 अस्थिसंचयनं कार्यं बंधुभिर्हितबुद्धिभिः ॥ ८७ ॥
 चतुर्थे पंचमे चैव सप्तमे नवमे तथा ॥
 अस्थिसंचयनं प्रोक्तं वर्णानामनुपूर्वशः ॥ ८८ ॥
 एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः ॥
 मुच्यते प्रेतलोकात्स स्वर्गलोके महीयते ॥ ८९ ॥
 नाभिमात्रे जले स्थित्वा हृदये नानुचितयेत् ॥
 आगच्छंतु मे पितरो गह्वंत्वेताञ्जलांजलीन् ॥ ९० ॥
 हस्तौ कृत्वा तु संयुक्तौ पूरयित्वा जलेन च ॥
 गोशृंगमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये जलं क्षिपेत् ॥ ९१ ॥
 आकाशे च क्षिपेद्धारि वारिस्थो दक्षिणामुखः ॥
 पितॄणां स्थानमाकाशं दक्षिणा दिक्तथैव च ॥ ९२ ॥
 आरो देवगणाः प्रोक्ता आपः पितृगणास्तथा ॥
 तस्मादप्सु जलं देयं पितॄणां हितमिच्छता ॥ ९३ ॥
 दिवा सूर्याशुभिस्तप्तं रात्रौ नक्षत्रमारुतैः ॥
 संधयोरप्युभाभ्यां च पवित्रं सर्वदा जलम् ॥ ९४ ॥
 स्वभावयुक्तमव्याप्तममेभ्येन सदा शुचि ॥

भांडस्थं धरणीस्थं वा पवित्रं सर्वदा जलम् ॥ ९५ ॥

देवतानां पितॄणां च जले दद्याज्जलांजलीन् ॥

असंस्कृतप्रमातिनां स्थले दद्याज्जलांजलीन् ॥ ९६ ॥

श्राद्धे हवनकाले च दद्यादेकेन पाणिना ॥

उभाभ्यां तर्पणे दद्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ९७ ॥

इति यमप्रणीतं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ ६ ॥

इति यमस्मृतिः समाप्ता ६.



श्रीः ।

आपस्तंबस्मृतिः ७।

प्रथमोऽध्यायः १.

श्रीगणेशाय नमः ।

आपस्तंबं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविनिर्णयम् ॥
दूषितानां हितार्थाय वर्णानामनुपूर्वशः ॥ १ ॥
परेषां परिवादेशु निवृत्तमृषिसत्तमम् ॥
विविक्तदेश आसीनमात्मविद्यापरायणम् ॥ २ ॥
अनन्यमनसं शांतं तत्त्वस्य योगवित्तमम् ॥
आपस्तंबमृषिं सर्वे समेत्य मुनयोऽब्रुवन् ॥ ३ ॥
भगवन्मानवाः सर्वे असन्मार्गे स्थिता यदा ॥
चरेयुर्धर्मकार्याणां तेषां ब्रूहि विनिष्कृतिम् ॥ ४ ॥
यतोऽवश्यं गृहस्येन गवादिपरिपालनम् ॥
कृषिकर्मादिवपनं द्विजामंत्रणमेव च ॥ ५ ॥
बालानां स्तन्यपानादि कार्यं च परिपालनम् ॥
देयं चानाथकेश्वर्यं विप्रादीनां च भेषजम् ॥ ६ ॥
एवं कृते कथंचित्स्यात्प्रमादो यद्यकामतः ॥
गवादीनां ततोऽस्माकं भगवन्ब्रूहि निष्कृतिम् ॥ ७ ॥

एवमुक्तः क्षणं ध्यात्वा प्रणिपातादधोमुखः ॥
 दृष्ट्वा ऋषीनुवाचेदमापस्तंबः सुनिश्चितम् ॥ ८ ॥
 बालानां स्तनपानादिकार्ये दोषो न विद्यते ॥
 विपत्तावपि विप्राणामामंत्रणाचिकित्सने ॥ ९ ॥
 गवादीनां प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तं तृणादिषु ॥
 केचिदाहुर्न दोषोऽत्र स्नेहं लवणभेषजे ॥ १० ॥
 औषधं लवणं चैव स्नेहं पुष्ट्यर्थभोजनम् ॥
 प्राणिनां प्राणवृत्त्यर्थं प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ११ ॥
 अतिरिक्तं न दातव्यं काले स्वल्पं तु दापयेत् ॥
 अतिरिक्ते विपन्नानां कृच्छ्रमेव विधीयते ॥ १२ ॥
 अहर्निरशनं पादः पादश्चायाचितं व्यहम् ॥
 सायं व्यहं तथा पादः पादः प्रातस्तथा व्यहम् ॥
 प्रातः सायं दिनार्द्धं च पादोनं सायवर्जितम् ॥ १३ ॥
 प्रातः पादं चरेच्छूद्रः सायं वैश्यस्य दापयेत् ॥
 अयाचितं तु राजन्ये त्रिरात्रं ब्राह्मणस्य च ॥ १४ ॥
 पादभेकं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बंधने चरेत् ॥
 योजने पादहीनं च चरेत्सर्वं निपातने ॥ १५ ॥
 घंटाभरणदोषेण गोस्तु यत्र विपद्भवेत् ॥
 चरेदर्द्धव्रतं तत्र भूषणार्थं कृतं हि तत् ॥ १६ ॥
 दमने वा निरोधे वा संघाते चैव योजने ॥

स्तंभशृङ्खलपाशैश्च मृते पादोनमाचरेत् ॥ १७ ॥
 पाषाणैर्लगुडैर्वापि शस्त्रेणान्येन वा बलात् ॥
 निपातयन्ति ये पापान्तेषां सर्वं विधीयते ॥ १८ ॥
 प्राजापत्यं चरेद्विप्रः पादोनं क्षत्रियस्तथा ॥
 कृच्छ्राद्धं तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥ १९ ॥
 द्वौ मासौ पाययेद्वत्सं द्वौ मासौ द्वौ स्तनौ दुहेत् ॥
 द्वौ मासावेकवेलायां शेषकालं यथारुचि ॥ २० ॥
 दशरात्रार्द्धमासेन गौस्तु यत्र विपद्यते ॥
 सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २१ ॥
 हलमष्टगधं धर्म्यं षड्गधं जीवितार्थिनाम् ॥
 चतुर्गधं नृशंसानां द्विगधं हि जिघांसिनाम् ॥ २२ ॥
 अतिवाहातिदोहाभ्यां नासिकाभेदनेन वा ॥
 नदीपर्वतसंरोहे मृते पादोनमाचरेत् ॥ २३ ॥
 न नारिकेलबालाभ्यां न मुंजेन न चर्मणा ॥
 एभिर्गास्तु न बध्नीयाद्वद्धा परवशा भवेत् ॥ २४ ॥
 कुशैः काशैश्च बध्नीयाद्वृषभं दक्षिणामुखम् ॥
 पादलग्नाहिदाहेषु प्रायाश्चित्तं न विद्यते ॥ २५ ॥
 व्यापन्नानां बहूनां तु रोधने बंधनेऽपि च ॥
 भिषङ्मिथ्योऽचारैश्च द्विगुणं गोव्रतं चरेत् ॥ २६ ॥
 शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे च लांगूलस्य च कर्तने ॥

सप्तरात्रं विवेद्वज्रं यावत्स्वस्थः पुनर्भवेत् ॥ २७ ॥
 गोमूत्रेण तु संमिश्रं यावकं भक्षयेद्विजः ॥
 एतद्विमिश्रितं वज्रमुक्तं चोशनसा स्वयम् ॥ २८ ॥
 देवद्रोण्यां विहारेषु कूपेष्वायतनेषु च ॥
 एषु गोषु विपन्नासु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ २९ ॥
 एका कदा तु बहुभिर्देवाद्यापादिता क्वचित् ॥
 पादं पादं तु हत्पायाश्चरेयुस्ते पृथक्पृथक् ॥ ३० ॥
 यंत्रणे गोश्चिकित्सार्थं मृढगर्भविमोचने ॥
 याने कृते विपत्तिश्चैत्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३१ ॥
 सरोमं प्रथमे पादे द्वितीये श्मश्रुधारणम् ॥
 तृतीये तु शिखा धार्या सशिखं तु निपातने ॥ ३२ ॥
 सर्वान्केशान्समुद्धृत्य च्छेदयेदंगुलिद्वयम् ॥
 एवमेव तु नारीणां शिरसो मुंडनं स्मृतम् ॥ ३३ ॥
 इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

कारुहस्तगतं पुण्यं यच्च पात्राद्विनिःसृतम् ॥
 स्त्रीबालवृद्धचरितं सर्वमेतच्छुचि स्मृतम् ॥ १ ॥
 प्रपास्वरण्येषु जलेषु वै गिरौद्रोण्यां जलंकेशविनिःसृतंच ॥
 श्वपाकचण्डालपरिग्रहेषु पीत्वा जलंपंचगव्येन शुद्धिः ॥ २ ॥

न दुष्येत्संतता धारा वातोद्धृताश्च रेणवः ॥
 स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यान्ति कदाचन ॥ ३ ॥
 आत्मशय्या च वस्त्रं च जायापत्यं कमंडलुः ॥
 आत्मनः शुचीन्येतानि परेषामशुचीनि तु ॥ ४ ॥
 अन्यैस्तु खानिताः कूपास्तडागानि तथैव च ॥
 एषु स्नात्वा च पीत्वा च पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ५ ॥
 उच्छिष्टमशुचित्वं च यच्च विष्टानुलेपनम् ॥
 सर्वं शुद्ध्यति तोयेन तत्तोयं केन शुद्ध्यति ॥ ६ ॥
 सूर्यरश्मिनिपातेन मारुतस्पर्शनेन च ॥
 गवां मूत्रपुरीषेण तत्तोयं तेन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥
 अस्थिचर्मादियुक्तं तु खरश्वानोपदूषितम् ॥
 उद्धरेदुदकं सर्वं शोधनं परिमार्जनम् ॥ ८ ॥
 कूपो मूत्रपुरीषेण यवनेनापि दूषितः ॥
 श्वसृगालखरोष्ट्रैश्च क्रव्यैश्च जुगुप्सितः ॥ ९ ॥
 उद्धृत्यैव च तत्तोयं सप्तपिण्डान्समुद्धरेत् ॥
 पंचगव्यं मृदा पूतं कूपे तच्छोधनं स्मृतम् ॥ १० ॥
 वापीकूपतडागानां दूषितानां च शोधनम् ॥
 कुंभानां शतमुद्धृत्य पंचगव्यं ततः क्षिपेत् ॥ ११ ॥
 यच्च कूपात्पिबेत्तोयं ब्राह्मणः श्वदूषितात् ॥
 कथं तत्र विशद्धिः स्यादिति मे संशयो भवेत् ॥ १२ ॥

आक्लिन्नेन न भिन्नेन केवलं शवदूषिते ॥
 नीत्वा कूपादहोरात्रं पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १३ ॥
 क्लिन्ने भिन्ने शवे चैव तत्रस्थं यदि तत्पिबेत् ॥
 शुद्धिश्चांद्रायणं तस्य तत्कृच्छ्रमथापि वा ॥ १४ ॥
 इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अंत्यजातिरविज्ञातो निवसेद्यस्य वेश्मनि ॥
 तस्य ज्ञात्वा तु कालेन द्विजाः कुर्वन्त्यनुग्रहम् ॥ १ ॥
 चांद्रायणं पराको वा द्विजातीनां विशोधनम् ॥
 प्राजापत्यं तु शूद्रस्य शेषं तदनुसारतः ॥ २ ॥
 यैर्भुक्तं तत्र पक्कान्नं कृच्छ्रं तेषां प्रदापयेत् ॥
 तेषामपि च यैर्भुक्तं कृच्छ्रपादं प्रदापयेत् ॥ ३ ॥
 कूपैकपानैर्दुष्टानां स्पर्शसंसर्गदूषणात् ॥
 तेषामेकोपवासेन पंचगव्येन शोधनम् ॥ ४ ॥
 बालो वृद्धस्तथा रोगी गर्भिणी वायुर्पांडिता ॥
 तेषां नक्तं प्रदातव्यं बालानां प्रहरद्वयम् ॥ ५ ॥
 अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यूनषोडशः ॥
 प्रायश्चित्ताद्धर्महन्ति स्त्रियो व्याधित एव च ॥ ६ ॥
 न्यूनैकादशवर्षस्य पंचवर्षाधिकस्य च ॥

चरेद्गुरुः सुहृद्वापि प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ ७ ॥
 अथैतैः क्रियमाणेषु येषामार्तिः प्रदृश्यते ॥
 शेषसंपादनाच्छुद्धिर्विपत्तिर्न भवेद्यथा ॥ ८ ॥
 क्षुधाव्याधितकायानां प्राणो येषां विपद्यते ॥
 ये न रक्षन्ति वक्तारस्तेषां तत्काल्विषं भवेत् ॥ ९ ॥
 पूर्णेष्वपि कालनियमे न शुद्धिर्ब्राह्मणैर्विना ॥
 अपूर्णेष्वपि कालेषु शोधयन्ति द्विजोत्तमाः ॥ १० ॥
 सभासमिति नो वाच्यं त्रिषु वर्णेषु कर्हिचित् ॥
 विप्रसंपादनं कर्म उत्पन्ने प्राणसंशये ॥ ११ ॥
 संपादयन्ति ये विप्राः स्नानं तीर्थफलप्रदम् ॥
 सम्यक्कर्तुं रूपायं स्याद्ब्रती च फलमाप्नुयात् ॥ १२ ॥
 इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

चंडालकूपभांडेषु योज्ञानात्पिबते जलम् ॥
 प्रायश्चित्तं कथं तस्य वर्णं वर्णं विधीयते ॥ १ ॥
 चरेत्सांतपनं विप्रः प्राजापत्यं तु भूमिपः ॥
 तदर्थं तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥ २ ॥
 भुक्तोच्छिष्टस्त्वनाचांतश्चंडालैः श्वपचेन वा ॥
 प्रमादात्स्पर्शनं गच्छेत्तत्र कुंर्याद्विशोधनम् ॥ ३ ॥

गायत्र्यष्टसहस्रं तु द्रुपदां वा शतं जपेत् ॥
 जपंस्त्रिरात्रमनश्नन्पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥
 चंडालेन यदा स्पृष्टो विष्मूत्रे कुरुते द्विजः ॥
 प्रायश्चित्तं त्रिरात्रं स्याद्भुक्तोच्छिष्टः पडाचरेत् ॥ ५ ॥
 पाने मैथुनसंपर्के तथा मूत्रपुरीषयोः ॥
 संपर्के यदि गच्छेत्तु उदकया चांत्यजैस्तथा ॥
 एतैरेव यदा स्पृष्टः प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ६ ॥
 भोजने च त्रिरात्रं स्यात्पाने तु त्र्यहमेव च ॥
 मैथुने पादकृच्छ्रं स्यात्तथा मूत्रपुरीषयोः ॥ ७ ॥
 दिनभेकं तथा मूत्रे पुरीषे तु दिनत्रयम् ॥
 एकाहं तत्र निर्दिष्टं दंतधावनभक्षणे ॥ ८ ॥
 वृक्षारूढे तु चंडाले द्विजस्तत्रैव तिष्ठति ॥
 फलानि भक्षयंस्तस्य कथं शुद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ ९ ॥
 ब्रह्मणान्समनुज्ञाप्य सवाक्ताः स्नानमाचरेत् ॥
 एकरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १० ॥
 यन केनचिदुच्छिष्टोऽप्यमेध्यं स्पृशति द्विजः ॥
 अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ११ ॥
 इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

चंडालेन यदा स्पृष्टो द्विजवर्णः कदाचन ॥
 अनभ्युक्ष्य पिवेतोयं प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १ ॥
 ब्राह्मणस्य त्रिरात्रं तु पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥
 क्षत्रियस्य द्विरात्रं तु पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २ ॥
 अहोरात्रं तु वैश्यस्य पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥
 चतुर्थस्य तु वर्णस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ३ ॥
 व्रतं नास्ति तपो नास्ति होमो नैव च विद्यते ॥
 पंचगव्यं न दातव्यं तस्य मंत्रविवर्जनात् ॥
 रूपापयित्वा द्विजानां तु शूद्रो दानेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥
 ब्राह्मणस्य यदोच्छिष्टमश्रात्यज्ञानतो द्विजः ॥
 अहोरात्रं तु गायत्र्या जपं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ ५ ॥
 उच्छिष्टं वैश्यजातीनां भुंक्ते ज्ञानाद्विजो यदि ॥
 शंखपुष्पीपयः पीत्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ ६ ॥
 ब्राह्मण्या सह योऽश्नीयादुच्छिष्टं वा कदाचन ॥
 न तत्र दोषं मन्यन्ते नित्यमेव मनीषिणः ॥ ६ ॥
 उच्छिष्टमितरस्त्रीणामश्नीयात्स्पृशतेऽपि वा ॥
 प्राजापत्येन शुद्धिः स्याद्भगवानंगिराब्रवीत् ॥ ८ ॥
 अंत्यानां भुक्तशेषं तु भक्षयित्वा द्विजातयः ॥

चांद्रायणं तदर्धार्धं ब्रह्मक्षत्रविशां विधिः ॥ ९ ॥
 विष्णूत्रभक्षणे विप्रस्तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥
 श्वकाकोच्छिष्टगोभिश्च प्राजापत्यविधिः स्मृतः ॥ १० ॥
 उच्छिष्टः स्पृशते विप्रो यदि कश्चिदकामतः ॥
 शुनः कुक्कुटशूद्रांश्च मद्यभाडं तथैव च ॥ ११ ॥
 पक्षिणाधिष्ठितं यच्च यद्यमेध्यं कदाचन ॥
 अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥
 वैश्येन च यदा स्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ॥
 स्नानं जप्यं च त्रैकाल्यं दिनस्याति विशुद्ध्यति ॥ १३ ॥
 विप्रो विप्रेण संस्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन ॥
 स्नानाति च विशुद्धिः स्यादापस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥ १४ ॥
 इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि नीलीवस्त्रस्य यो विधिः ॥
 स्त्रीणां क्रीडार्थसंभोगे शयनिये न दुष्यति ॥ १ ॥
 पालने विक्रये चैव तद्वृत्तेरुपजीवने ॥
 पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥ २ ॥
 स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ॥
 पंचयज्ञा वृथा तस्य नीलीवस्त्रस्य धारणात् ॥ ३ ॥

नीलीरक्तं यदा वस्त्रं ब्राह्मणोऽंगेषु धारयेत् ॥
 अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥
 रोमकूपैर्यदा गच्छेद्रसो नील्यास्तु कर्हिचित् ॥
 पतितस्तु भवेद्विप्रास्त्रिभिः कृच्छैर्विशुद्ध्यति ॥ ५ ॥
 नीलीदारु यदा भिद्याद्ब्राह्मणस्य शरीरकम् ॥
 शोगितं दृश्यते तत्र द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥ ६ ॥
 नीलीमध्ये यदा गच्छेत्प्रमादाद्ब्राह्मणः क्वचित् ॥
 अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥
 नीलीरक्तेन वस्त्रेण यदन्नमुपनीयते ॥
 अभोज्यं तद्विजातानां भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ८ ॥
 भक्षयेद्यश्च नीलीं तु प्रमादाद्ब्राह्मणः क्वचित् ॥
 चांद्रायणेन शुद्धिः स्यादापस्तंबो ब्रवीन्मुनिः ॥ ९ ॥
 यावत्यां वापिता नीली तावती वा शुचिर्मही ॥
 प्रमाणं द्वादशाब्दानि अत ऊर्ध्वं शुचिर्भवेत् ॥ १० ॥
 इति आपस्तंबीये धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

स्नानं रजस्वलायास्तु चतुर्येऽहनि शस्यते ॥
 वृक्षे रजासि गम्पा स्त्री नानिवृत्ते कथंचन ॥ १ ॥

रोगेण यद्रजः स्त्रीणामत्यर्थं हि प्रवर्तते ॥
 अशुद्धास्तास्तु नैवेह तासां वैकारिको मदः ॥ २ ॥
 साध्वाचारा न तावत्सा रजो यावत्प्रवर्तते ॥
 वृत्ते रजसि साध्वी स्याद्गृहकर्मणि चैन्द्रिये ॥ ३ ॥
 प्रथमेऽहनि चांडाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ॥
 तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ॥ ४ ॥
 अंत्यजातिश्चपाकेन संस्पृष्टा वै रजस्वला ॥
 अहानि तान्यतिक्रम्य प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत् ॥ ५ ॥
 त्रिरात्रमुपवासः स्यात्पंचगव्यं विशोधनम् ॥
 निशां प्राप्य तु तां योनिं प्रजाकरां च कामयेत् ॥ ६ ॥
 रजस्वलांत्यजैः स्पृष्टा शुना च श्वपचेन च ॥
 त्रिरात्रोपोषिता भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥
 प्रथमेऽहनि षड्रात्रं द्वितीये तु त्र्यहस्तथा ॥
 तृतीये चोपवासस्तु चतुर्थे वह्निदर्शनात् ॥ ८ ॥
 विवाहे वितते यज्ञे संस्कारे च कृते तथा ॥
 रजस्वला भवेत्कन्या संस्कारस्तु कथं भवेत् ॥ ९ ॥
 स्नापयित्वा तदा कन्यामन्यैर्वस्त्रैरलंकृताम् ॥
 पुनर्मेध्याहुतिं हुत्वा शेषं कर्म समाचरेत् ॥ १० ॥
 रजस्वला तु संस्पृष्टा प्लवकुक्कुटवायसैः ॥
 सा त्रिरात्रोपवासेन पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ११ ॥

- रजस्वला तु या नारी अन्योन्यं स्पृशते यदि ॥
 तावत्तिष्ठेन्निराहारा स्नात्वा कालेन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥
 उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टा कदाचित्स्त्री रजस्वला ॥
 कृच्छ्रेण शुद्ध्यते विप्रः शूद्रो दानेन शुद्ध्यति ॥ १३ ॥
 एकशाखां समारूढश्चंडालो वा रजस्वला ॥
 ब्राह्मणश्च समं तत्र सवासाः स्नानमाचरेत् ॥ १४ ॥
 रजस्वलायाः संस्पर्शः कथंचिज्जायते शुना ॥
 रजोदिनानां यच्छेषं तदुपोष्य विशुद्ध्यति ॥ १५ ॥
 अशक्ता चोपवासेन स्नानं पश्चात्समाचरेत् ॥
 तथाप्यशक्ता चैकेन पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १६ ॥
 उच्छिष्टस्तु यदा विप्रः स्पृशेन्मद्यं रजस्वलाम् ॥
 मद्यं स्पृष्ट्वा चरेत्कृच्छ्रं तदर्थं तु रजस्वलाम् ॥ १७ ॥
 उदक्यां सूतिकां विप्र उच्छिष्टः स्पृशते यदि ॥
 कृच्छ्राद्धं तु चरेद्विप्रः प्रायश्चित्तं विशोधनम् ॥ १८ ॥
 चंडालः श्वपचो वापि अत्रियीं स्पृशते यदि ॥
 शेषाह्वाफालकृष्टेन पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ १९ ॥
 उदक्या ब्राह्मणी शूद्रामुदक्यां स्पृशते यदि ॥
 अहोरात्रोषिता भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २० ॥
 एवं तु क्षत्रिया वैश्या ब्राह्मणी चेद्रजस्वला ॥
 सचैलं प्लवनं कृत्वा दिनस्यांते घृतं पिबेत् ॥ २१ ॥

सर्वणेषु तु नारीणां सद्यः स्नानं विधीयते ॥

एवमेव विशुद्धिः स्नादापस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥ २२ ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं सुरया यत्र लिप्यते ॥

सुराविष्मूत्रसंस्पृष्टं शुद्ध्यते तापलेखनैः ॥ १ ॥

गवाघ्रातानि कांस्यानि शुद्रोच्छिष्टानि यानि तु ॥

देशभस्मानि शुद्ध्यन्ति श्वकाकोपहतानि च ॥ २ ॥

शौचं सुवर्णनारीणां वायुसूयैर्दुरश्निभिः ॥

रेतःस्पृष्टं शवस्पृष्टमापिकं तु प्रदुष्यति ॥

अद्रिमृदा च तन्मात्रं प्रक्षाल्य च विशुद्ध्यति ॥ ३ ॥

शुष्कमन्नमवेद्यस्य पंचरात्रेण जीर्यति ॥

अन्नं व्यंजनसंयुक्तमर्द्धमासेन जीर्यति ॥ ४ ॥

पयस्तु दधि मासेन षण्मासेन घृतं तथा ॥

संवत्सरेण तैलं तु कोष्ठे जीर्यति वा न वा ॥ ५ ॥

भुञ्जते ये तु शूद्रान्नं मासमेकं निरंतरम् ॥

इह जन्मनि शूद्रत्वं जायन्ते ते मृताः शुनि ॥ ६ ॥

शूद्रान्नं शूद्रसंपर्कः शूद्रेणैव सहासनम् ॥

शूद्राज्ज्ञानागमः कश्चिज्ज्वलंतमपि पातयेत् ॥ ७ ॥

आहिताग्निस्तु यो विप्रः शूद्रान्नान्न निवर्तते ॥
 तथा तस्य प्रणश्यन्ति आत्मा ब्रह्म त्रयोऽग्नयः ॥ ८ ॥
 शूद्रान्नेन तु भुक्तेन मैथुनं योऽधिगच्छति ॥
 यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा अन्नाच्छुक्रस्य संभवः ॥ ९ ॥
 शूद्रान्नेनोदरस्थेन यः कश्चिन्म्रियते द्विजः ॥
 स भवेच्छूकरो ग्राम्यस्तस्य वा जायते कुले ॥ १० ॥
 ब्राह्मणस्य सदा भुंक्ते क्षत्रियस्य तु पर्वणि ॥
 वैश्यस्य यज्ञदीक्षायां शूद्रस्य न कदाचन ॥ ११ ॥
 अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियस्य पयःस्मृतम् ॥
 वैश्यस्याप्यन्नमेवान्नं शूद्रस्य रुधिरं स्मृतम् ॥ १२ ॥
 वैश्वदेवेन होमेन देवताभ्यर्चनैर्जपैः ॥
 अमृतं तेन विप्रात्रमृग्यजुःसामसंस्कृतम् ॥ १३ ॥
 व्यवहारानुरूपेण धर्मेण च्छुलवर्जितम् ॥
 क्षत्रियस्य पयस्तेन भूतानां यच्च पादनम् ॥ १४ ॥
 स्वकर्मणा च वृषभैरनुसृत्याद्य शक्तितः ॥
 खल्यज्ञातिथित्वेन वैश्यान्नं तेन संस्कृतम् ॥ १५ ॥
 अज्ञानतिमिरांधस्य मद्यपानरतस्य च ॥
 रुधिरं तेन शूद्रान्नं विधिमंत्रविवर्जितम् ॥ १६ ॥
 आममांसं मधु घृतं धानाः क्षीरं तथैव च ॥
 गुडस्तक्रं रसा ग्राह्या निवृत्तेनापि शूद्रतः ॥ १७ ॥

शाकं मांसं मृणालानि तुंबुरुः सक्तवस्तिलाः ॥
 रसाः फलानि पिण्याकं प्रतिग्राह्या हि सर्वतः ॥ १८ ॥
 आपत्काले तु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि ॥
 मनस्तापेन शुद्ध्येत द्रुपदां वा शतं जपेत् ॥ १९ ॥
 द्रव्यपाणिश्च शूद्रेण स्पृष्टोच्छिष्टेन कर्हिचित् ॥
 तद्विजेन न भोक्तव्यमापस्तंबोऽब्रवीन्मुनिः ॥ २० ॥
 इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित्स्रवते गुदम् ॥
 उच्छिष्टस्याशुचेस्तस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १ ॥
 पूर्वं शौचं तु निर्वर्त्य ततः पश्चादुपस्पृशेत् ॥
 अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ २ ॥
 अशित्वा सर्वमेवान्नमकृत्वा शौचमात्मनः ॥
 मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रं तु यवान्पीत्वा विशुद्ध्यति ॥ ३ ॥
 प्रसृतं यवसस्येन पलमेकं तु सर्पिषा ॥
 पलानि पञ्च गोमूत्रं नातिरिक्तवदाशयेत् ॥ ४ ॥
 अलेह्यानामपेयानामभक्ष्याणां च भक्षणे ॥
 रेतोमूत्रपुरीषाणां प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ५ ॥
 पद्मोदुंबरविल्वाश्च कुशाश्च सपलाशकाः ॥

एतेषामुदकं पीत्वा षड्रात्रेण विशुद्ध्यति ॥ ६ ॥

ये प्रत्यवसिता विप्राः प्रव्रज्यामिजलादिषु ॥

अनाशकनिवृत्ताश्च गृहस्थत्वं चिकीर्षिताः ॥ ७ ॥

चरेयुस्त्राणि कृच्छ्राणि त्रीणि चांद्रायणानि वा ॥

जातकर्मादिभिः सर्वैः पुनःसंस्कारभागिनः ॥

तेषां सांतपनं कृच्छ्रं चांद्रायणमथापि वा ॥ ८ ॥

यद्विष्टितंकाकबलाकयोर्वाअमेध्यलिप्तं च भवेच्छरीरम् ॥

श्रोत्रेमुखेचप्रविशेच्चसम्यक्ज्ञानेनलेपोपहतस्यशुद्धिः ॥ ९ ॥

उर्ध्वं नाभेः करौ मुक्ता यदंगमुपहन्यते ॥

ऊर्ध्वं स्नानमधः शौचमात्रेणैव विशुद्ध्यति ॥ १० ॥

उपानहावमेध्यं वा यस्य संस्पृशते मुखम् ॥

मृत्तिकाशोधनं स्नानं पंचगव्यं विशोधनम् ॥ ११ ॥

दशाहाच्छुष्यते विप्रो जन्महानौ स्वयोनिषु ॥

षड्भिस्त्रिभिरथैकेन क्षत्रविदशूदयोनिषु ॥ १२ ॥

उपनीतं यदा त्वन्नं भोक्तारं समुपस्थितम् ॥

अपीतवत्समुत्सृष्टं न दद्यान्नैव होमयेत् ॥ १३ ॥

अन्ने भोजनसंपन्ने मक्षिकाकेशदूषिते ॥

अनंतरं स्पृशेदापस्तच्चान्नं भस्मना स्पृशेत् ॥ १४ ॥

शुष्कमांसमयं चान्नं शूद्रान्नं वाप्यकामतः ॥

भुक्त्वा कृच्छ्रं चरेद्विप्रो ज्ञानात्कृच्छ्रत्रयं चरेत् ॥ १५ ॥

अभुक्तो मुच्यते यश्च भुक्तो यश्चापि मुच्यते ॥
 भोक्ता च मोचकश्चैव पश्चाद्भरति दुष्कृतम् ॥ १६ ॥
 यस्तु भुञ्जति भुक्तं वा दुष्टं वापि विशेषतः ॥
 अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ १७ ॥
 उदके चोदकस्थस्तु स्थलस्थश्च स्थले शुचिः ॥
 पादौ स्थाप्योभयत्रैव आचम्योभयतः शुचिः ॥ १८ ॥
 उत्तीर्याचामेदुदकादवतीर्य उपस्पृशेत् ॥
 एवं तु श्रेयसा युक्तो बहूनेनाभिपूज्यते ॥ १९ ॥
 अग्न्यगारे गवां गोष्ठे ब्राह्मणानां च सन्निधौ ॥
 स्वाध्याये भोजने चैव पादुकानां विसर्जनम् ॥ २० ॥
 जन्मप्रभृति संस्कारे श्मशानांते च भोजनम् ॥
 असपिण्डैर्न कर्तव्यं चूडाकार्ये विशेषतः ॥ २१ ॥
 याजकान्नं नवश्राद्धं संग्रहे चैव भोजनम् ॥
 स्त्रीणां प्रथमगर्भे च भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ २२ ॥
 ब्रह्मौदनेऽवसाने च सीमंतोन्नयने तथा ॥
 अन्नश्राद्धे मृतश्राद्धे भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ २३ ॥
 अप्रजा या तु नारी स्यान्नाश्रीयादेव तद्गृहे ॥
 अथ भुञ्जीत मोहाद्यः पूयं स नरकं व्रजेत् ॥ २४ ॥
 अल्पेनापि हि शुल्केन पिता कन्यां ददाति यः ॥
 रौरवे बहुवर्षाणि पुरीषं मूत्रमश्नुते ॥ २५ ॥

स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवंति बांधवाः ॥
 स्वर्णं यानानि वस्त्राणि ते पापा यांत्यधोगतिम् ॥२६॥
 राजान्नमोज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ॥
 असंस्कृतं तु यो भुंक्ते स भुंक्ते पृथिवीमलम् ॥ २७॥
 मृतके सूतके चैव ग्रहणे शशिभास्करे ॥
 हस्तिच्छायां तु यो भुंक्ते स पापः पुरुषो भवेत् ॥२८॥
 पुनर्भूपुनरेता च रेतोधा कामचारिणी ॥
 आसां प्रथमगर्भेषु भुक्त्वा चांद्रयणं चरेत् ॥ २९ ॥
 मातृघ्नश्च पितृघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः ॥
 विशेषाद्भुक्तमेतेषां भुक्त्वा चाद्रायणं चरेत् ॥ ३० ॥
 रजकव्याधशैलूषवेणुचर्मोपजीविनः ॥
 भुक्तेषां ब्राह्मणश्चान्नं शुद्धिश्चांद्रायणेन तु ॥ ॥ ३१ ॥
 उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः कदार्चिदुपजायते ॥
 सवर्णेन तदोत्थाय उपस्पृश्य शुचिर्भवेत् ॥ ३२ ॥
 उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः ॥
 उपोष्य रजनीमिकां पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३३ ॥
 ब्राह्मणस्य सदा काष्ठं शूद्रे प्रेषणकारिणि ॥
 भूमावन्नं प्रदातव्यं यथैव श्वा तथैव सः ॥ ३४ ॥
 अनुदकेष्वरण्येषु चोरव्याघ्राकुले पथि ॥
 कृत्वा मूत्रं पुरीषं च द्रव्यहस्तः कथं शुचिः ॥ ३५ ॥

भूमावन्नं प्रातिष्ठाप्य कृत्वा शौचं यथाथतः ॥

उत्संगे गृह्य पक्वान्नमुपस्पृश्य ततः शुचिः ॥ ३६ ॥

मूत्रोच्चारं द्विजः कृत्वा अकृत्वा शौचमात्मनः ॥

मोहाद्भुक्त्वा त्रिरात्रं तु गव्यं पीत्वा विशुद्ध्यति ॥ ३७ ॥

उदक्यां यदि गच्छेत्तु ब्राह्मणो मदमोहितः ॥

चांद्रायणेन शुद्ध्येत ब्राह्मणानां च भोजनैः ॥ ३८ ॥

भुक्त्वोच्छिष्टस्त्वनाचांतश्चंडालैः श्वपचेन वा ॥

प्रमादाद्यदि संस्पृष्टो ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ॥ ३९ ॥

स्नात्वा त्रिषवणं नित्यं ब्रह्मचारी धराशयः ॥

स त्रिरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४० ॥

चंडालेन तु संस्पृष्टो यश्चापः पिबति द्विजः ॥

अहोरात्रोषितो भूत्वा त्रिषवणेन शुद्ध्यति ॥ ४१ ॥

सायंप्रातस्त्वहोरात्रं पादं कृच्छ्रस्य तं विदुः ॥

सायं प्रातस्तथैवैकं दिनद्वयमयाचितम् ॥ ४२ ॥

दिनद्वयं च नाश्रीयात्कृच्छ्रार्द्धं तद्विधीयते ।

प्रायश्चित्तं लघुष्वेतत्पापेषु तु यथार्हतः ॥ ४३ ॥

कृष्णाजिनतिलग्राही हस्त्यश्वानां च विक्रयी ॥

प्रेतनिर्यातकश्चैव न भूयः पुरुषो भवेत् ॥ ४४ ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

आचांतोऽप्यशुचिस्तावद्यावन्नोद्ध्रियते जलम् ॥
 उद्धृतेऽप्यशुचिस्तावद्यावद्भूमिर्न लिप्यते ॥ १ ॥
 भूमावपि च लिप्तायां तावत्स्यादशुचिः पुमान् ॥
 आसनादुत्थितस्तस्माद्यावन्नाक्रमते महीम् ॥ २ ॥
 न यमं यममित्यादुरात्मा वै यम उच्यते ॥
 आत्मा संयमितो येन तं यमः किं करिष्यति ॥ ३ ॥
 न चैवासिस्तथा तीक्ष्णः सर्पो वा दुरधिष्ठितः ॥
 यथा क्रोधो हि जंतूनां शरीरस्थो विनाशकः ॥ ४ ॥
 क्षमा गुणो हि जंतूनामिहामुत्र सुखप्रदः ॥
 एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते ॥
 यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥ ५ ॥
 न शब्दशास्त्राभिरतस्य मोक्षो न चैव रम्यावसथप्रियस्य ॥
 न भोजनाच्छादनतत्परस्य न लोकचित्तग्रहणे रतस्य ॥ ६ ॥
 एकांतशीलस्य दृढव्रतस्य मोक्षो भवेत्प्रीतिनिवर्तकस्य ॥
 अध्यात्मयोगैकरतस्य सम्यङ्मोक्षो भवेन्नित्यमहिंसकस्य
 क्रोधयुक्तो यद्यजते यज्जुहोति यदर्चति ॥
 सर्वं हरति तत्तस्य आमकुंभ इवोदकम् ॥ ८ ॥
 अपमानात्तपोवृद्धिः संमानात्तपसः क्षयः ॥

अर्चितः पूजितो विप्रो दुग्धा गौरिव सीदति ॥ ९ ॥

आप्यायते यथा धेनुस्तृणैरमृतसंभवैः ॥

एवं जपैश्च होमैश्च पुनराप्यायते द्विजः ॥ १० ॥

मातृवत्परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टवत् ॥

आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्याति स पश्याति ॥ ११ ॥

रजकव्याधैरूषवेणुचर्मोपजीविनाम् ॥

यो भुङ्क्ते भुक्तमेतेषां प्राजापत्यं विशोधनम् ॥ १२ ॥

अगम्यागमनं कृत्वा अभक्ष्यस्य च भक्षणम् ॥

शुद्धिं चांद्रायणं कृत्वा अथवान्ते तथैव च ॥ १३ ॥

अग्निहोत्रं त्यजेद्यस्तु स नरो वीरहा भवेत् ॥

तस्य शुद्धिर्विधातव्या नान्या चांद्रायणादृते ॥ १४ ॥

विवाहोत्सवयज्ञेषु अंतरा मृतसूतके ॥

सद्यः शुद्धिं विजानीयात्पूर्वसंकल्पितं च यत् ॥ १५ ॥

देवद्रोण्यां विवाहे च यज्ञेषु प्रततेषु च ॥

कल्पितं सिद्धमन्नाद्यं नाशौचं मृतसूतके ॥ १६ ॥

इत्यापस्तंबीये धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

आपस्तंबस्मृतिः समाप्ता ७.

श्रीः ।

अथ संवर्त्तस्मृतिः ८.

—७५८—

प्रथमोऽध्यायः १.

संवर्त्तमेकमासीनं सर्ववेदांगपारगम् ॥

ऋषयस्तमुपागम्य पप्रच्छुर्धर्मकांक्षिणः ॥ १ ॥

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामो द्विजानां धर्मसाधनम् ॥

यथावद्धर्ममाचक्ष्व शुभाशुभविवेचनम् ॥ २ ॥

वामदेवादयः सर्वे तं पृच्छन्ति महौजसम् ॥

तानब्रवीन्पुनोन्सर्वान्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥ ३ ॥

स्वभावाद्विचरेद्यत्र कृष्णसारः सदा मृगः ॥

धर्मदेशः स विज्ञेयो द्विजानां धर्मसाधनम् ॥ ४ ॥

उपनीतो द्विजो नित्यं गुरवे हितमाचरेत् ॥

स्रग्गन्धमधुमांसानि ब्रह्मचारी विवर्जयेत् ॥ ५ ॥

संध्यां प्रातः सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि ॥

सादित्यां पश्चिमां संध्यामर्द्धास्तमितभारुकरे ॥ ६ ॥

तिष्ठन्पूर्वं जपं कुर्यात्सावित्रीमार्कदर्शनात् ॥

भासीनः पश्चिमां संध्यां सम्यगृक्षविभावनात् ॥ ७ ॥

अग्निकार्यं च कुर्वीत मेधावी तदनंतरम् ॥
 ततोऽधीयीत वेदं तु वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥ ८ ॥
 प्रणवं प्राक् प्रयुजीत व्याहृतीस्तदनंतरम् ॥
 गायत्रीं चानुपूर्व्येण ततो वेदं समारभेत् ॥ ९ ॥
 हस्तौ तु संयतौ धार्यौ जानुभ्यामुपरि स्थितौ ॥
 गुरोरनुमतं कुर्यात्पठन्नान्यमतिर्भवेत् ॥ १० ॥
 सायंप्रातस्तु भिक्षेत ब्रह्मचारी सदा व्रती ॥
 निवेद्य गुरवेऽग्नीयात्प्राङ्मुखो वाग्यतः शुचिः ॥ ११ ॥
 सायंप्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिनोदितम् ॥
 नांतरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्री समाहितः ॥ १२ ॥
 आचम्यैव तु भुंजीत भुक्त्वा चोपस्पृशेद्विजः ॥
 अनाचांतस्तु योऽग्नीयात्प्रायश्चित्तीयते तु सः ॥ १३ ॥
 अनाचांतः पिबेद्यस्तु योऽपि वा भक्षयेद्विजः ॥
 गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपं कुर्वन्विशुद्ध्यति ॥ १४ ॥
 अकृत्वा पादशौचं तु तिष्ठन्मुक्तशिखोऽपि वा ॥
 विना यज्ञोपवीतेन त्वाचांतोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ १५ ॥
 आचामेद्ब्रह्मतीर्थेन चोपवीती ह्युदङ्मुखः ॥
 उपवीती द्विजो नित्यं प्राङ्मुखो वाग्यतः शुचिः ॥ १६ ॥
 जले जलस्थश्चाचांतः स्थलाचांतो बहिः शुचिः ॥
 बहिरंतःस्थ आचांत एवं शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ १७ ॥

आमणिबंधाद्धस्तौ च पादावद्धिर्विशोधयेत् ॥

परिमृज्य द्विरास्यं तु द्वादशान्गानि च स्पृशेत् ॥ १८ ॥

स्नात्वा पीत्वा तथा क्षुत्वा भुक्त्वा स्पृष्ट्वा द्विजोत्तमः ॥

अनेन विधिना सम्यगाचांतः शुचितामियात् ॥ १९ ॥

शूद्रः शुद्ध्यति हस्तेन वैश्यो दंतेषु वारिभिः ॥

कंठागतैः क्षत्रियस्तु आचांतः शुचितामियात् ॥ २० ॥

आसनारूढपादस्तु कृतावसक्थिकस्तथा ॥

आरूढपादुको वापि न शुद्ध्यति कदाचन ॥ २१ ॥

उपासीत न चेत्संध्याममिकार्यं न वा कृतम् ॥

गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपेत्स्नात्वा समाहितः ॥ २२ ॥

सूतकान्नं नवश्राद्धं मासिकान्नं तथैव च ॥

ब्रह्मचारी तु योऽग्नीषात्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ २३ ॥

ब्रह्मचारी तु यो गच्छेत्स्त्रियं कामप्रपीडितः ॥

प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमथ त्वेकं सुयंत्रितः ॥ २४ ॥

ब्रह्मचारी तु योऽग्नीयान्मधु मांसं कथंचन ॥

प्राजापत्यं तु कृत्वासौ मौंजीं होमेन शुद्ध्यति ॥ २५ ॥

निर्वपेत्तु पुरोडाशं ब्रह्मचारी तु पर्वणि ॥

मंत्रैः शाकलहोमगैरग्नावाज्यं च होमयेत् ॥ २६ ॥

ब्रह्मचारी तु यः स्कंदेत्कामतः शुक्रमात्मनः ॥

अवकीर्णघृतं कुर्यात्स्नात्वा शुद्धयेदकामतः ॥ २७ ॥

भिक्षाटनमटित्वा तु स्वस्थो ह्येकान्नमश्नुते ॥
 अस्नात्वा चैव यो भुंक्ते गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥ २८ ॥
 शूद्रहस्तेन योऽस्नीयात्पानयिं वा पिबेत्कचित् ॥
 अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २९ ॥
 भुक्तं पर्युषितोच्छिष्टं भुक्त्वान्नं केशदूषितम् ॥
 अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३० ॥
 शूद्राणां भाजने भुक्त्वा भुक्त्वा वा भिन्नभाजने ॥
 अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ३१ ॥
 दिवा स्वपिति यः स्वस्थो ब्रह्मचारी कथंचन ॥
 स्नात्वा सूर्यं समीक्षेत गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥ ३२ ॥
 एष धर्मः समाख्यातः प्रथमाश्रमवासिनाम् ॥
 एवं संवर्तमानस्तु प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ३३ ॥
 अतो द्विजः समावृत्तः सवर्णां स्त्रियमुद्धहेत् ॥
 कुले महति संभृतां लक्ष्णैस्तु समन्विताम् ॥ ३४ ॥
 ब्राह्मणैव विवाहेन शीलरूपगुणान्विताम् ॥
 अतः पंचमहायज्ञान्कुयादहरहर्द्विजः ॥ ३५ ॥
 न हायेत्तु ताञ्छक्तः श्रेयस्कामः कदाचन ॥
 हानिं तेषां तु कुर्वीत सदा मरणजन्मनोः ॥ ३६ ॥
 विप्रो दशाहमासीत दानाध्ययनवार्जितः ॥
 क्षत्रियो द्वादशाहानि वैश्यः पञ्चदशैव तु ॥ ३७ ॥

शुद्धः शुद्धयति मासेन संवत्तवचनं यथा ॥
 प्रेतायान्नं जलं देयं स्नात्वा तद्गोत्रजैः सह ॥ ३८ ॥
 प्रथमेऽहि तृतीये च सप्तमे नवमे तथा ॥
 चतुर्थेऽहनि कर्तव्यमस्थिसंचयनं द्विजैः ॥ ३९ ॥
 ततः संचयनादूर्ध्वमंगस्पर्शां विधीयते ॥
 चतुर्थेऽहनि विप्रस्य षष्ठे वै क्षत्रियस्य च ॥ ४० ॥
 अष्टमे दशमे चैव स्पर्शः स्याद्वैश्यशूद्रयोः ॥
 जातस्यापि विधिर्दृष्ट एष एव महर्षिभिः ॥ ४१ ॥
 दशरात्रेण शुद्धचेत विप्रो वेदविवर्जितः ॥
 जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते ॥ ४२ ॥
 माता शुद्धचेदशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं पितुः ॥
 होमं तत्र प्रकुर्वीत शुष्कान्निन फलेन वा ॥ ४३ ॥
 पंचयज्ञविधानं तु न कुर्यान्मृत्युजन्मनाः ॥
 दशाहात्तु परं सम्यग्विप्रोऽधीयीत धर्मवित् ॥ ४४ ॥
 दानं तु विविधं देयमशुभानां विनाशनम् ॥
 यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं भवेत् ॥ ४५ ॥
 तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥
 नानाविधानि द्रव्याणि धान्यानि सुवह्नि च ॥ ४६ ॥
 समुद्रे यानि रत्नानि नरो विगतकल्मषः ॥
 दत्त्वा गुणाढ्यविप्राय महतीं श्रियमाप्नुयात् ॥ ४७ ॥

गंधमाभरणं माल्यं यः प्रयच्छति धर्मवित् ॥

स सुगंधः सदा हृष्टो यत्र तन्नोपजायते ॥ ४८ ॥

श्रोत्रियाय कुलीनायाभ्यर्थिने हि विंशपतः ॥

यद्दानं दीयते भक्त्या तद्भवेत्सुमहत्फलम् ॥ ४९ ॥

आहूय शीलसंपन्नं श्रुतेनाभिजनेन च ॥

शुचिं विप्रं महाप्राज्ञं हव्यकव्यैस्तु पूजयेत् ॥ ५० ॥

नानाविधानि द्रव्याणि रसवंतीप्सितानि च ॥

भेयस्कामेन देयानि तदेवाक्षयमिच्छता ॥ ५१ ॥

वस्त्रदाता सुवेषः स्याद्रूप्यदो रूपमेव च

हिरण्यदः समृद्धिं च तेजश्चायुश्च विंदति ॥ ५२ ॥

भूताभयप्रदानेन सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥

दीर्घमायुश्च लभते सुखी चैव सदा भवेत् ॥ ५३ ॥

धान्योदकप्रदायी च सर्पिर्दः सुखमेधते ॥

अलंकृतस्त्वलंकारं दाताप्नोति महत्फलम् ॥ ५४ ॥

फलमूलानि विप्राय शाकानि विविधानि च ॥

सुरभीणि च पुष्पाणि दत्त्वा प्राज्ञस्तु जायते ॥ ५५ ॥

तांबूलं चैव यो दद्याद्ब्राह्मणेभ्यो विचक्षणः ॥

मेधावी सुभगः प्राज्ञो दर्शनीयश्च जायते ॥ ५६ ॥

पादुकोपानहौ छत्रं शयनान्यासनानि च ॥

विविधानि च यानानि दत्त्वा द्रव्यपतिर्भवेत् ॥ ५७ ॥

दद्याद्यः शिशिरे वह्निं बह्वंकाष्ठं प्रयत्नतः ॥
 कायामिदीप्तिं प्राज्ञत्वं रूपं सौभाग्यमाप्नुयात् ॥ ५८ ॥
 औषधं स्नेहमाहारं रोगिणां रोगशान्तये ॥
 दत्त्वा स्याद्रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च ॥ ५९ ॥
 इन्धनानि च यो दद्याद्विप्रेभ्यः शिशिरागमे ॥
 नित्यं जयति संग्रामे श्रिया युक्तस्तु दीव्यते ॥ ६० ॥
 अलंकृत्य तु यः कन्यां वराय सदृशाय वै ॥
 ब्राह्मेण तु विवाहेन दद्यातां तु सुपूजिताम् ॥ ६१ ॥
 स कन्यायाः प्रदानेन श्रेयो विंदति पुष्कलम् ॥
 साधुवादं कृतं सद्भिः कीर्तिं चाप्नोति पुष्कलाम् ॥ ६२ ॥
 ज्योतिष्टोमातिरात्राणां शतं शतगुणीकृतम् ॥
 प्राप्नोति पुरुषो दत्त्वा होममंत्रैश्च संस्कृताम् ॥ ६३ ॥
 तां दत्त्वा तु पिता कन्यां भूषणाच्छादनाशनः ॥
 पूजयन्स्वर्गमाप्नोति नित्यमुत्सववृद्धिषु ॥ ६४ ॥
 रोमकाले तु संप्राप्ते सोमो भुंक्तेऽथ कन्यकाम् ॥
 रजो दृष्ट्वा तु गन्धर्वाः कुचौ दृष्ट्वा तु पावकः ॥ ६५ ॥
 अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी ॥
 दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ ६६ ॥
 माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ॥
 त्रयस्ते नरकं यांति दृष्ट्वा कन्यां रजरषलाम् ॥ ६७ ॥

तस्माद्विवाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत् ॥
 विवाहो ह्यष्टवर्षायाः कन्यायास्तु प्रेशस्यते ॥ ६८ ॥
 तैलामलकदाता च स्नानान्यंगप्रदायकः ॥
 नरः प्रहृष्टश्चासीत् सुभगश्चोपजायते ॥ ६९ ॥
 अनडाहौ तु यो दद्याद्विजे सीरेण संयुतौ ॥
 अलंकृत्य यथाशक्ते धूर्वहौ शुभलक्षणौ ॥ ७० ॥
 सर्वपापविशुद्धात्मा सर्वकामसमन्वितः ॥
 वर्षाणि वसते स्वर्गे रोमसंख्याप्रमाणतः ॥ ७१ ॥
 धेनुं च यो द्विजे दद्यादलंकृत्य पयस्विनीम् ॥
 कांस्यवस्त्रादिभिर्युक्तां स्वर्गलोके महीयते ॥ ७२ ॥
 भूमिं सस्यवतीं श्रेष्ठां ब्राह्मणे वेदपारगे ॥
 गां दत्त्वार्द्धप्रसूतां च स्वर्गलोके महीयते ॥ ७३ ॥
 यावंति सस्यमूलानि गोरोमाणि च सर्वशः ॥
 नरस्तावंति वर्षाणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ७४ ॥
 यो ददाति शकै रौप्यैर्हंसशृङ्गीमरोगिणीम् ॥
 सषत्सां वाससा पीतां सुशीलां गां पयस्विनीम् ॥ ७५ ॥
 तस्यां यावंति रोमाणि सवत्सायां दिवं गतः ॥
 तावंति वत्सरांतानि स नरो ब्रह्मणोऽतिके ॥ ७६ ॥
 यो ददाति बलावर्दमुक्तेन विधिना शुभम् ॥
 अव्यगगौप्रदानेन दत्तं दशगुणं फलम् ॥ ७७ ॥

अमेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूर्वेष्णवी सूर्यसुताश्च गावः ॥
 लोकास्त्रयस्तेन भवार्तिदत्तायः कांचनं गांचमहींच दद्यात् ७८
 सर्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं फलम् ॥
 हाटकक्षितिधेनूनां सप्तजन्मानुगं फलम् ॥ ७९ ॥
 अन्नदस्तु भवेन्नित्यं सुतृप्तो निभृतः सदा ॥
 अंबुदश्च सुखी नित्यं सर्वकर्मसमन्वितः ॥ ८० ॥
 सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् ॥
 सर्वेषामेव जंतूनां यतस्तज्जीवितं परम् ॥ ८१ ॥
 यस्मादन्नात्प्रजाः सर्वाः कल्पे कल्पेऽसृजत्प्रभुः ॥
 तस्मादन्नात्परं दानं विद्यते नहि किंचन ॥
 अन्नाद्भूतानि जायन्ते जीवन्ति च न संशयः ॥ ८२ ॥
 मृत्तिकागोशकृद्दर्भानुपवीतं तथोत्तरम् ॥
 दत्त्वा गुणाढ्यविप्राय कुले महति जायते ॥ ८३ ॥
 मुखवासं तु यो दद्यादंतधावनमेव च ॥
 शुचिगंधसमायुक्तो अवाग्दुष्टः सदा भवेत् ॥ ८४ ॥
 पादशौचं तु यो दद्यात्तथा तु गुदलिंगयोः ॥
 यः प्रयच्छति विप्राय शुद्धबुद्धिः सदा भवेत् ॥ ८५ ॥
 औषधं पथ्यमाहारं स्नेहाभ्यंगं प्रतिश्रयम् ॥
 यः प्रयच्छति रोगिभ्यः स भवेद्याधिबर्जितः ॥ ८६ ॥
 गुडमिक्षुरसं चैव लवणं व्यंजनानि च ॥

सुरभीणि च पानानि दत्त्वात्यंतं सुखी भवेत् ॥ ८७ ॥

दानैश्च विविधैः सम्यक्फलमेतदुदाहृतम् ॥

विद्यादानेन सुमतिर्ब्रह्मलोके महीयते ॥ ८८ ॥

अन्योन्यान्नप्रदा विप्रा अन्योन्यप्रतिपूजकाः ॥

अन्योन्यं प्रतिगृह्णन्ति तारयन्ति तरन्ति च ॥ ८९ ॥

दानान्येतानि देयानि तथान्यानि विशेषतः ॥

दानार्द्धं कृपणार्थिभ्यः श्रेयस्कामेन धीमता ॥ ९० ॥

ब्रह्मचारियतिभ्यस्तु वपनं यस्तु कारयेत् ॥

नखकर्मादिकं चैव चक्षुष्माञ्जायते नरः ॥ ९१ ॥

देवागारे द्विजातीनां दीपं दद्याच्चतुष्पथे ॥

मेधावी ज्ञानसंपन्नश्चक्षुष्मान्स सदा भवेत् ॥ ९२ ॥

नित्ये नैमित्तिके काम्ये तिलान्दत्त्वा स्वशक्तितः ॥

प्रजावान्पशुमांश्चैव धनवाञ्जायते नरः ॥ ९३ ॥

यो यदाभ्यर्चितो विप्रैर्यद्यत्संप्रतिपादयेत् ॥

तृणकाष्ठादिकं चैव गोप्रदानसमं भवेत् ॥ ९४ ॥

वने शयीत तिमासि न यज्ञे चानृतं वदेत् ॥

अपवदेन्न विप्रस्य न दानं परिकीर्तयेत् ॥ ९५ ॥

यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात् ॥

आयुर्विप्रापवदेन दानं च परिकीर्तनात् ॥ ९६ ॥

अस्वार्येतानि कर्माणि संख्यायां वर्जयेद्बुधः ॥

आहारं मैथुनं निद्रां तथा संपाठमेव च ॥ ९७ ॥

आहाराज्जायते व्याधी रौद्रो गर्भश्च मैथुनात् ॥

निद्रातो जायतेऽलक्ष्मीः संपाठादायुषः क्षयः ॥ ९८ ॥

ऋतुमतीं यो भार्यां संनिधौ नोपगच्छति ॥

तस्या रजसि तं मासं पितरस्तस्य शेरते ॥ ९९ ॥

कृत्वा गृह्याणि कर्माणि स्वभार्यापोषणे रतः ॥

ऋतुकालाभिगामी च प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १०० ॥

उषित्वैवं गृहे विप्रो द्वितीयादाश्रमात्परम् ॥

बलीपलितसंयुक्तस्तृतीयं तु समाश्रयेत् ॥ १०१ ॥

वनं गच्छेत्ततः ब्राह्मणः सभार्यस्त्वेक एव वा ॥

गृहीत्वा चाग्निहोत्रं च होमं तत्र न हापयेत् ॥ १०२ ॥

कृत्वा चैव पुरोडाशं वन्यैर्भक्ष्यैर्यथाविधि ॥

भिक्षां च भिक्षवे दद्याच्छाकमूलफलादिभिः ॥ १०३ ॥

कुर्यादध्ययनं नित्यमग्निहोत्रपरायणः ॥

इष्टिं पार्वीयणीयां तु प्रकुर्यात्प्रतिपर्वसु ॥ १०४ ॥

उषित्वैवं वने विप्रो विधिज्ञः सर्वकर्मसु ॥

चतुर्थमाश्रमं गच्छेज्जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥ १०५ ॥

अग्निमात्मनि संस्थाप्य द्विजः प्रव्रजितो भवेत् ॥

वेदाभ्यासरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः ॥ १०६ ॥

अष्टौ भिक्षाः समादाय स मुनिः सप्त पञ्च वा ॥

अद्भिः प्रक्षाल्य ताः सर्वा भुञ्जीत सुममाहितः ॥ १०७ ॥

अरण्ये निर्जने तत्र पुनरासीत मुक्तवत् ॥

एकाकी चिंतयेन्नित्यं मनोवाककायकर्मभिः ॥ १०८ ॥

मृत्युं च नाभिनंदेत जीवितं वा कथंचन ॥

कालमेव प्रतीक्षेत यावदायुः समाप्यते ॥ १०९ ॥

संश्लेष्य चाश्रमान्सर्वाञ्जितक्रोधो जितेंद्रियः ॥

ब्रह्मलोकमवाप्नोति वेदशास्त्रार्थविद्विजः ॥ ११० ॥

आश्रमेषु च सर्वेषु प्रोक्तोऽयं प्राग्निर्को विधिः ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्ताविधिं शुभम् ॥ १११ ॥

ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥

महापातकिनस्त्वेते तत्संयोगी च पंचमः ॥ ११२ ॥

ब्रह्मघ्नश्च वनं गच्छेद्बल्कवासा जटी ध्वजी ॥

वन्यान्त्येव फलान्यश्रन्सर्वकामविवर्जितः ॥ ११३ ॥

भिक्षार्थी विचरेद्ग्रामं वन्यैर्यदि न जीवति ॥

चातुर्वर्ण्यं चरेद्भैक्ष्यं बद्धांगी संयतः सदा ॥ ११४ ॥

भिक्षाम्त्वेवं सामादाय वनं गच्छेत्ततः पुनः ॥

वनवासी स पापः स्यात्सर्वकालमतंद्रितः ॥ ११५ ॥

ख्यापयन्मुच्य ते पापाद्ब्रह्महा पापकृत्तमः ॥

अनेन तु विधानेन द्वादशाब्दव्रतं चरेत् ॥ ११६ ॥

सानेयम्येंद्रियग्रामं सर्वभूतहिते रतः ॥

ब्रह्महत्यापनोदाय ततो मुच्येत किल्बिषात् ॥ ११७ ॥
 अतः परं सुरापस्य निष्कृतिं श्रोतुमर्हथ ॥
 गौडो माध्वी च पैष्टी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ॥ ११८ ॥
 यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥
 सुरापस्तु सुरां तप्तां पिबेत्तत्पापमोक्षकः ॥ ११९ ॥
 गोमूत्रमग्निवर्णं वा गोमयं वा तथाविधम् ॥
 घृतं वा त्रीणि पेयानिसुरापां व्रतमाचरेत् ॥ १२० ॥
 मुच्यते तेन पानेन प्रायश्चित्ते कृते सति ॥
 अरण्ये वा वनेत्सभ्यक्सर्वकामविवर्जितः ॥ १२१ ॥
 चांद्रायणानि वा त्रीणि सुरापव्रतमाचरेत् ॥
 एवं शुद्धिः सुरापस्य भवोदिति न संशयः ॥
 मद्यभांडोदकं पीत्वा पुनः संस्कारमर्हति ॥ १२२ ॥
 स्तेयं कृत्वा सुवर्णस्य स्तेयं राज्ञे निवेदयेत् ॥ १२३ ॥
 ततो मुशलमादाय स्तेनं हन्यात्सकृन्नृपः ॥
 यदि जीवति स स्तेनस्ततः स्तेयाद्विमुच्यते ॥ १२४ ॥
 अरण्ये चीरवासा वा चरेद्ब्रह्महणो व्रतम् ॥
 एवं शुद्धिः कृता स्तेये संवर्तवचनं यथा ॥ १२५ ॥
 गुरुतरुपे शयानस्तु तप्ते स्वप्यादयोमये ॥
 समालिंगेत्स्त्रियं वापि दीप्तां क्राष्णायसा कृताम् ॥ १२६ ॥
 चांद्रायणानि कुर्याच्च चत्वारि त्रीणि वा द्विजः ॥

मुच्यते च ततः पापात्प्रायश्चित्ते कृते सति ॥ १२७ ॥

एभिः संपर्कमायाति यः काश्चित्पापमोहितः ॥

तत्तत्पापविशुद्ध्यर्थं तस्य तस्य व्रतं चरेत् ॥ १२८ ॥

क्षत्रियस्य वधं कृत्वा त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति ॥

कुर्याच्चैवानुरूपेण त्रीणि कृच्छ्राणि संयतः ॥ १२९ ॥

वैश्यहत्यां तु संप्राप्तः कथंचित्काममोहितः ॥

कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत स नरो वैश्यघातकः ॥ १३० ॥

कुर्याच्छूद्रवधे विप्रस्तप्तकृच्छ्रं यथाविधि ॥

एवं शुद्धिमवाप्नोति संवर्त्तवचनं यथा ॥ १३१ ॥

गोघ्नस्यातः प्रवक्ष्यामि निष्कृतिं तत्त्वतः शुभाम् १३२ ॥

गोघ्नः कुर्वीत संस्कारं गोष्ठे गोरूपसन्निधौ ॥

तत्रैव क्षितिशापी स्यान्मासार्द्धं संयतेंद्रियः ॥ १३३ ॥

स्नानं त्रिषवणं कुर्यान्नखलोमाविवार्जितः ॥

सक्तुयावकभिक्षाशी पयोदधिशकृन्नरः ॥ १३४ ॥

एतानि क्रमशोऽश्रीयद्द्विजस्तत्पापमोक्षकः ॥

गायत्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः ॥ १३५ ॥

पूर्णं चैवार्द्धमासे च स विप्रान्भोजयेद्द्विजः ॥

भुक्तवत्सु च विभेषु गां च दद्याद्विचक्षणः ॥ १३६ ॥

व्यापन्नानां बहूनां तु रोधने बंधनेऽपि वा ॥

भिषङ्मिथ्योपचारे च द्विगुणं व्रतमाचरेत् ॥ १३७ ॥

एका चेद्बहुभिः कान्चिद्देवाद्यायादिता कञ्चित् ॥

पादं पादं तु हत्यापाश्वरेयुस्ते पृथक्पृथक् ॥ १३८ ॥

यंत्रणे गोश्विकित्सार्थं मूढगर्भविमोचने ॥

यदि तत्र विपत्तिः स्यान्न स पापेन लिप्यते ॥ १३९ ॥

औषधं स्नेहमाहारं दद्याद्गोब्राह्मणेषु च ॥

दीयमाने विपत्तिः स्यात्पुण्यमेव न पातकम् ॥ १४० ॥

प्रायश्चित्तस्य पापं तु रोधेषु व्रतमाचरेत् ॥

द्वौ पादौ बंधने चैव पादोनं यंत्रणे तथा ॥ १४१ ॥

पाषाणैर्लगुडैर्दंडैस्तथा शस्त्रादिभिर्नरः ॥

निपातने चरेत्सर्वं प्रायश्चित्तं दिनत्रयम् ॥ १४२ ॥

हस्तिनं तुरगं हत्वा महिषोष्ट्रकपीस्तथा ॥

एषां वधे द्विजः कुर्यात्सप्तरात्रमभोजनम् ॥ १४३ ॥

व्याघ्रं श्वानं खरं सिंहमृक्षं सूकरमेव च ॥

एतान्हत्वा द्विजो मोहाच्चिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ १४४ ॥

सर्वासांमेव जातीनां मृगाणां वनचारिणाम् ॥

अहोरात्रोषितस्तिष्ठेज्जपन्वै जातवेदसम् ॥ १४५ ॥

हंसं काकं बलाकां च बर्हिकारंडवावपि ॥

सारसं चाषभसौ च हत्वा त्रिदिवसं क्षिपेत् ॥ १४६ ॥

चक्रवाकं तथा कौचं सारिकाशुकतित्तिरीन् ॥

श्येनगृध्रानुलूकांश्च पारावतमथापि वा ॥ १४७ ॥

टिट्ठिमं जालपादं च कोकिलं कुक्कुटं तथा ॥

एषां वधे नरः कुर्यादेकरात्रमभोजनम् ॥ १४८ ॥

पूर्वोक्तानां तु सर्वेषां हंसादीनामशेषतः ॥

अहोरात्रोषितस्तिष्ठेज्जपन्वै जातवेदसम् ॥ १४९ ॥

मंडूकं चैव हत्वा च सर्पमार्जारमूषकान् ॥

त्रिरात्रोषितस्तिष्ठेत्कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ १५० ॥

अनस्थो ब्राह्मणो हत्वा प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥

अस्थिमतां वधे विप्रः किञ्चिद्भ्याद्विचक्षणः १५१ ॥

यश्चण्डालीं द्विजो गच्छेत्कथञ्चित्काममोहितः ॥

त्रिभिः कृच्छ्रेस्तु शुद्ध्येत प्राजापत्यानुपूर्वकैः ॥ १५२ ॥

पुंश्चलीगमनं कृत्वा कामतोऽकामतोऽपि वा ॥

कृच्छ्रच्चांद्रायणे तस्य पावनं परमं स्मृतम् ॥ १५३ ॥

शैलूषीं रजकीं चैव वेणुचर्मोपजीविनीम् ॥

एता गत्वा द्विजो मोहाच्चरेच्चांद्रायणव्रतम् ॥ १५४ ॥

क्षत्रियामथ वैश्यां वा गच्छेद्यः काममोहितः ॥

तस्य सांतपनः कृच्छ्रो भवेत्पापापनोदनः ॥ १५५ ॥

शूद्रां तु ब्राह्मणो गत्वा मासं मासार्द्धमेव वा ॥

गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ १५६ ॥

विप्रामस्वजनां गत्वा प्राजापत्येन शुद्ध्यति ॥

स्वजनां तु द्विजो गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ १५७ ॥

क्षत्रिया क्षत्रियो गत्वा तदेव व्रतमाचरेत् ॥

नरो गौगमनं कृत्वा कुर्याच्चाद्रायणं व्रतम् ॥ १५८ ॥

मातुलानीं तथा श्वश्रूं सुतां वै मातुलस्य च ॥

एता गत्वा स्त्रियो मोहात्पराकेण विशुद्ध्यति ॥ १५९ ॥

गुरोर्दुहितरं गत्वा स्वसारं पितुरेव च ॥

तस्या दुहितरं चैव चरेच्चाद्रायणं व्रतम् ॥ १६० ॥

पितृव्यदारगमने भ्रातुर्भार्यागमे तथा ॥

गुरुतत्पव्रतं कुर्यान्निष्कृतिर्नान्यथा भवेत् ॥ १६१ ॥

पितृभार्या समारुह्य मातृवर्जा नराधमः ॥

भगिनीं मातुराप्तां च स्वसारं चान्यमातृजाम् ॥ १६२ ॥

एतास्तिष्ठः स्त्रियो गत्वा तप्तकृच्छ्रं समाचरेत् ॥

कुमारीगमने चैतद्रतमेतत्समाचरेत् ॥ १६३ ॥

पशुवेश्याभिगमने प्राजापत्यं विधीयते ॥

सखिभार्या समारुह्य श्वश्रूं वा श्यालिकां तथा ॥ १६४ ॥

मातरं योऽभिगच्छेच्च स्वसारं पुरुषाधमः ॥

न तस्य निष्कृतिर्गच्छेत्स्त्रां चैव तनुजां तथा ॥ १६५ ॥

नियमस्थां व्रतस्थां वा योऽभिगच्छेत्स्त्रियं द्विजः ॥

स कुर्यात्प्राकृतं कृच्छ्रं धेनुं दद्यात्पयस्विनीम् ॥ १६६ ॥

रजस्वलां तु यो गच्छेद्भूमिणीं पतितां तथा ॥

तस्य पापविशुद्ध्यर्थमतिकृच्छ्रं विधीयते ॥ १६७ ॥

वैश्यजां ब्राह्मणो गत्वा कृच्छ्रमेकं समाचरेत् ॥
 एवं शुद्धिः समाख्याता संवर्तस्य वचो यथा ॥ १६८ ॥
 कथंचिद्ब्राह्मणीं गत्वा क्षत्रियो वैश्य एव च ।
 गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुद्ध्यति ॥ १६९ ॥
 शूद्रस्तु ब्राह्मणीं गच्छेत्कदाचित्काममोहितः ॥
 गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुद्ध्यति ॥ १७० ॥
 ब्राह्मणीं शूद्रसंपर्के कदाचित्समुपागते ॥
 कृच्छ्रचांदायणं तस्याः पावनं परमं स्मृतम् ॥ १७१ ॥
 चण्डालं पुल्कसं चैव श्वपाकं पातितं तथा ॥
 एताञ्छ्रेष्ठाः स्त्रियो गत्वा कुर्युश्चांदायणत्रयम् ॥ १७२ ॥
 अतः परं प्रदुष्टानां निष्कृतिं श्रोतुमर्हथ ॥
 संन्यस्य दुर्मतिः कश्चिदपत्यार्थं स्त्रियं व्रजेत् ॥ १७३ ॥
 कुर्यात्कृच्छ्रं समानं तत्षण्मासांस्तदनंतरम् ॥
 विषामिश्रामशबलास्तेषामेवं विनिर्दिशेत् ॥ १७४ ॥
 स्त्रीणां तथा च चरणे ह्यधिमासगमे तथा ॥
 पतनेष्वप्ययं दृष्टः प्रायश्चित्तविधिः शुभः ॥ १७५ ॥
 नृणां विप्रतिपत्तौ च पावनः प्रेत्य चेह च ॥
 गोविप्रप्रहते चैव तथा चैवात्मघातिनि ॥ १७६ ॥
 नैवाश्रुपतनं कार्यं साद्धिः श्रेयोऽभिकांक्षिभिः
 एषामन्यतमं प्रेतं यो वहेत दहेत वा ॥ १७७ ॥

कृत्वा चोदकदानं तु चरच्चाद्यायणव्रतम्
 तच्छुवं केवलं स्पृष्ट्वा अश्रु नो पातितं यदि ॥ १७८ ॥
 पूर्वकेष्वप्यकारी चंदेकाहं क्षपणं तथा ॥
 महापातकिनां चैव तथा चैवाऽमघातिनाम् ॥ १७९ ॥
 उदकं पिंडदानं च श्राद्धं चैव हि यत्कृतम् ॥
 नापतिष्ठति तत्सर्वं राक्षसैर्विप्रलुप्यते ॥ १८० ॥
 चण्डालैस्तु हता ये च द्विजा दंष्ट्रिसरीसृपैः ॥
 श्राद्धं तेषां न कर्तव्यं ब्रह्मदण्डहताश्च ये ॥ १८१ ॥
 कृत्वा मूत्रपुरीषे तु भुक्त्वोच्छिष्टस्तथा द्विजः ॥
 श्वादिस्पृष्टो जपेद्देव्याः सहस्रं ज्ञानपूर्वकम् ॥ १८२ ॥
 चण्डालं पतितं स्पृष्ट्वा शवमंत्यजमेव च ॥
 उदक्यां सूतिकां नारीं सवासः स्नानमाचरेत् ॥ १८३ ॥
 स्पृष्टेन संस्पृशेद्यस्तु स्नानं तस्य विधीयते ॥
 ऊर्ध्वमाचमनं प्रोक्तं द्रव्याणां प्रोक्षणं तथा ॥ १८४ ॥
 चण्डालाद्यैस्तु संस्पृष्ट उच्छिष्टश्चेद्विजोत्तमः ॥
 गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥ १८५ ॥
 शुना पुष्पवती स्पृष्टा पुष्पवत्यान्यया तथा ॥
 शेषाण्यहान्युपवसेत्तनात्वा शुद्ध्येद्दृष्टाशनात् ॥ १८६ ॥
 चण्डालभांडसंस्पृष्टं पिबेत्कूपगतं जलम् ॥
 गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति ॥ १८७ ॥

भृत्यजैः स्वकृते तीर्थे तडागेषु नदीषु च ॥
 शुद्ध्यते पंचगव्येन पीत्वा तोयमकामतः ॥ १८८ ॥
 सुराघटप्रपातोऽयं पीत्वा नालीजलं तथा ॥
 अहोरात्रोषितो भूत्वा पंचगव्यं पिबेद्विजः ॥ १८९ ॥
 कूपे विण्मूत्रसंपृष्टाः प्राश्य चापो द्विजातयः ॥
 त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यन्ति कुम्भे सातपनं स्मृतम् ॥ १९० ॥
 वापीकूपतडागानामुपहतानां विशोधनम् ॥
 अपां घटशतोद्धारः पंचगव्यं च निक्षिपेत् ॥ १९१ ॥
 स्त्रीक्षीरमाविकं पीत्वा संधिन्याश्चैव गोः पयः ॥
 तस्य शुद्धिस्त्रिरात्रेण द्विजानां चैव भक्षणे ॥ १९२ ॥
 विण्मूत्रभक्षणे चैव प्राजापत्यं समाचरेत् ॥
 श्वकाकोच्छिष्टगोच्छिष्टभक्षणे तु त्र्यहं द्विजः ॥ १९३ ॥
 विडालमूषिकोच्छिष्टे पंचगव्यं पिबेद्विजः ॥
 शूद्रोच्छिष्टं तथा भुक्त्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ १९४ ॥
 पलांडुं लशुनं जग्ध्वा तथैव ग्रामकुक्कुटम् ॥
 छत्राकं विड्वराहं च चरेत्सातपनं द्विजः ॥ १९५ ॥
 श्वविडालखरोष्ट्राणां कपेर्गोमायुकाकयोः ॥
 प्राश्य मूत्रपुरीषे वा चरेच्चांद्रायणं व्रतम् ॥ १९६ ॥
 अन्नं पर्युषितं भुक्त्वा केशकीटैरुपस्कृतम् ॥
 पतितैः प्रेक्षितं वापि पंचगव्यं द्विजः पिबेत् ॥ १९७ ॥

अंत्यजाभाजने भुक्त्वा उदकयाभाजने तथा ॥
 गोमूत्रयावकाहारो मासाद्धेन विशुद्ध्यति ॥ १९८ ॥
 गोमांसं मानुषं चैव शुनो हस्तात्समाहतम् ॥
 अभक्ष्यं तद्भवेत्सर्वं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ १९९ ॥
 चंडाले संकरे विप्रः श्वपाके पुलकमेपि वा ॥
 गोमूत्रयावकाहारो मासाद्धेन विशुद्ध्यति ॥ २०० ॥
 पतितेन तु संपर्कं मांसं मासाद्धमेव वा ॥
 गोमूत्रयावकाहारान्मासाद्धेन विशुद्ध्यति ॥ २०१ ॥
 पतिताद्व्यमादत्ते भुंक्ते वा ब्राह्मणो यदि ॥
 कृत्वा तस्य समुत्सर्गमतिकृच्छ्रं चरेद्विजः ॥ २०२ ॥
 यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यन्ते द्विजः ॥
 तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्या प्रत्यहं द्विजः ॥ २०३ ॥
 एष एव मया प्रोक्तः प्रायश्चित्तविधिः शुभः ॥
 अनादिष्टेषु पापेषु प्रायश्चित्तं न चोच्यते ॥ २०४ ॥
 दानैर्होमैर्जपैर्नित्यं प्राणायामैर्द्विजोत्तमः ॥
 पातकेभ्यः प्रमुच्येत वेदाभ्यासान्न संशयः ॥ २०५ ॥
 सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानं तथैव च ॥
 नाशयत्याशु पापानि ह्यन्यजन्मकृतान्यपि ॥ २०६ ॥
 तिलं धेनुं च यो दद्यात्संयताय द्विजातये ॥
 ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ २०७ ॥

माघमासे तु संप्राप्ते पौर्णमास्यामुपेषितः ॥
 ब्राह्मणेभ्यस्तिलान्दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २०८ ॥
 उपवासी नरो भूत्वा पौर्णमास्यां तु कार्तिके ॥
 हिरण्यं वस्त्रमन्नं च दत्त्वा तरति दुष्कृतम् ॥ २०९ ॥
 अयने विषुवे चैव व्यतीपाते दिनक्षये ॥
 चन्द्रसूर्यग्रहे चैव दत्ते भवति चाक्षयम् ॥ २१० ॥
 अमावास्यां च द्वादश्यां संक्रांतौ च विशेषतः ॥
 एताः प्रशस्तास्तिथयो भानुवारस्तथैव च ॥ २११ ॥
 तत्र स्नानं जपो होमो ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥
 उपवासस्तथा दानमेकैकं पावयेन्नरम् ॥ २१२ ॥
 ज्ञातः शुचिर्धौतवासाः शुद्धात्मा विजितेन्द्रियः ॥
 सात्त्विकं भावमास्थाय दानं दद्याद्विचक्षणः ॥ २१३ ॥
 सप्तव्याहृतिभिः कार्यां द्विजैर्होमो जितात्मभिः ॥
 उपपातकशुद्ध्यर्थं सहस्रपरिसंख्यया ॥ २१४ ॥
 महापातकसंयुक्तो लक्षहोमं सदा द्विजः ॥
 मुच्यते सर्वपापेभ्यो गायत्र्या चैव पावितः ॥ २१५ ॥
 अभ्यसेच्च तथा पुण्यां गायत्रीं वेदमातरम् ॥
 गत्वारण्ये नदीतीरे सर्वपापविशुद्ध्ये ॥ २१६ ॥
 स्नात्वा ह्याचम्य विधिवत्ततः प्राणान्समापयेत् ॥
 प्राणायामैस्त्रिभिः पूतो गायत्रीं तु जपेद्विजः ॥ २१७ ॥

अक्लिन्नवासाः स्थलगः शुचौ देशे समाहितः ॥
 पश्चिन्नाणिरात्रांतोऽगायत्र्या जपमाचरेत् ॥ २१८ ॥
 ऐहिकामुष्मिकं पापं सर्वं निरवशेषतः ॥
 पंचरात्रेण गायत्रीं जपमानो व्यपोहति ॥ २१९ ॥
 गायत्र्यास्तु परं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम् ॥
 महाव्याहृतिसंयुक्तां प्रणवेन च संजपेत् ॥ २२० ॥
 ब्रह्मचारी निराहारः सर्वभूतहिते रतः ॥
 गायत्र्या लक्षजप्येन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२१ ॥
 अयाज्ययाजनं कृत्वा भुक्त्वा चान्नं विगर्हितम् ॥
 गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ २२२ ॥
 अहन्यहनि योऽधीते गायत्रीं वै द्विजोत्तमः ॥
 मासेन मुच्येत पापादुरगः कंचुकाद्यथा ॥ २२३ ॥
 गायत्रीं यस्तु विप्रो वै जपेत् नियतः सदा ॥
 स याति परमं स्थानं वायुभूतः स्वमूर्तिमान् ॥ २२४ ॥
 प्रणवेन च संयुक्ता व्याहृतीः सप्त नित्यशः ॥
 गायत्रीं शिरसा सार्द्धं मनसा त्रिः पिबेद्विजः ॥ २२५ ॥
 निगृह्य चात्मनः प्राणान्प्राणायामो विधीयते ॥
 प्राणायामत्रयं कुर्यान्नित्यमेव समाहितः ॥ २२६ ॥
 मानसं वाचिकं पापं कायेन वै च यत्कृतम् ॥
 तत्सर्वं नाशमाप्नोति प्राणायामप्रभावतः ॥ २२७ ॥

ऋग्वेदमभ्यसेद्यस्तु यजुःशाखामथापि वा ॥

सामानि सरहस्यानि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२८ ॥

पावमानीं तथा कौत्सीं पौरुषं सूक्तमेव च ॥

जप्त्वा पापैः प्रमुच्येत सपित्र्यं माधुच्छंदसम् ॥ २२९ ॥

मंडलं ब्राह्मणं रुद्रसूक्तोक्ताश्च बृहद्यथा ॥

वामदेव्यं बृहत्साम सर्वपापैः प्रमुच्येत ॥ २३० ॥

चांद्रायणं तु सर्वेषा पापानां पावनं परम् ॥

कृत्वा शुद्धिमवाप्नोति परमं स्थानमेव च ॥ २३१ ॥

धर्मशास्त्रमिदं पुण्यं संवर्तेन तु भाषितम् ॥

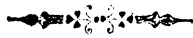
अधीत्यब्राह्मणो गच्छेद्ब्राह्मणः सन्न शाश्वतम् ॥ २३२ ॥

इति संवर्त्तप्रणीतं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ ८ ॥

संवर्त्तस्मृतिः समाप्ता ॥ ८ ॥

श्रीः ।

कात्यायनस्मृतिः ९.



प्रथमः खंडः १.

श्रीगणेशाय नमः ।

अथातो गोभिलोक्तानामन्येषां चैव कर्मणाम् ॥
अस्पष्टानां विधिं सम्यग्दर्शयिष्ये प्रदोषवत् ॥ १ ॥
त्रिवृद्धूर्ध्ववृतं कार्यं तंतुत्रयमधोवृतम् ॥
त्रिवृतं चोपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रंथिरिष्यते ॥ २ ॥
पृष्ठवंशे च नाभ्यां च धृतं यद्विदत्तं कटिम् ॥
तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातो लंबं न चोच्छ्रितम् ॥ ३ ॥
सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च ॥
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥ ४ ॥
त्रिः प्राश्यापो द्विरुन्मृज्य मुखमेतान्युपस्पृशेत् ॥
आस्यनासाक्षिकर्णाश्च नाभिवक्षःशिरोऽसकान् ॥ ५ ॥
संहताभिरुयंगुलिभिरास्यमेवमुपस्पृशेत् ॥
अंगुष्ठेन प्रदेशिन्यां घ्राणं चैवमुपस्पृशेत् ॥ ६ ॥
अंगुष्ठानामिकाभ्यां च चक्षुः श्रोत्रं पुनः पुनः ॥
कनिष्ठांगुष्ठयोर्नाभिं हृदयं तु तलेन वै ॥ ७ ॥

सर्वाभिस्तु शिरः पश्चाद्बाहू चांग्रेण संस्पृशेत् ॥

यत्रोपदिश्यते कर्म कर्तुरंगं न तूच्यते ॥

दक्षिणस्तत्र विज्ञेयः कर्मणां पारगः करः ॥ ८ ॥

यत्र दिङ्नियमो न स्याज्जपहोमादिकर्मभूषु ॥

तिस्रस्तत्र दिशः प्रोक्ता ऐंद्रीसौम्यापराजिताः ॥ ९ ॥

तिष्ठन्नासीनः प्रह्लो वा नियमां यत्र नेदृशः ॥

तदासीनेन कर्तव्यं न प्रहेण न तिष्ठता ॥ १० ॥

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ॥

देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ॥ ११ ॥

धृतिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मदेवतया सह ॥

गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्याश्च षोडश ॥ १२ ॥

कर्ममादिषु तु सर्वेषु मातरः सगणाधिपाः ॥ १३ ॥

पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः ॥

प्रतिमासु च शुभ्रासु लिखित्वा वा पटादिषु ॥

अपि वाक्षतपुंजेषु नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः ॥ १४ ॥

कुड्यलमां वसोर्द्धारां सप्तधारां वृतेन तु ॥

कारयेत्पंचधारां वा नातिनीचां न चोच्छ्रिताम् ॥ १५ ॥

आयुष्याणि च शान्त्यर्थं जप्त्वा तत्र समाहितः ॥

षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु भक्त्या श्राद्धमुपक्रमेत् ॥ १६ ॥

अनिष्टा तु पितृञ्जलाद्वे न कुर्यात्कर्म वैदिकम् ॥
 तत्रापि मातरः पूर्वं पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ १७ ॥
 वसिष्ठोक्तो विधिः कृत्स्नो द्रष्टव्योऽत्र निरामिषः ॥
 अतः परं प्रवक्ष्यामि विशेष इह यो भवेत् ॥ १८ ॥
 इति श्रीकात्यायनस्मृतौ प्रथमः खंडः समाप्तः ॥ १ ॥

द्वितीयः खण्डः २.

प्रातरामंत्रितान्विप्रान्युग्मानुभयतस्तथा ॥
 उपवेश्य कुशान्दद्याद्वज्रुनैव हि पाणिना ॥ १ ॥
 हरिता यज्ञिया दर्भाः पीतकाः पाकयज्ञियाः ॥
 समूलाः पितृदैवत्याः कल्माषा वैश्वदेविकाः ॥ २ ॥
 हरिता वै सपिञ्जलाः शुष्काः स्निग्धाः समाहिताः ॥
 रत्निमात्रप्रमाणेन पितृतीर्थेन संस्तृताः ॥ ३ ॥
 पिंडार्थं ये स्तृता दर्भास्तर्पणार्थं तथैव च ॥
 धृतैः कृते च विष्मूत्रे त्यागस्तेषां विधीयन्ते ॥ ४ ॥
 दक्षिणं पातयेज्जानुं देवान्परिचरन्सदा ॥
 पातयेदितरं जानुं पितॄन्परिचरन्नपि ॥ ५ ॥
 निपातो नहि सव्यस्य जानुनो विद्यते कश्चित् ॥
 सदा परिचरेद्भक्त्या पितॄन्प्यत्र देववत् ॥ ६ ॥
 पितृभ्य इति दत्तेषु उपवेश्य कुशेषु तान् ॥
 गोत्रनामभिरामंज्य पितॄनर्घ्यं प्रदापयेत् ॥ ७ ॥

नात्रापसव्यकरणं न पित्र्यं तीर्थमिष्यते ॥
 पात्राणां पूरणादीनि दैवैर्नैव हि कारयेत् ॥ ८ ॥
 ज्येष्ठोत्तरकरान्युगमान्कराग्राग्रपवित्रकान् ॥
 कृत्वार्घ्यं संप्रदातव्यं नैकैकस्यात्र दीयते ॥ ९ ॥
 अनंतर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च ॥
 प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित् ॥ १० ॥
 एतदेव हि पिंजूर्या लक्षणं समुदाहृतम् ॥
 आज्यस्योत्पवनार्थं यत्तदप्येतावदेव तु ॥ ११ ॥
 एतत्प्रमाणामेवैके कौशीमेवार्द्रमंजरीम् ॥
 शुष्कां वा शीर्णकुसुमां पिंजूर्लीं परिचक्षते ॥ १२ ॥
 पित्र्यमंत्रानुद्रवण आत्मा लंभेऽधमेक्षणे ॥
 अधोवायुसमुत्सर्गे प्रहासेऽनृतभाषणे ॥ १३ ॥
 मार्जारमूषकस्पर्शे आक्रुष्टे क्रोधसंभवे ॥
 निमित्तेष्वेषु सर्वत्र कर्म कुर्वन्नपः स्पृशेत् ॥ १४ ॥
 इति कात्यायनस्मृतौ द्वितीयः खण्डः ॥ २ ॥

तृतीयः खण्डः ३.

अक्रिया त्रिविधा प्रोक्ता विद्वद्भिः कर्मकारिणाम् ॥
 अक्रिया च परोक्ता च तृतीया चायथाक्रिया ॥ १ ॥

स्वशाखाश्रयमुत्सृज्य परशाखाश्रयं च यः ॥
 कर्तुमिच्छति दुर्मेवा मोघं तत्तस्य चेष्टितम् ॥ २ ॥
 यत्रास्नातं स्वशाखायां परोक्तमविरोधि च ॥
 विद्वाद्भिस्तदनुष्ठेयमभिहोत्रादिकर्मवत् ॥ ३ ॥
 प्रवृत्तमन्यथा कुर्याद्यदि मोहात्कथंचन ॥
 यतस्तदन्यथाभूतं तत एव समापयेत् ॥ ४ ॥
 समाप्ते यदि जानीयान्मर्यैतदयथाकृतम् ॥
 तावदेव पुनः कुर्यान्नावृत्तिः सर्वकर्मणः ॥ ५ ॥
 प्रधानस्याक्रिया यत्र साङ्गं तत्क्रियं पुनः ॥
 तदंगस्याक्रियायां च नावृत्तिर्नैव तत्क्रिया ॥ ६ ॥
 मधुमध्विति यस्तत्र विर्जपांश्शितुमिच्छताम् ॥
 गायत्र्यनंतरं सोऽत्र मधुमंत्रविवर्जितः ॥ ७ ॥
 अन्य एव जपः कार्यः सोमसामादिकः शुभः ॥ ८ ॥
 यस्तत्र प्रकरोऽन्नस्य तिलवद्यववत्तथा ॥
 उच्छिष्टसन्निधौ सोऽत्र तृप्तेषु विपरीतकः ॥ ९ ॥
 संपन्नमिति तृप्ताः स्थ प्रश्नस्थाने विधीयते ॥
 सुसंपन्नमिति प्रोक्ते शेषमन्नं निवेदयेत् ॥ १० ॥
 प्रागग्रेष्वथ दर्भेषु आद्यमामंज्य पूर्ववत् ॥
 अपः क्षिपेन्मूलदेशेष्वनेनिक्ष्वति पात्रतः ॥ ११ ॥

द्वितीयं च तृतीयं च मध्यदेशाग्रदेशयोः ॥

मातामहप्रभृतींस्त्रिनिंतेषामेव वामतः ॥ १२ ॥

सर्वस्मादन्नमुद्धृत्य व्यंजनैरुपासित्य च ॥

संयोज्य पक्वकर्कन्धूदधिभिः प्राङ्मुखस्ततः ॥ १३ ॥

अवनेजनवात्पिण्डान्दत्त्वा बिल्वप्रमाणकान् ॥

तत्पात्रक्षालनेनाथ पुनरप्यवनेजयेत् ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ तृतीयः खंडः ॥ ३ ॥

चतुर्थः खण्डः ४.

उत्तरोत्तरदानेन पिंडानामुत्तरोत्तरः ॥

भवेदधश्चाधराणामधरः श्राद्धकर्मणि ॥ १ ॥

तस्माच्छ्राद्धेषु सर्वेषु वृद्धिमत्स्वितरेषु च ॥

मूलमध्याग्रदेशेषु ईषत्सक्तृंश्च निर्वपेत् ॥ २ ॥

गन्धादीन्निःक्षिपेत्तूष्णीं तत आचामयेद्विजान् ॥

अन्यत्राप्येष एव स्याद्यवादिरहितो विधिः ॥ ३ ॥

दक्षिणाप्लवने देशे दक्षिणाभिमुखस्य च ॥

दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु एषोऽन्यत्र विधिः स्मृतः ॥ ४ ॥

अथाग्रभूमिमांसिचत्सुसंप्रोक्षितमस्त्विति ॥

शिवा आपः सन्त्विति च युग्मानेवोदकेन च ॥ ५ ॥

सौमनस्यमस्त्विति च पुष्पदानमनन्तरम् ॥

अक्षतं चारिष्टं चास्त्वित्यक्षतान्प्रातिपादयेत् ॥ ६ ॥

अक्षयोदकदानं तु अर्घ्यदानवदिष्यते ॥
 षष्ठ्यैव नित्यं तत्कुर्यान्न चतुर्थ्या कदाचन ॥ ७ ॥
 अर्घ्यैःक्षयोदके चैव पिण्डदानेऽवनेजने ॥
 तंत्रस्य तु निवृत्तिः स्यात्स्वधावाचन एव च ॥ ८ ॥
 प्रार्थनासु प्रतिप्रोक्ते सर्वास्वेव द्विजोत्तमैः ॥
 पवित्रांतरिहितान्पिण्डान्सिचेदुत्तानपात्रकृत् ॥ ९ ॥
 युग्मानेव स्वस्तिवाच्यमंगुष्ठाग्रग्रहं सह ॥
 कृत्वा धुर्य्यस्य विप्रस्य प्रणम्यानुव्रजेत्ततः ॥ १० ॥
 एष श्राद्धविधिः कृत्स्न उक्तः संक्षेपतो मया ॥
 ये विदंति न मुह्यंति श्राद्धकर्मसु ते कश्चित् ॥ ११ ॥
 इदं शास्त्रं च गुह्यं च परिसंख्यानमेव च ॥
 वसिष्ठोक्तं च यो वेद स श्राद्धं वद नेतरः ॥ १२ ॥
 इति कात्यायनस्मृतौ चतुर्थः खण्डः ॥ ४ ॥

पञ्चमः खण्डः ५.

असकृद्यानि कर्माणि क्रियेरन्कर्मकारिभिः ॥
 प्रतिप्रयोगं नेताः स्युर्मातरः श्राद्धमेव च ॥ १ ॥
 आधाने होमयोश्चैव वैधदेवे तथैव च ॥
 बलिकर्माणि दश च पौर्णमासे तथैव च ॥ २ ॥
 मधपज्ञे च यज्ञज्ञा वदन्त्येवं मनीषिणः ॥
 एकमेव भवेच्छ्राद्धमेतेषु न पृथक्पृथक् ॥ ३ ॥

नाष्टकासु भवेच्छ्राद्धं न श्राद्धे श्राद्धमिष्यते ॥

नै सोष्यन्तीजातकर्म प्रोषितागतकर्मसु ॥ ४ ॥

विवाहादिः कर्मगणो य उक्तो

गर्भाधानं शुश्रुम यस्य चान्ते ॥

विवाहादविक्रमेवात्र कुर्याच्छ्राद्धं

नार्दो कर्मणः कर्मणः स्यात् ॥ ५ ॥

प्रदोषे श्राद्धमेकं स्याद्गोनिष्क्रामप्रवेशयोः ॥

न श्राद्धे युज्यते कर्तुं प्रथमे पुष्टिकर्मणि ॥ ६ ॥

हलाभियोगादिषु तु षट्सु कुर्यात्पृथक्पृथक् ॥

प्रतिप्रयोगमप्येषामादावेकं तु कारयेत् ॥ ७ ॥

बृहत्पत्रक्षुद्रपशुस्वस्त्यर्थं परिविष्यतोः ॥

सूर्येन्द्रोः कर्मणी ये तु तयोः श्राद्धं न विद्यते ॥ ८ ॥

न दशाग्रंथिके चैव विषवदष्टकर्मणि ॥

कृमिदष्टचिकित्सायां नैव शेषेषु विद्यते ॥ ९ ॥

गणशः क्रियमाणेषु मातृभ्यः पूजनं सकृत् ॥

सकृदेव भवेच्छ्राद्धमार्दो न पृथगादिषु ॥ १० ॥

यत्र यत्र भवेच्छ्राद्धं तत्र तत्र च मातरः ॥

प्रासङ्गिकमिदं प्रोक्तमतः प्रकृतमुच्यते ॥ ११ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ पंचमः खण्डः ॥ ५ ॥

षष्ठः खण्डः ६.

आधानकाला ये प्रोक्तास्तथा याश्चामिषोनयः ॥
तदाश्रयोऽग्निमादध्यादग्निमानग्रजो यदि ॥ १ ॥
दारादिगमनाधाने यः कुर्यादग्रजाग्निमः ॥
परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥ २ ॥
परिवित्तिपरिवेत्तारौ नरकं गच्छतां ध्रुवम् ॥
अपि चीर्णप्रायश्चित्तौ पादोनफलभागिनौ ॥ ३ ॥
देशांतरस्थक्लौबैकवृषणानसहोदरान् ॥
वेश्यातिसक्तपतितशूद्रतुल्यातिरोगिणः ॥ ४ ॥
जडमूकान्धबाधिरकुब्जवामनकुंडकान् ॥
अतिवृद्धानभार्याश्च कृषिसक्तान्नृपस्य च ॥ ५ ॥
धनवृद्धिप्रसक्तांश्च कामतः कारिणस्तथा ॥
कुलटोन्मत्तचोरांश्च पगिविन्दन्नुद्वेष्टा ॥ ६ ॥
धनवार्थुषिकं राजसेवकं कर्मकं तथा ॥
प्रोषितं च प्रतीक्षेत वर्षत्रयमपि त्वरन् ॥ ७ ॥
प्रोषितं यद्यश्रृण्वानमब्दादूर्ध्वं समाचरेत् ॥
आगते तु पुनस्तस्मिन्पादं तच्छुद्धये चरेत् ॥ ८ ॥
लक्षणे प्रागगतायास्तु प्रमाणं द्वादशांगुलम् ॥
तन्मूलसक्ता योदीची तस्या एतन्नवोत्तरम् ॥ ९ ॥

उदग्गतायाः संलमाः शेषाः प्रादेशमात्रिकाः ॥
 सप्तसप्तांगुलास्त्यक्त्वा कुशेनैव समुल्लिखेत् ॥ १० ॥
 भानक्रियायामुक्तायामनुक्ते मानकर्त्तरि ॥
 मानकृद्यजमानः स्याद्विदुषामेष निश्चयः ॥ ११ ॥
 पुण्यवानादधीताग्निं स हि सर्वैः प्रशस्यते ॥
 अनर्द्धकत्वं यत्तस्य काम्यैस्तन्नीयते शमम् ॥ १२ ॥
 यस्य दत्ता भवेत्कन्या वाचा सत्येन केनचित् ॥
 सोऽन्त्यां समिधमाधास्यन्नादधीतैव नान्यथा ॥ १३ ॥
 अनूढैव तु सा कन्या पञ्चत्वं यदि गच्छति ॥
 न यथा व्रतलोपोऽस्य तेनैवान्यां समुद्बहेत् ॥ १४ ॥
 अथ चेन्न लभेतान्यां याचमानोऽपि कन्यकाम् ॥
 तमग्निमात्मसात्कृत्वा क्षिप्रं स्यादुत्तराश्रमी ॥ १५ ॥
 इति कात्यायनस्मृतौ षष्ठः खण्डः ॥ ६ ॥

सप्तमः खंडः ७.

अश्वत्थो यः शमीगर्भः प्रशस्तोर्व्वीसमुद्भवः ॥
 तस्य या प्राङ्मुखी शाखा वोदीची वोद्धगापि वा ॥ १ ॥
 अरणिस्तन्मयी प्रोक्ता तन्मयेवोत्तरारणिः ॥
 सारवदारवं चात्रमोविली च प्रशस्यते ॥ २ ॥
 संसक्तमूलो यः शम्पाः स शमीगर्भ उच्यते ॥
 अलाभे त्वशमीगर्भादुद्धरेद्विद्वम्बितः ॥ ३ ॥

चतुर्विंशतिरंगुष्ठदैर्घ्यं षडपि पार्थिवम् ॥
 चत्वार उच्छ्रूये मानमरण्योः परिकीर्तितम् ॥ ४ ॥
 अष्टांगुलः प्रमन्थः स्याच्चात्रं स्याद्वादशांगुलम् ॥
 ओविली द्वादशैव स्यादेतन्मथनयंत्रकम् ॥ ५ ॥
 अंगुष्ठांगुलमानं तु यत्र यत्रोपदिश्यते ॥
 तत्र तत्र बृहत्पर्व ग्रंथिभिर्मिनुयात्सदा ॥ ६ ॥
 गोवालैः शणसंमिश्रैस्त्रिवृत्तममलात्मकम् ॥
 व्यामप्रमाणं नेत्रं स्यात्प्रमथ्यस्तेन पावकः ॥ ७ ॥
 मूर्द्धाक्षिकर्णवक्त्राणि कन्धरा चापि पञ्चमी ॥
 अंगुष्ठमात्राण्येतानि द्यंगुष्ठं वक्ष उच्यते ॥ ८ ॥
 अंगुष्ठमात्रं हृदयं त्र्यंगुष्ठमुदरं स्मृतम् ॥
 एकांगुष्ठा कटिर्ज्ञेया द्वौ वस्तिर्द्वे च गुह्यके ॥ ९ ॥
 उरू जंघे च पादौ च चतुर्ह्येकैर्यथाक्रमम् ॥
 अरण्यवयवा ह्येते याज्ञिकैः परिकीर्तिताः ॥ १० ॥
 यत्तद्गुह्यमिति प्रोक्तं देवयोनिस्तु सोऽप्यते ॥
 अस्यां यो जायते वह्निः स कल्याणकृदुच्यते ॥ ११ ॥
 अन्येषु ये तु मथ्नन्ति ते रोगभयमाप्नुयुः ॥
 प्रथमं मन्थने त्वेष नियमो नोतरेषु च ॥ १२ ॥
 उत्तरारणिनिष्पन्नः प्रमन्थः सर्वदा भवेत् ॥
 योनिस्करदोषेण युज्यते ह्यन्यमन्थकृत् ॥ १३ ॥

आर्द्रा ससुषिरा चैव घूर्णांगी पाटिता तथा ॥
 न हिता यजमानानामरणिश्चोत्तरारणिः ॥ १४ ॥
 इति कात्यायनस्मृतौ सप्तमः खण्डः ॥ ७ ॥

अष्टमः खण्डः ८.

परिधायाहतं वासः प्रावृत्य च यथाविधि ॥
 विभृयात्प्राङ्मुखो यंत्रमावृता वक्ष्यमाणया ॥ १ ॥
 चात्रबुधे प्रमन्याग्रं गाढं कृत्वा विचक्षणः ॥
 कृत्वोत्तराग्रामरणिं तद्बुधमुपरि न्यसेत् ॥ २ ॥
 चात्राधः कीलकाग्रस्थापोवेलीमुदगग्रकाम् ॥
 विष्टंभाद्वारेयेद्यंत्रं निष्कम्पं प्रयतः शुचिः ॥ ३ ॥
 त्रिरुद्वेष्ट्याथ नत्रेण चात्रं पत्न्योऽहतांशुकाः ॥
 पूर्व मध्न्यंतरण्यन्ताः प्रान्धमेः स्याद्यथा च्युतिः ॥ ४ ॥
 नैकयापि विना कार्य्यमाधानं भार्य्यया द्विजैः ॥
 अकृते तद्विजानीयात्सर्वान्वाचा रमन्ति यत् ॥ ५ ॥
 वर्णज्यैष्ठ्येन बह्वीभिः सवर्णाभिश्च जन्मतः ॥
 कार्य्यप्राप्तिच्युतेराभिः साध्वीभिर्मथनं पुनः ॥ ६ ॥
 नात्र शूद्रां प्रयुञ्जीत न द्रोहद्वेषकारिणीम् ॥
 अवतस्थां तथा नान्यपुंसा च सह संगताम् ॥ ७ ॥
 ततः शक्ततरा पश्चादासामन्यतरापि वा ॥
 उपेतानां वान्यतमा मन्येदपि निकामतः ॥ ८ ॥

जातस्य लक्षणं कृत्वा तं प्रणीय समिध्य च ॥
 आधाय समिधं चैव ब्राह्मणं चोपवेशयेत् ॥ ९ ॥
 ततः पूर्णाहुतिं हुत्वा सर्व्वमंत्रसमन्विताम् ॥
 गां दद्याद्यज्ञवानन्ते ब्रह्मणे वाससी तथा ॥ १० ॥
 होमपात्रमनादेशे द्रवद्रव्ये सुवः स्मृतः ॥
 पाणिगेवेतरस्मिंस्तु सुचैवात्र तु हूयते ॥ ११ ॥
 खादिरो वाथ पालाशो द्विवितस्तिः सुवः स्मृतः ॥
 सुग्वाडुमात्रा विज्ञेया वृत्तस्तु प्रग्रहस्तयोः ॥ १२ ॥
 सुवाग्रे घ्राणवत्त्वातं द्व्यंगुष्ठपरिमंडलम् ॥
 जुहाः शराववत्त्वातं सनिव्वाहं षडंगुलम् ॥ १३ ॥
 तेषां प्राक्शः कुशैः कार्य्यः संप्रमार्गो जुहूषता ॥
 प्रतापनं च लिप्तानां प्रक्षाल्योष्णेन वारिणा ॥ १४ ॥
 प्राञ्चं प्राञ्चमुदगमेरुदग्रं समीपतः ॥
 तत्तथाऽऽसादयेद्द्रव्यं यद्यथा विनियुज्यते ॥ १५ ॥
 आज्यं हव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयते ॥
 मंत्रस्य देवतायाश्च प्रजापतिरिति स्थितिः ॥ १६ ॥
 नांगुष्ठादधिका ग्राह्या समित्स्थूलतया कचित् ॥
 न वियुक्ता त्वचा चैव न सकीटा न पाटिता ॥ १७ ॥
 प्रादेशान्नाधिका नोना न तथा स्याद्विशाखिका
 न सपर्णानि निर्व्वीर्या होमेषु च विजानता ॥ १८ ॥

प्रादेशद्वयमिध्नस्य प्रमाणं परिकीर्तितम् ॥

एवाविधाः स्युरेवेह समिधः सर्वकर्मसु ॥ १९ ॥

समिधोऽष्टादशेध्नस्य प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

दर्शं च पौर्णमासे च क्रियास्वन्यासु विंशतिः ॥ २० ॥

समिदादिषु होमेषु मंत्रदैवतवर्जिता ॥

पुरस्ताच्चोपरिष्ठाच्च हीन्धनार्थं समिद्भवेत् ॥ २१ ॥

इध्नोऽप्येधार्थमाचार्यैर्हविराहुतिषु स्मृतः ॥

यत्र चास्य निवृत्तिः स्यात्तत्स्पष्टीकरवाण्यहम् ॥ २२ ॥

अंगहोमसमित्तत्रसोष्यन्त्याख्येषु कर्मसु ॥

येषां चैतदुपर्युक्तं तेषु तत्सदृशेषु च ॥ २३ ॥

अक्षभंगादिविपदि जलहोमादिकर्मणि ॥

सोमादितिषु सर्वासु नैतेष्विध्नो विधीयते ॥ २४ ॥

इति कात्यायनस्मृतावष्टमः खण्डः ॥ ८ ॥

नवमः खण्डः ९

भूर्येऽन्तर्होमप्राप्ते षट्त्रिंशद्भिः सदांगुलैः ॥

प्रादुष्करणमग्नीनां प्रातर्भासां च दर्शनात् ॥ १ ॥

हस्तादूर्ध्वं रविर्यावद्गिरिं हित्वा न गच्छति ॥

तावद्धोमविधिः पुण्यो नात्येत्युदितहोमिनाम् ॥ २ ॥

यावत्सम्यङ् न भाव्यन्ते नभस्यृक्षाणि सर्वतः ॥

न च लौहित्यमापौति तावत्सायं च हूयते ॥ ३ ॥

रजोनीहारधूमाध्रपृष्ठाग्रान्तरिते रवौ ॥
 संध्यामुद्दिश्य जुहुयादुदतमस्य न लुप्यते ॥ ४ ॥
 न कुर्यात्क्षिप्रहोमेषु द्विजः परिसमूहनम् ॥
 वैरूपाक्षं च न जपेत्प्रपदं च विचर्जयेत् ॥ ५ ॥
 पर्युक्षणं च सर्वत्र कर्तव्यमुदितेऽन्विता ॥
 अंते च वामदेव्यस्य गानं कुर्याद्वचस्त्रिधा ॥ ६ ॥
 अहोमकेष्वपि भवेद्यथोक्तं चंद्रदर्शनम् ॥
 वामदेव्यं गणेष्वन्ते बल्यन्ते वैश्वदेविके ॥ ७ ॥
 यान्यधस्तरणान्तानि न तेषु स्तरणं भवेत् ॥
 एककार्यार्थसाध्यत्वात्परिधनिपि वर्जयेत् ॥ ८ ॥
 बर्हिः पर्युक्षणं चैव वामदेव्यजपस्तथा ॥
 कृत्वाहुतिषु सर्वासु त्रिकर्म तत्र विद्यते ॥ ९ ॥
 हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनु ब्रीहयः स्मृताः ॥
 माषकोद्वगौरादि सर्वाल्लभेऽपवर्जयेत् ॥ १० ॥
 पाण्याहुतिर्द्वादशपर्वपूरिका
 कंसादिनाचेत्सुवमात्रपूरिका ॥
 दैवेन तीर्थेन च हूयते हविः
 स्वंगारिणि स्वर्चिषि तच्च पावके ॥ ११ ॥
 योऽनर्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यंगारिणि च मानवः ॥
 मन्दाग्निरामयावी च दरिद्रश्च स जायते ॥ १२ ॥

तस्मात्समिद्धे होतव्यं नासमिद्धे कदाचन ॥
 आरोग्यमिच्छतायुश्च श्रियमात्यन्तिकीं पराम् ॥ १३ ॥
 होतव्ये च हुते चैव पाणिशूर्पस्फ्यदारुभिः
 न कुर्यादग्निधमनं कुर्याद्वा व्यजनादिना ॥ १४ ॥
 मुखेनैके धमन्त्यग्निं मुखाद्व्येषोऽध्यजायत ॥
 नाग्निं मुखेनेति च यल्लौकिके योजयन्ति तत् ॥ १५ ॥
 इति कात्यायनस्मृतौ नवमः खण्डः ॥ ९ ॥

दशमः खण्डः १०.

यथाहनि तथा प्रातर्नित्यं स्नायादनातुरः ॥
 दन्तान्प्रक्षाल्य नद्यादौ गृहे चेत्तदमन्त्रवत् ॥ १ ॥
 नारदाद्युक्तवार्क्षं यदष्टांगुलमपाटितम् ॥
 सत्त्वचं दन्तकाष्ठं स्यात्तदग्रेण प्रधावयेत् ॥ २ ॥
 उत्थाय नेत्रे प्रक्षाल्य शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥
 परिजप्य च मन्त्रेण भक्षयेदंतधावनम् ॥ ३ ॥
 आयुर्वलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च ॥
 ब्रह्म प्रज्ञां च भेदां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥ ४ ॥
 मासद्वयं श्रावणादि सर्वा नद्यो रजस्वलाः ॥
 तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः ॥ ५ ॥
 धनुःसहस्राण्यष्टौ तु गतिर्यासां न विद्यते ॥
 न ता नदीशब्दवहा गर्तास्ताः परिकीर्तिताः ॥ ६ ॥

उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च ॥
 चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते ॥ ७ ॥
 वेदाश्छन्दांसि सर्वाणि ब्रह्माद्याश्च दिवौकसः ॥
 जलार्थिनोऽथ पितरो मरीच्याद्यास्तथर्षयः ॥ ८ ॥
 उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्नानार्थब्रह्मवादिनः ॥
 पिपासूननुगच्छन्ति संतुष्टाः स्वशरीरिणः ॥ ९ ॥
 समागमस्तु यत्रैषां तत्र हत्यादयो मलाः ॥
 नूनं सर्वे क्षयं यान्ति किमुतैकं नदीरजः ॥ १० ॥
 ऋषीणां सिच्यमानानामन्तरालं समाश्रितः ॥
 संपिबेद्यः शरीरेण पर्षन्मुक्तजलच्छटाः ॥ ११ ॥
 विद्यादीन्ब्राह्मणः कामान्वरादीन्कन्यका ध्रुवम् ॥
 आमुष्मिकान्यपि सुखान्याप्नुयात्स न संशयः ॥ १२ ॥
 अशुच्यशुचिना दत्तमाममन्नं जलादिना ॥
 अनिर्गतदशाहास्तु प्रेता रक्षांसि भुञ्जते ॥ १३ ॥
 स्वर्धुन्यंभःसमानि स्युः सर्व्वाण्यम्भांसि भूतले ॥
 कूपस्थान्यपि सोमार्कग्रहणे नात्र संशयः ॥ १४ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ दशमः खण्डः ॥ १० ॥

इति कर्मप्रदीपे परिशिष्टे कात्यायनविरचिते प्रथमः प्रपाठकः १

एकादशः खंडः ११.

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि संध्योपासनकं विधिम् ॥
 अनर्हः कर्मणां विप्रः संध्याहीनो यतः स्मृतः ॥ १ ॥
 सव्ये पाणौ कुशान्कृत्वा कुर्यादाचमनक्रियाम् ॥
 ह्रस्वाः प्रचरणीयाः स्युः कुशा दीर्घास्तु बर्हिषः ॥ २ ॥
 दर्भाः पवित्रमित्युक्तमतः संध्यादिकर्मणि ॥
 सव्यः सोपग्रहः काय्यो दक्षिणः सपवित्रकः ॥ ३ ॥
 रक्षयेद्धारिणात्मानं परिक्षिप्य समंततः ॥
 शिरसो मार्जनं कुर्यात्कुशैः सोदकचिन्दुभिः ॥ ४ ॥
 प्रणवो भूर्भुवः स्वश्च सावित्री च तृतीयका ॥
 अब्दैवतं व्यृचं चैव चतुर्थमिति मार्जनम् ॥ ५ ॥
 भूराद्यास्तिस्र एवैता महाध्याहतयोऽव्ययाः ॥
 महर्जनस्तपः सत्यं गायत्री च शिरस्तथा ॥ ६ ॥
 आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरिति शिरः ॥
 प्रतिप्रतीकं प्रणवमुच्चारयेदन्ते च शिरसः ॥ ७ ॥
 एता एतां सहानेन तथैभिर्दशाभिः सह ॥
 विजपेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥ ८ ॥
 करेणोद्धृत्य सलिलं घ्राणमासज्य तत्र च ॥
 जपेदनायतासुर्वा त्रिः सकृद्वाधमर्षणम् ॥ ९ ॥

उत्थायार्कं प्रति प्रोहेत्रिकेणाञ्जलिनाम्भसः ॥
 ओं चित्रमृगद्वयेनाथ चोपतिष्ठेदनन्तरम् ॥ १० ॥
 संध्याद्वयेऽप्युपस्थानमेतदाहुर्मनीषिणः ॥
 मध्ये त्वह् उपर्यस्य विभ्राडादीच्छया जपेत् ॥ ११ ॥
 तदसंसक्तपार्ष्णिर्वा एकपादद्विपादापि ॥
 कुर्यात्कृताञ्जलिर्वापि ऊर्ध्वबाहुरथापि वा ॥ १२ ॥
 यत्र स्यात्कृच्छ्रभूयस्त्वं श्रेयसोऽपि मनीषिणः ॥
 भूयस्त्वं ब्रुवेत तत्र कृच्छ्राच्छ्रेयो ह्यवाप्यते ॥ १३ ॥
 तिष्ठेदुदयनारपूर्वा मध्यमामपि शक्तिः ॥
 आसीन उद्गमाच्चान्त्यां संध्यां पूर्वत्रिकं जपन् ॥ १४ ॥
 एतत्सन्ध्यात्रयं प्रोक्तं ब्राह्मणं यत्र तिष्ठति ॥
 यस्य नास्त्यादरस्तत्र न स ब्राह्मण उच्यते ॥ १५ ॥
 सन्ध्यालोपाच्च चकितः स्नानशीलश्च यः सदा ॥
 तं दोषा नोपसर्पन्ति गृह्मन्तामिवो रगाः ॥ १६ ॥
 वेदमादित आरभ्य शक्तितोऽहरहर्जपेत् ॥
 उपतिष्ठेत्ततो रुद्रं सर्वाद्रा वैदिकाज्जपात् ॥ १७ ॥

इति कार्त्त्यायनस्मृतावेकादशः खण्डः ॥ ११ ॥

द्वादशः खंडः १२.

अथाद्भिस्तर्पयेद्देवान्सतिलाभिः पितॄनपि ॥

नमस्ते तर्पयामीति आदावोमिति च ब्रुवन् ॥ १ ॥

ब्रह्माणं विष्णुं रुद्रं प्रजापतिं वेदान् देवांश्छन्दां-
स्पृषीन् पुराणाचार्यान् गंधर्वानितरान्मासं
संवत्सरं सावयवं देवीरप्सरसो देवानुगान्नागान्
सागरान्पर्वतान् सरितो दिव्यान्मनुष्यानितरा-
न्मनुष्यान् यक्षान्रक्षांसि सुपर्णान् पिशाचान्
पृथिवीमोषधीः पशून्वनस्पतीन् भूतग्रामं चतुर्वि-
धमित्युपवीत्यथ प्राचीनावीती यमं यमपुरुषान्
कव्यवाहमनलं सोमं यममर्यमणमग्निष्वात्तान्
सोमपीथान् बर्हिषदोऽथ स्वान् पितॄन् सकृत्
सकृन्मातामहांश्चोति प्रतिपुरुषमभ्यस्येज्ज्येष्ठ-
भ्रातृश्वशुरपितृव्यमातुलाश्च पितृवंशमातृवंशौ
ये चान्ये मत्त उदकमर्हन्तितांस्तर्पयामीत्यय
मवसानाञ्जालिरथ श्लोकाः ॥ २ ॥

छायां यथेच्छेच्छरदातपार्तः पयः पिपासुः क्षुधितोऽलमन्नम् ॥
बालो जनित्रीं जननी च बालं योषित्पुमांसं पुरुषश्च योषाम् ॥

तथा सर्वाणि भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥

विप्रादुदकमिच्छन्ति सर्वाभ्युदयकृद्धि सः ॥ ४ ॥

तस्मात्सदैव कर्त्तव्यमकुर्वन्महतैनसा ॥
युज्यन्ते ब्राह्मणः कुर्वन्विश्वमेतद्विभर्त्ति हि ॥ ५ ॥
अल्पत्वादोमकालस्य बहुत्वात्स्नानकर्मणः ॥
प्रातर्न तनुयात्स्नानं होमलोपो हि गर्हितः ॥ ६ ॥
इति कात्यायनस्मृतौ द्वादशः खण्डः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः खण्डः १३.

पश्चानामथ सत्राणां महतामुच्यते विधिः ॥
यैरिष्ट्वा सततं विप्रः प्राप्नुयात्सन्न शाश्वतम् ॥ १ ॥
देवभूतपितृब्रह्ममनुष्याणामनुक्रमात् ॥
महासत्राणि जानीयात्त एवेह महामखाः ॥ २ ॥
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ॥
होमो देवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ३ ॥
श्राद्धं वा पितृयज्ञः स्यात्पितृयो बलिरथापि वा ॥
यश्च श्रुतिजपः प्रोक्तो ब्रह्मयज्ञः स चोच्यते ॥ ४ ॥
स चार्वाकतर्पणात्कार्यः पश्चाद्वा प्रातराहुतेः ॥
वैश्वदेवावसाने वा नान्यत्रर्तौ निमित्तिकात् ॥ ५ ॥
अप्येकमाशयेद्विप्रं पितृयज्ञार्थसिद्धये ॥
अदैवं नास्ति चेदन्यो भोक्ता भोज्यमथापि वा ॥ ६ ॥
अप्युद्धृत्य यथाशक्ति किञ्चिदन्नं यथाविधि ॥
पितृभ्योऽथ मनुष्येभ्यो दद्यादहरहर्द्विजे ॥ ७ ॥

पितृभ्य इदमित्युक्त्वा स्वधाकारमुदीरयेत् ॥
 हन्तकारं मनुष्येभ्यस्तदर्थं निनयेदपः ॥ ८ ॥
 मुनिभिर्द्विरशनमुक्तं विप्राणां मर्त्यवासिनां नित्यम् ॥
 अहनि च तथा तमस्विन्यां सार्द्धं प्रथमयामान्तः ॥ ९ ॥
 सायंप्रातर्वैश्वदेवः कर्तव्यो बलिकर्म च ॥
 अनश्नतापि सततमन्यथा किल्बिषी भवेत् ॥ १० ॥
 अमुष्मै नम इत्येवं बलिदानं विधीयते ॥
 बलिदानप्रदानार्थं नमस्कारः कृतो यतः ॥ ११ ॥
 स्वाहाकारवषट्कारनमस्कारा दिवाकसाम् ॥
 स्वधाकारः पितॄणां च हन्तकारो नृणां कृतः ॥ १२ ॥
 स्वधाकारेण निनयेत्पित्र्यं बलिमतः सदा ॥
 तदप्येके नमस्कारं कुर्वन्ते नेति गौतमः ॥ १३ ॥
 नावराद्धर्या बलयो भवंति महामार्जारश्रवणप्रमाणात् ॥
 एकत्र चेदविकृष्टा भवंतीतरेतरसंसृक्ताश्च ॥ १४ ॥
 इति कात्यायनस्मृतौ त्रयोदशः खण्डः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः खण्डः १४.

अतस्तद्विन्यासो वृद्धिपिंडानिवोत्तरांश्चतुरो बली
 त्रिदध्यात् ॥ पृथिव्यै वायवे विश्वेभ्यो देवेभ्यः
 प्रजापतय इति सव्यत एतेषामेकैकमभ्य

ओषधिवनसतिभ्यश्चाकाशायकामायेत्येतेषामपि
मन्यव इन्द्राय वासुकये ब्रह्मण इत्येतेषामपि
रक्षोजनेभ्य इति सर्वेषां दक्षिणतः पितृभ्य इति
चतुर्दश नित्या आकाशप्रभृतयः काम्याः सर्वे-
षामुभयतोऽग्निः परिषेकः पिण्डवच्च पश्चिमा
प्रतिपत्तिः ॥ १ ॥

न स्यातां काम्यसामान्ये जुहोतिबालिकर्मणी ॥
पूर्वं नित्यविशेषोक्तं जुहोतिबालिकर्मणोः ॥ २ ॥
काममन्ते भवेयातां न तु मध्ये कदाचन ॥

नैकस्मिन्कर्मणि तते कर्मान्यदापतेद्यतः ॥ ३ ॥

अग्न्यादिर्गोतमाशुक्तो होमः शाकल एव च ॥

अनाहिताग्नेरप्येष युज्यते बालिभिः सह ॥ ४ ॥

स्पृष्ट्वा यो वीक्ष्यमाणोऽग्निं कृताञ्जलिपुटस्ततः ॥

वामदेव्यजपात्पूर्वं प्रार्थयेद्द्रविणोदयम् ॥ ५ ॥

आरोग्यमायुरैश्वर्यं धीर्धृतिः शं बलं यशः ॥

ओजो वर्चः पशून्वीर्यं ब्रह्म ब्राह्मण्यमेव च ॥ ६ ॥

सौभाग्यं कर्मसिद्धिश्च कुलज्यैष्ठ्यं सुकर्तृताम् ॥

सर्वमेतत्सर्वसाक्षिन्द्रविणोद रिरिहि नः ॥ ७ ॥

न ब्रह्मयज्ञादधिकोऽस्ति यज्ञो न तत्पदानात्परमस्ति दामम् ॥

सर्वे तदन्ताः क्रतवः सदानानान्तोदृष्टः कैश्चिदस्यद्विकस्य ॥ ८ ॥

ऋचः पठन्मधुपयःकुल्याभिस्तर्पयेत्सुरान् ॥
 घृतामृतौघकुल्याभिर्यजूंष्यपि पठन्सदा ॥ ९ ॥
 सामान्यपि पठन्सोमघृतकुल्याभिरन्वहम् ॥
 मेदःकुल्याभिरपि च अथर्वांगिरसः पठन् ॥ १० ॥
 मांसक्षीरोदनमधुकुल्याभिस्तर्पयेत्पठन् ॥
 वाकोवाक्यपुराणानि इतिहासानि चान्वहम् ॥ ११ ॥
 ऋगादीनाभन्यतममेतेषां शक्तितोऽन्वहम् ॥
 पठन्मध्वाज्यकुल्याभिः पितॄनपि चतर्पयत् ॥ १२ ॥
 ते तृप्तास्तर्पयंत्येनं जीवंतं प्रेतमेव च ॥
 कामचारी च भवति सर्वेषु सुरसन्नसु ॥ १३ ॥
 गुर्वप्येनो न तं स्पृशेत्पार्त्तिं चैव पुनाति सः ॥
 यं यं क्रतुं च पठति फलभाक्तस्य तस्य च ॥ १४ ॥
 वसुपूर्णा वसुमती त्रिर्दानफलमाप्नुयात् ॥
 ब्रह्मयज्ञादपि ब्रह्मदानमेवातिरिच्यते ॥ १५ ॥
 इति कात्यायनस्मृतौ चतुर्दशः खण्डः ॥ १४ ॥

पंचदशः खण्डः १५.

ब्रह्मणे दक्षिणा देया यत्र या परिकीर्तिता ॥
 कर्मातिऽनुच्यमानापि पूर्णपात्रादिका भवेत् ॥ १ ॥
 यावता बहुभोक्तुस्तु तृप्तिः पूर्णेन विद्यते ॥

नावराद्धर्चमतः कुर्यात्पूर्णपात्रमिति स्थितिः ॥ २ ॥
 विदध्याद्धौत्रमन्यश्चेद्दक्षिणार्द्धहरो भवेत् ॥
 स्वयं चेदुभयं कुर्यादन्यस्मै प्रतिपादयेत् ॥ ३ ॥
 कुलार्त्विजमधीयानं सन्निकृष्टं तथा गुरुम् ॥
 नातिक्रमेत्सदा दित्सन्य इच्छेदात्मनो हितम् ॥ ४ ॥
 अहमस्मै ददामीति एवमाभाष्य दीयते ॥
 नैतावपृष्ट्वा ददतः पात्रेऽपि फलमस्ति हि ॥ ५ ॥
 दूरस्थाभ्यामपि द्वाभ्यां प्रदाय मनसा वरम् ॥
 इतरेभ्यस्ततो देयादेष दानविधिः परः ॥ ६ ॥
 सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणो यो व्यतिक्रमेत् ॥
 यद्ददाति तमुल्लंघ्य ततः स्तेयेन युज्यते ॥ ७ ॥
 यस्य त्वेकगृहे मूर्खो दूरस्थश्च गुणान्वितः ॥
 गुणान्विताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥ ८ ॥
 ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते ॥
 ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य नहि भस्मनि हूयते ॥ ९ ॥
 आज्यस्थाली च कर्तव्या तैजसद्रव्यसंभवा ॥
 महीमयी वा कर्तव्या सर्वास्वाज्याहुतीषु च ॥ १० ॥
 आज्यस्थाल्याः प्रमाणं तु यथाकामं तु कारयेत् ॥
 सुदृढामव्रणां भद्रमाज्यस्थालीं प्रचक्षते ॥ ११ ॥
 तिर्यगूर्ध्वं समिन्मात्रा दृढा नातिबृहन्मुखी ॥

मृन्मय्यौदुंबरी वापि चरुस्थाली प्रशस्यते ॥ १२ ॥
 स्वशाखोक्तः प्रसुस्विन्नो हृदग्धोऽकठिनः शुभः ॥
 न चातिशिथिलः पाच्यो न चरुश्चारसस्तथा ॥ १३ ॥
 इध्मजातीयमिध्मार्धप्रमाणं मेक्षणं भवेत् ॥
 वृत्तं चांगुष्ठपृथ्वग्रमघदानक्रियाक्षमम् ॥ १४ ॥
 एषैव दर्वी यस्तत्र विशेषस्तमहं ब्रुवे ॥
 दर्वी द्यंगुलपृथ्वग्रा तुरीयोनं तु मेक्षणम् ॥ १५ ॥
 मुसलोच्छ्रखले वार्धे स्वायते सुदृढे तथा ॥
 इच्छाप्रमाणे भवतः शूर्पं वैणवमेव च ॥ १६ ॥
 दक्षिणं वामतो बाह्यमात्माभिमुखमेव च ॥
 करं करस्य कुर्वीत करणेऽन्यच्च कर्मणः ॥ १७ ॥
 कृत्वाग्न्यभिमुखौ पाणी स्वस्थानस्थौ सुसंयतौ ॥
 प्रदक्षिणं तथाक्षीनः कुर्यात्परिसमूहनम् ॥ १८ ॥
 बहुमात्रा परिधय ऋजवः सत्त्वचोऽव्रणाः ॥
 त्रयो भवन्ति शीर्णाग्रा एकेपां तु चतुर्दिशम् ॥ १९ ॥
 प्रागग्रावलिभिः पश्चादुदग्रमथापरम् ॥
 न्यसेत्परिधिमन्यं चेदुदग्रः सपूर्वतः ॥ २० ॥
 यथोक्तवस्त्वसंपत्तौ ग्राह्यं तदनुकारि यत् ॥
 यवानामिव गोधूमा ब्रीहीणामिव शालयः ॥ २१ ॥
 इति कात्यायनस्मृतौ पंचदशः खण्डः ॥ १५ ॥

षोडशः खंडः १६.

पिंडान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते ॥

वासरस्य तृतीयांशे नातिसन्ध्यासमीपतः ॥ १ ॥

यदा चतुर्दशी यामं तुरीयमनुपूरयेत् ॥

अमावास्या क्षीयमाणा तदैव श्राद्धमिष्यते ॥ २ ॥

यदुक्तं यदहस्त्वेव दर्शनं नैति चन्द्रमाः ॥

अनयापेक्षया ज्ञेयं क्षीणे राजनि चेत्पि ॥ ३ ॥

यच्चोक्तं दृश्यमानेऽपि तच्चतुर्दश्यपेक्षया ॥

अमावास्यां प्रतीक्षेत तदन्ते वापि निर्व्वपेत् ॥ ४ ॥

अष्टमेशे चतुर्दश्याः क्षीणो भवति चन्द्रमाः ॥

अमावास्याष्टमांशे च पुनः किल भवेदणुः ॥ ५ ॥

आग्रहायण्यमावास्या तथा ज्येष्ठस्य या भवेत् ॥

विशेषमाभ्यां ब्रुवते चन्द्रचारविदो जनाः ॥ ६ ॥

अत्रेन्दुराद्ये प्रहरेऽवतिष्ठते चतुर्थभागोनकलावशिष्टः ॥

तदन्त एव क्षयमेति कृत्स्नमेवं ज्योतिश्चक्रविदो वदन्ति ७

यस्मिन्नब्देद्वादशैकश्चयव्यस्तस्मिंस्तृतीययापरिदृश्योनोपजायते

एवं चारं चन्द्रमसो विदित्वा क्षीणे तस्मिन्नपराह्णे च दद्यात् ८

सम्मिश्रा या चतुर्दश्या अमावास्या भवेत्कचित् ॥

खर्वितां तां विदुः केचिद्रताध्वामिति चापरे ॥ ९ ॥

वर्द्धमानाममावास्यां लभेच्चेदपरेऽहनि ॥

यामांस्त्रीनधिकान्वापि पितृयज्ञस्ततो भवेत् ॥ १० ॥

पक्षादांवेव कुर्वीत सदा पक्षादिकं चरुम् ॥

पूर्वाह्ण एव कुर्वन्ति विद्वेऽप्यन्ये मनीषिणः ॥ ११ ॥

सपितुः पितृकृत्येषु ह्यधिकारो न विद्यते ॥

न जीवन्तमतिक्रम्य किञ्चिद्दद्यादिति श्रुतिः ॥ १२ ॥

पितामहे जीवति च पितुः प्रेतस्य निर्व्वपेत् ॥

पितुस्तस्य च वृत्तस्य जीवेच्चेत्प्रपितामहः ॥ १३ ॥

पितुः पितुः पितुश्चैव तस्यापि पितुरेव च ॥

कुर्व्यात्पिण्डत्रयं यस्य संस्थितः प्रपितामहः ॥ १४ ॥

जीवन्तमतिदद्याद्वा प्रेतायात्रोदके द्विजः ॥

पितुः पितृभ्यो वा दद्यात्स पितेत्यपरा श्रुतिः ॥ १५ ॥

पितामहः पितुः पश्चात्पंचत्वं यदि गच्छति ॥

पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं श्राद्धषोडशम् ॥ १६ ॥

नैतत्पौत्रेण कर्तव्यं पुत्रवांश्चेत्प्रितामहः ॥

पितुः सपिण्डनं कृत्वा कुर्व्यान्मासानुमासिकम् ॥ १७ ॥

असंस्कृतौ न संस्कार्यौ पूर्वौ पौत्रप्रपौत्रकैः ॥

पितरं तत्र सत्कुर्यादिति कार्यापनोब्रवीत् ॥ १८ ॥

पापिष्ठमपि शुद्धेन शुद्धं पापकृतापि वा ॥

पितामहेन पितरं संस्कुर्यादिति निश्चयः ॥ १९ ॥

ब्राह्मणादिहते ताते पतिते संगवर्जिते ॥
व्युत्क्रमाच्च मृते देयं येभ्य एव ददात्यसौ ॥ २० ॥
मातुः सपिंडीकरणं पितामह्या सहोदितम् ॥
यथोक्तैर्नैव कल्पेन पुत्रिकाया न चेत्सुतः ॥ २१ ॥
न योषिद्वयः पृथग्दद्यादवसानदिनादृते ॥
स्वभर्तृपिंडमात्राभ्यस्तृप्तिरासां यतः स्मृता ॥ २२ ॥
मातुः प्रथमतः पिंडं निर्व्वपेत्पुत्रिकासुतः ॥
द्वितीयं तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तु पितुः पितुः ॥ २३ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ षोडशः खण्डः ॥ १६ ॥

सप्तदशः खंडः १७.

पुरतो यात्मनः कुर्यात्सा पूर्वा परिकीर्त्यते ॥
मध्यमा दक्षिणेनास्यास्तदक्षिणत उत्तमा ॥ १ ॥
वाय्वग्निदिङ्मुखान्तास्ताः कार्य्याः सार्द्धांगुलान्तराः ॥
तीक्ष्णान्ता यवमध्याश्च मध्यं नाव इवोत्किरेत् ॥ २ ॥
शंकुश्च खादिरः कार्य्यो रजतेन विभूषितः ॥
शंकुश्चैवोपवेशश्च द्वादशांगुल इष्यते ॥ ३ ॥
अग्न्याशाग्रैः कुशैः कार्य्य कर्षूणां स्तरणं घनैः ॥
दक्षिणान्तं तदग्रैस्तु पितृयज्ञे परिस्तरेत् ॥ ४ ॥

स्वगरं सुरभि ज्ञेयं चंदनादिविलेपनम् ॥
 सौवीरांजनमित्युक्तं पिंजलीनां यदंजनम् ॥ ५ ॥
 संस्तरे सर्वमासाद्य यथावदुपयुज्यते ॥
 देवपूर्व्वं ततः श्राद्धमत्वरः शुचिरारभेत् ॥ ६ ॥
 आसनाद्यर्घपर्यन्तं वसिष्ठेन यथोरितम् ॥
 कृत्वा कर्माथ पात्रेषु उक्तं दद्यात्तिलोदकम् ॥ ७ ॥
 तूष्णीं पृथगपो दत्त्वा मन्त्रेण तु तिलोदकम् ॥
 गन्धोदकं च दातव्यं सन्निकर्षक्रमेण तु ॥ ८ ॥
 आसुरेण तु पात्रेण यस्तु दद्यात्तिलोदकम् ॥
 पितरस्तभ्य नाश्रन्ति दशवर्षाणि पंच च ॥ ९ ॥
 कुलालचक्रनिष्पन्नमसुरं मृन्मयं स्मृतम् ॥
 तदेव हस्तघटितं स्थाल्यादि दैविकं भवेत् ॥ १० ॥
 गंधान्ब्राह्मणसात्कृत्वा पुष्पाण्यनुभवानि च ॥
 धूपं चैवानुपूर्व्वेण ह्यग्नौ कुर्याद्विनन्तरम् ॥ ११ ॥
 अग्नौ ऋणहोमश्च कर्तव्य उपवीतिना ॥
 प्राङ्मुखेनैव देवेभ्यो जुहोतीति श्रुतिः श्रुता ॥ १२ ॥
 अपसव्येन वा कायौ दक्षिणाभिमुखेन च ॥
 निरूप्य हविरन्यस्मा अन्यस्मै नहि हूयते ॥ १३ ॥
 स्वाहा कुर्यान्न चात्रान्ते न चैव जुहुयाद्धविः ॥
 स्वाहाकारेण हुत्वाऽग्नौ पश्चान्मंत्रं समापयेत् ॥ १४ ॥

पित्र्ये यः पांक्तिमूर्द्धन्यस्तस्य पाणावभिमिमात् ॥
 हुत्वा मंत्रवदन्येषां तूष्णीं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥ १५ ॥
 नो कुर्याद्धोममंत्राणां पृथगादिषु कुत्रचित् ॥
 अन्येषां चाविकृष्टानां कालेनाचमनादिना ॥ १६ ॥
 सव्येन पाणिनेत्येवं यदत्र समुदीरितम् ॥
 परिग्रहणमात्रं तत्सव्यस्यादिशति व्रतम् ॥ १७ ॥
 पिंजल्याद्यभिसंगृह्य दक्षिणेनेतरात्करात् ॥
 अन्वारभ्य च सव्येन कुर्यादुल्लेखनादिकम् ॥ १८ ॥
 यावदर्थमुपादाय हविषोऽर्भकमर्भकम् ॥
 चरुणा सह सन्नीय पिंडान्दातुमुपक्रमेत् ॥ १९ ॥
 पितुरुत्तरकर्णशो मध्यमे मध्यमस्य तु ॥
 दक्षिणे तत्पितुश्चैव पिण्डान्पर्वणि निर्वपेत् ॥ २० ॥
 वाममावर्तनं केचिदुदगतं प्रचक्षते ॥
 सर्वं गौतमशांडिल्यौ शांडिल्यायन एव च ॥ २१ ॥
 आवृत्य प्राणमायम्य पितृन्ध्यायन्यथार्थतः ॥
 जपंस्तेनैव चावृत्य ततः प्राणं प्रमोचयेत् ॥ २२ ॥
 शाकं च फाल्गुनाष्टम्यां स्वयं परम्यपि वा पचेत् ॥
 यस्तु शाकादिको होमः कार्योऽपूपाष्टकावृतः ॥ २३ ॥
 अन्वष्टक्यं मध्यमायामिति गोभिलगौतमौ ॥
 वार्कखण्डिश्च सर्वासु कौत्सो मेनेऽष्टकासु च ॥ २४ ॥

स्थालीपाकं पशुस्थाने कुर्याद्यद्यनुकल्पितम् ॥
श्रपयेत्तं सवत्सायास्तरुण्या गोपयस्यनु ॥ २५ ॥

इति कात्यायनस्मृतौ सप्तदशः खंडः ॥ २५ ॥

अष्टादशः खंडः १८.

सायमादिप्रातरंतमेकं कर्म प्रचक्षते ॥
दर्शान्तं पौर्णमास्याद्यमेकमेव मनीषिणः ॥ १ ॥
ऊर्ध्वं पूर्णाहुतेर्दर्शः पौर्णमासोऽपि वाग्निमः ॥
य आयाति स होतव्यः स एवादिरिति श्रुतिः ॥ २ ॥
ऊर्ध्वं पूर्णाहुतेः कुर्यात्सायं होमादनंतरम् ॥
वैश्वदेवं तु पाकांते बलिकर्मसमन्वितम् ॥ ३ ॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चादभिरूपान्स्वशक्तितः ॥
यजमानस्ततोऽश्नीयादिति कात्यायनोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥
वैवाहिकाग्नौ कुर्वीत सायंप्रातस्त्वतंद्रितः ॥
चतुर्थीकर्म कृत्वैतदेतच्छाश्वत्यायनेर्मतम् ॥ ५ ॥
ऊर्ध्वं पूर्णाहुतेः प्रातर्हुत्वा तां सायमाहुतिम् ॥
प्रातर्होमस्तदैव स्यादेष एवोत्तरो विधिः ॥ ६ ॥
पौर्णमास्यत्यये हव्यं होता वा यदहर्भवेत् ॥
तदहर्जुहुयादेवममावास्यात्ययेऽपि च ॥ ७ ॥

अहूयमानेऽनश्नंश्चेन्नयेत्कालं समाहितः ॥

सम्पन्ने तु यथा तत्र हूयते यदिहोच्यते ॥ ८ ॥

आहुत्यः परिसंख्याय पात्रे कृत्वाहुतीः सकृत् ॥

मंत्रेण विधिवद्भुत्वाऽधिकमेवापरा अपि ॥ ९ ॥

यत्र व्याहृतिमिहोमः प्रायश्चित्तात्मको भवेत् ॥

चतस्रस्तत्र विज्ञेयाः स्त्रीपाणिग्रहणे यथा ॥ १० ॥

अप्यनाज्ञातमित्येषा प्राजापत्यापि बाहुतिः ॥

होतव्याऽत्र विकल्पोऽयं प्रायश्चित्तविधिः स्मृतः ॥ ११ ॥

यद्यग्निरग्निनान्येन संभवेदाहितः क्वचित् ॥

अग्नये विविचय इति जुहुयाद्वा घृताहुतिम् ॥ १२ ॥

अग्नयेऽप्सुमते चैव जुहुयाद्वै घृतेन चेत् ॥

अग्नये शुचये चैव जुहुयाच्च दुरग्निना ॥ १३ ॥

गृहदाहाग्निनाऽग्निस्तु यष्टव्यः क्षामवान्द्विजैः ॥

दावाग्निना च संसर्गे हृदयं यदि तप्यते ॥ १४ ॥

द्विभूतो यदि संसृज्येत्संसृष्टमुपशामयेत् ॥

असंसृष्टं जागरयेद्द्विरिहोमैवमुक्तवान् ॥ १५ ॥

न स्वेऽग्नावन्यहोमः स्यान्मुक्त्वैकां समिदाहुतिम् ॥

स्वर्गवासक्रियार्थाश्च यावन्नासौ प्रजायते ॥ १६ ॥

अग्निस्तु नामधेयादौ होमे सर्वत्र लौकिकः ॥

नहि पित्रा समानीतः पुत्रस्य भवति क्वचित् ॥ १७ ॥

यस्याग्नावन्यहोमः स्यात्स वैश्वानरदैवतम् ॥
 चरुं निरुप्य जुहुयात्प्रायश्चित्तं तु तस्य तत् ॥ १८ ॥
 परेणाग्नौ हुते स्वार्थं परस्याग्नौ हुत स्वयम् ॥
 पितृयज्ञात्यये चैव वैश्वदेवद्वयस्य च ॥ १९ ॥
 अनिष्ट्वा नवयज्ञेन नवान्नप्राशने तथा ॥
 भोजने पतितान्नस्य चरुर्वैश्वानरो भवेत् ॥ २० ॥
 स्वपितृभ्यः पिता दद्यात्सुतसंस्कारकर्म्मसु ॥
 पिंडिनोद्धहनात्तेषां तस्याभावे तु तत्क्रमात् ॥ २१ ॥
 भूतिप्रवाचने पत्नी यद्यसन्निहिता भवेत् ॥
 रजोरोगादिना तत्र कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः ॥ २२ ॥
 महानसेऽन्नं या कुर्यात्स्रवर्णां तां प्रवाचयेत् ॥
 प्रणवाद्यपि वा कुर्यात्कात्यायनवचो यथा ॥ २३ ॥
 यज्ञवास्तुनि मुष्ट्यां च स्तंबे दर्भवटौ तथा ॥
 दर्भसंख्या न विहिता विष्टरास्तरणेषु च ॥ २४ ॥

इति कात्यायनस्मृतावष्टादशः खण्डः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः खंडः १९.

निक्षिप्याग्निं स्वदारेषु परिकल्प्योत्विजं तथा ॥
 प्रवसेत्कार्यवान्विप्रो वृथैव न चिरं क्वचित् ॥ १ ॥

मनसा नैत्यकं कर्म प्रवसन्नप्यतंद्रितः ॥
 उपविश्य शुचिः सर्वं यथाकालमनुव्रजेत् ॥ २ ॥
 पत्न्या चाप्यवियोगिन्या शुश्रूष्योऽभिर्विनीतया ॥
 सौभाग्यवित्तावैधव्यकामया भर्तृभक्तया ॥ ३ ॥
 या वा स्याद्दीरसूरासामाज्ञासंपादिनी प्रिया ॥
 दक्षा प्रियंवदा शुद्धा तामत्र विनियोजयेत् ॥ ४ ॥
 दिनत्रयेण वा कर्म यथाज्यैष्ठ्यं स्वशक्तितः ॥
 विभज्य सह वा कुर्युर्यथाज्ञानं च शास्त्रवत् ॥ ५ ॥
 स्त्रीणां साभाग्यतो ज्यैष्ठ्यं विद्ययैव द्विजन्मनाम् ॥
 नहि ख्यात्या न तपसा भर्ता तुष्यति योषिताम् ॥ ६ ॥
 भर्तुरादेशवर्तिन्या यथोमा बहुभिर्व्रतैः ॥
 अमिश्र तोषितोऽमुत्र सा स्त्री सौभाग्यमाप्नुयात् ॥ ७ ॥
 विनयावनतापि स्त्री भर्तुर्या दुर्भगा भवेत् ॥
 अमुत्रोमाभिभर्तृणामवज्ञातिः कृता तया ॥ ८ ॥
 श्रोत्रियं सुभगां गां च अमिममिचितिं तथा ॥
 प्रातरुत्थाय यः पश्येदापद्भ्यः स प्रमुच्यते ॥ ९ ॥
 पापिष्ठं दुर्भगामन्यं नम्रमुत्कृत्तनासिकम् ॥
 प्रातरुत्थाय यः पश्येत्स कलेरुपयुज्यते ॥ १० ॥
 पतिमुल्लंघ्य मोहात्स्त्री किं किं न नरकं व्रजेत् ॥
 कृच्छ्रान्मनुष्यतां प्राप्य किं किं दुःखं न विन्दति ॥ ११ ॥

पतिशुश्रूषयैव स्त्री कान्न लोकान्समश्नुते ॥

दिवः पुनरिहायाता सुखानामम्बुधिर्भवेत् ॥ १२ ॥

सदारोऽन्यान्पुनर्दारांकथंचित्कारणांतरात् ॥

य इच्छेदग्निमान्कर्तुं क होमोऽस्य विधीयते ॥ १३ ॥

स्वेऽप्रावेव भवेद्धोमो लौकिके न कदाचन ॥

न ह्याहिताग्नेः स्वं कर्मालौकिकेऽग्नौ विधीयते ॥ १४ ॥

षडाहुतिकमन्येन जुहुयाद् ध्रुवदर्शनात् ॥

न ह्यात्मनोऽर्थे स्यात्तावद्यावन्न परिणीयते ॥ १५ ॥

पुरस्तात्त्रिविकल्पं यत्प्रायश्चित्तमुदाहृतम् ॥

तत्षडाहुतिकं शिष्टैर्यज्ञविद्भिः प्रकीर्तितम् ॥ १६ ॥

इति कात्यायनस्मृतावेकोनविंशः खण्डः ॥ १९ ॥

इति कात्यायनविरचिते कर्मप्रदीपे द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥

विंशः खण्डः २०.

असमक्षं तु दंपत्योर्होतव्यं नर्त्विगादिना ॥

द्वयोरप्यसमक्षं हि भवेद्धृतमनर्थकम् ॥ १ ॥

विहायामि सभार्यश्चेत्प्रीमामुल्लंघ्य गच्छति ॥

होमकाश्रित्यये तस्य पुनराधानमिष्यते ॥ २ ॥

अरण्योः क्षयनाशमिदोहेष्वग्निं समाहितः ॥

पालयेदुपशान्तेऽस्मिन्पुनराधानमिष्यते ॥ ३ ॥

ज्येष्ठा चेद्बहुभार्य्यस्य अतिचारेण गच्छति ॥

पुनराधानमत्रैक इच्छन्ति न तु गौतमः ॥ ४ ॥

दाहयित्वाग्निमिभार्य्या सदृशीं पूर्वसंस्थिताम् ॥

पात्रैश्चाथामिमादध्यात्कृतदारोऽविलंबितः ॥ ५ ॥

एवंवृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारणीम् ॥

दाहयित्वाग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित् ॥ ६ ॥

द्वितीयां चैव यः पत्नीं दहेद्वैतानिकामिभिः ॥

जीवत्यां प्रथमायां तु ब्रह्मघ्नेन समो हि सः ॥ ७ ॥

मृतायां तु द्वितीयायां योऽग्निहोत्रं समुत्सृजेत् ॥

ब्रह्मोज्झितं विजानीयाद्यश्च कामात्समुत्सृजेत् ॥ ८ ॥

मृतायामपि भार्य्यायां वैदिकामिं नहि त्यजेत् ॥

उपाधिनापि तत्कर्म यावज्जीवं समापयेत् ॥ ९ ॥

रामोऽपि कृत्वा सौवर्णीं सीतां पत्नीं यशस्विनीम् ॥

ईजे यज्ञैर्बहुविधैः सह भ्रातृभिरच्युतः ॥ १० ॥

यो दहेदग्निहोत्रेण स्वेन भार्य्या कथंचन ॥

सा स्त्री संपद्यते तेन भार्या वास्य पुमान्भवेत् ॥ ११ ॥

भार्य्या मरणमापन्ना देशांतरगतापि वा ॥

अधिकारी भवेत्पुत्रो महापातकिनि द्विजे ॥ १२ ॥

मान्या चेन्म्रियते पूर्वं भार्या पतिविमानिता ॥

त्रीणि जन्मानि सा पुंस्त्वं पुरुषः स्त्रीत्वमर्हति ॥ १३ ॥

पूर्वैव योनिः पूर्वावृत्पुनराधानकर्मणि ॥
 विशेषोऽत्राग्न्युपस्थानमाज्याहुत्यष्टकं तथा ॥ १४ ॥
 कृत्वा व्याहृतिहोमान्तमुपतिष्ठेत् पावकम् ॥
 अध्यायः केवलाग्नेयः कस्तेजाभिरमानसः ॥ १५ ॥
 अग्निमीडे अग्नआयाह्यमआयाहि वीतये ॥
 तिस्रोऽग्निज्योतिरित्यग्निं दूतमग्नेमृडेति च ॥ १६ ॥
 इत्यष्टावाहुतीर्हुत्वा यथाविध्यनुपूर्वशः ॥
 पूर्णाहुत्यादिकं सर्वमन्यत्पूर्ववदाचरेत् ॥ १७ ॥
 अरण्योरल्पमप्यङ्गं यावात्तिष्ठति पूर्वयोः ॥
 न तावत्पुनराधानमन्यारण्योर्विधीयते ॥ १८ ॥
 विनष्टसुवसुवं न्युब्जं प्रत्यवस्थलमुदच्चिषि ॥
 प्रत्यगग्रं च मुशलं प्रहरेज्जातवेदसि ॥ १९ ॥
 इति कात्यायनस्मृतौ विंशतितमः खण्डः ॥ २० ॥

एकविंशः खण्डः २१.

स्वयं होमाप्रमर्थस्य समीपमुपसर्पणम् ॥
 तत्राप्यशक्तस्य ततः शयनाच्चोपवेशनम् ॥ १ ॥
 हुतापां सायमाहुत्यां दुर्बलश्चेद् गृही भवेत् ॥
 प्रातर्होमस्तदेव स्याज्जीवेच्चैच्छः पुनर्न वा ॥ २ ॥
 दुर्बलं स्नापयित्वा तु शुद्धचैलाभिसंवृतम् ॥
 दक्षिणाशिरसं भूमौ बहिष्मत्यां निवेशयेत् ॥ ३ ॥

घृतेनाभ्यक्तमाप्लाव्य सवस्त्रमुपवीतिनम् ॥
 चंदनोक्षितसर्वांगं सुमनोभिर्विभूषितम् ॥ ४ ॥
 हिरण्यशकलान्यस्य क्षिप्त्वा छिद्रेषु सप्तसु ॥
 मुखेष्वथापिधायैनं निर्हरेयुः सुतादयः ॥ ५ ॥
 आमपात्रेऽन्नमादाय प्रेतमग्निपुरःसरम् ॥
 एकोऽनुगच्छेत्तस्यार्द्धमर्द्धं पर्य्युत्सृजेद्भुवि ॥ ६ ॥
 अर्द्धमादहनं प्राप्त आसीनो दक्षिणामुखः ॥
 सव्यं जान्वाच्य शनकैः सतिलं पिण्डदानवत् ॥ ७ ॥
 अथ पुत्रादिराप्लुत्य कुर्याद्धारुचयं महत् ॥
 भूपदेशे शुचौ देशे पश्चाच्चित्यादिलक्षणे ॥ ८ ॥
 तत्रोत्तानं निपात्यैनं दक्षिणाशिरसं मुखे ॥
 आज्यपूर्णां सुचं दद्याद्दक्षिणां नसि सुवम् ॥ ९ ॥
 पादयोरधरां प्राचीमरणीमुरसीतराम् ॥
 पार्श्वयोः शूर्पचमसे सव्यदक्षिणयोः क्रमात् ॥ १० ॥
 मुसलेन सह न्युब्जमन्तरूर्वोरुलूखलम् ॥
 चात्रे विलीकमत्रैवमनश्रुनयनो विभीः ॥ ११ ॥
 अपसव्येन कृत्वैतद्वाग्यतः पितृदिङ्मुखः ॥
 अथार्घ्यं सव्यजान्वक्तो दद्याद्दक्षिणतः शनैः ॥ १२ ॥
 अस्मात्त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः ॥
 असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति यजुरीरयन् ॥ १३ ॥

एव गृहपतिर्दग्धः सर्वं तरति दुष्कृतम् ॥

यश्चैनं दाहयेत् सोऽपि प्रजां प्राप्नोत्यनिन्दिताम् ॥ १४ ॥

यथा स्वायुधधृक् पांथो ह्यरण्यान्यपि निर्भयः ॥

अतिक्रम्यात्मनोऽभीष्टं स्थानमिष्टं च विन्दति ॥ १५ ॥

एवमेषोऽग्निमान्यज्ञपात्रायुधविभूषितः ॥

लोकानन्यानतिक्रम्य परं ब्रह्मैव विन्दति ॥ १६ ॥

इति कात्यायनस्मृतावेकविंशतितमः खण्डः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः खण्डः २२.

अथानवेक्ष्य च चितां सर्वं एव शवस्पृशः ॥

ज्जात्वा सचैलमाचम्य दद्यात्स्योदकं स्थले ॥ १ ॥

गोत्रनामानुवादान्ते तर्पयामीत्यनंतरम् ॥

दक्षिणाग्रान्कुशान्कृत्वा सतिलं तु पृथक्पृथक् ॥ २ ॥

एवं कृतोदकान्सम्यक्सर्वाञ्छाद्रलसंस्थितान् ॥

आप्लुत्य पुनराचान्तान्वदेयुस्तेऽनुयायिनः ॥ ३ ॥

मा शोकं कुरुतानित्ये सर्वास्मिन्प्राणधर्माणि ॥

धर्मं कुरुत यत्नेन यो वः सह गमिष्यति ॥ ४ ॥

मानुष्ये कदलीस्तंभे निःसारे सारमार्गणम् ॥

यः करोति स संमूढो जलबुद्बुदसन्निभे ॥ ५ ॥

गन्त्री वसुमती नाशमुदधिर्देवतानि च ॥

केन प्रख्यः कथं नाशं मर्त्यलोको न यास्यति ॥ ६ ॥

पंचधा संभृतः कायो यदि पंचत्वमागतः ॥
 कर्मभिः स्वशरीरोत्थैस्तत्र का परिदेवना ॥ ७ ॥
 सर्वे क्षयांता निचयाः पतनांताः समुच्छ्रयाः ॥
 संयोगा विप्रयोगांता मरणांतं हि जीवितम् ॥ ८ ॥
 श्लेष्माश्रु बांधवैर्मुक्तं प्रेतो भुंक्ते यतोऽवशः ॥
 अतो न रोदितव्यं हि क्रियाः कार्याः प्रयत्नतः ॥ ९ ॥
 एवमुक्त्वा व्रजेयुस्ते गृह्णाल्लघुपुःसराः ॥
 स्नानाभिस्पर्शनाज्याशैः शुध्येयुरितरेतरैः ॥ १० ॥
 इति कात्यायनस्मृतौ द्वाविंशतितमः खण्डः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः खंडः २३.

एवमेवाहिताग्नेस्तु पात्रन्यासादिकं भवेत् ॥
 कृष्णाजिनादिकश्चात्र विशेषः सूत्रचोदितः ॥ १ ॥
 विदेशमरणेऽस्थानि ह्याहुत्याभ्यज्य सर्पिषा ॥
 दाहयेदूर्णयाऽच्छाद्य पात्रन्यासादि पूर्ववत् ॥ २ ॥
 अस्थनामलाभे पर्णानि सकलान्युक्तयावृता ॥
 भर्जयेदस्थिसंख्यानि ततः प्रभृति सूतकम् ॥ ३ ॥
 महापातकसयुंक्तो दैवात्स्यादग्निमान्यदि ॥
 पुत्रादिः पालयेदग्नीन्युक्त आदोषसंक्षयात् ॥ ४ ॥
 प्रायश्चित्तं न कुर्याद्यः कुर्वन्वा म्रियते यदि ॥
 गृह्यं निर्वापयेच्छ्रौतमप्स्वस्येत्सपरिच्छदम् ॥ ५ ॥

सादयेदुभयं वाप्सु ह्यद्भ्योऽमिरभवद्यतः ॥
 पात्राणि दद्याद्विप्राय दहेदप्स्वेष वा क्षिपेत् ॥ ६ ॥
 अनयैवावृता नारी दग्धप्राया व्यवस्थिता ॥
 अग्निप्रदानमंत्रोऽस्या न प्रयोज्य इति स्थितिः ॥ ७ ॥
 अग्निनैव दहेद्भार्या स्वतंत्रा पतिता न चेत् ॥
 तदुत्तरेण पात्राणि दाहयेत्पृथगतिके ॥ ८ ॥
 अपरेद्युस्तृतीये वा अस्थनां संचयनं भवेत् ॥
 यस्तत्र विधिरादिष्ट ऋषिभिः सोऽधुनोच्यते ॥ ९ ॥
 स्नानांतं पूर्ववत्कृत्वा गव्येन पयसा ततः ॥
 सिंचेदस्थानि सर्वाणि प्राचीनाशीत्यभाषयन् ॥ १० ॥
 शमीपलाशशाखाभ्यामुद्धृत्योद्धृत्य धूमनः ॥
 आज्यनाभ्यज्य गव्येन सेचयेद्गंधवारिणा ॥ ११ ॥
 मृत्पात्रसंपुटं कृत्वा सूत्रेण परिवेष्ट्य च ॥
 श्वध्वं खात्वा शुचौ भूमौ निखनेदक्षिणामुखः ॥ १२ ॥
 पूरयित्वा घटं पंकपिण्डशैवालसंयुतम् ॥
 दत्त्वोपरि समं शेषं कुर्यात्पूर्वाह्निकर्मणा ॥ १३ ॥
 एवमेवागृहीताग्नेः प्रेतस्य विधिरिष्यते ॥
 स्त्रीणामिवाग्निदानं स्यादथातोऽनुक्तमुच्यते ॥ १४ ॥
 इति कात्यायनस्मृतौ त्रयोविंशतितमः खण्डः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः खण्डः २४.

सूतके कर्मणां त्यागः संध्यादीनां विधीयते ॥
 होमः श्रौते तु कर्तव्यः शुष्कान्नेनापि वा फलैः ॥ १ ॥
 अकृतं होमयेत्स्मात् तदभावे कृताकृतम् ॥
 कृतं वा होमयेदन्नमन्वारंभविधानतः ॥ २ ॥
 कृतमोदनसक्त्वादि तंडुलादि कृताकृतम् ॥
 ब्रीह्यादि चाकृतं प्रोक्तमिति हव्यं त्रिधा बुधैः ॥ ३ ॥
 सूतके च प्रवासेषु चाशक्तौ श्राद्धभोजने ॥
 एवमादिनिमित्तेषु होमयेदिति योजयेत् ॥ ४ ॥
 न त्यजेत्सूतके कर्म ब्रह्मचारी स्वकं क्वचित् ॥
 न दीक्षणात् परं यज्ञे न कृच्छ्रादि तपश्चरन् ॥ ५ ॥
 पितृभ्योऽपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित् ॥
 अशौचं कर्मणोऽस्ते स्यात्स्वयं वा ब्रह्मचारिणः ॥ ६ ॥
 श्राद्धमभिमतः कार्यं दाहादेकादशेऽहनि ॥
 प्रत्यान्दिकं तु कुर्वीत प्रमीताहनि सर्वदा ॥ ७ ॥
 द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यं षण्मासिकं तथा ॥
 सप्तिन्दीकरणं चैव एतद्वै श्राद्धषोडशम् ॥ ८ ॥
 एकाहेन तु षण्मासा यदा स्युरपि वा त्रिभिः ॥
 न्यूनः संवत्सरश्चैव स्यातां षण्मासिके तदा ॥ ९ ॥

यानि पंचदशाद्यानि अपुत्रस्येतराणि तु ॥
 एकस्मिन्नहि देयानि सपुत्रस्यैव सर्वदा ॥ १० ॥
 न योषायाः पतिर्दद्यादपुत्राया अपि क्वचित् ॥
 न पुत्रस्य पिता दद्यान्नानुजस्य तथाऽग्रजः ॥ ११ ॥
 एकादशोहि निर्वर्त्य अर्वाग्दर्शाद्यथाविधि ॥
 प्रकुर्वीताग्निमान्पुत्रो मातापित्रोः सपिंडताम् ॥ १२ ॥
 सपिंडीकरणादूर्ध्वं न दद्यात्प्रतिमासिकम् ॥
 एकोद्दिष्टेन विधिना दद्यादित्याह गौतमः ॥ १३ ॥
 कर्षूसमन्वितं मुक्त्वा तथाद्यं श्राद्धषोडशम् ॥
 प्रत्याब्दिकं च शेषेषु पिंडाःस्युः षाडिति स्थितिः ॥ १४ ॥
 अध्येक्ष्योदके चैव पिंडदानेऽवनेजने ॥
 तंत्रस्य तु निवृत्तिः स्यात्स्वधावाचन एव च ॥ १५ ॥
 ब्रह्मदंडादियुक्तानां येषां नास्त्यग्निसत्क्रिया ॥
 श्राद्धादिसत्क्रियाभाजो न भवन्तीह ते क्वचित् ॥ १६ ॥
 इति कात्यायनस्मृतौ चतुर्विंशतितमः खंडः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशः खण्डः २५.

मंत्राम्नायेऽग्न इत्येतत्पंचकं लाघवार्थिभिः ॥
 पठ्यते तत्प्रयोगे स्यान्मंत्राणामेव विंशतिः ॥ १ ॥
 अग्नेः स्थाने वायुचन्द्रसूर्या बह्ववदूह्य च ॥
 समग्य पंचमीसूत्रे चतुश्चतुरिति श्रुतेः ॥ २ ॥

प्रथमे पंचके पापी लक्ष्मीरिति पदं भवेत् ॥
 अपि पंचसु मंत्रेषु इति यज्ञविदो विदुः ॥ ३ ॥
 द्वितीये तु पतिघ्नी स्यादपुत्रेति तृतीयके ॥
 चतुर्थे त्वपसव्येति इदमाहुतिविंशकम् ॥ ४ ॥
 घृतहोमे न प्रयुज्याद्गोनामसु तथाऽष्टसु ॥
 चतुर्थ्यामघ्न्य इत्येतद्गोनामसु हि ह्वयते ॥ ५ ॥
 लताग्रपल्लवो गूढः शुंगेति परिकीर्त्यते ॥
 पतिव्रता व्रतवती ब्रह्मबंधुस्तथाऽश्रुतः ॥ ६ ॥
 शलादुनीलमित्युक्तं ग्रंथः स्तवक उच्यते ॥
 कपुष्पिकाभितः केशा मूर्ध्नि पश्चात्कपुच्छलम् ॥ ७ ॥
 श्वाविच्छलाका शलली तथा वीरतरः शरः ॥
 तिलतंडुलसम्पकः कूसरः सोऽभिधीयते ॥ ८ ॥
 नामधेये मुनिवसुपिशाचा बहुवत्सदा ॥
 यक्षाश्च पितरो देवा यष्टव्यातिथिदेवताः ॥ ९ ॥
 आग्नेयाद्येऽथ सर्पाद्ये विशाखाद्ये तथैव च ॥
 आषाढाद्ये धनिष्ठाद्ये अश्विन्याद्ये तथैव च ॥ १० ॥
 द्वाद्वान्येतानि बहुवदक्षाणां जुहुयात्सदा ॥
 द्वाद्वद्वयं द्विवच्छेषमवशिष्टान्यथैकवत् ॥ ११ ॥
 देवतास्वपि ह्वयन्ते बहुवत्सार्वपित्तयः ॥
 देवाश्च वसवश्चैव द्विषद्वेवाश्विनौ सदा ॥ १२ ॥

ब्रह्मचारो समादिष्टो गुरुणा व्रतकर्मणि ॥
 बाढमोमिति वा ब्रूयात्तथैवानूपपालयेत् ॥ १३ ॥
 सशिखं वपनं कार्यमास्त्रानाद्रह्यचारिणा ॥
 आशरीरविमोक्षाय ब्रह्मचर्यं न चेद्भवेत् ॥ १४ ॥
 न गात्रोत्सादनं कुर्यादनापदि कदाचन ॥
 जलक्रीडामलंकारान्ब्रवीदं दंड इवाप्लवेत् ॥ १५ ॥
 देवतानां विपर्य्यासे जुहोतिषु कथं भवेत् ॥
 सर्वं प्रायश्चित्तं हुत्वा क्रमेण जुहुयात्पुनः ॥ १६ ॥
 संस्कारा अतिपत्येरन्स्वकालाच्चेत्कथंचन ॥
 हुत्वा तदैव कर्तव्या ये तूपनयनादधः ॥ १७ ॥
 अनिष्टा नवयज्ञेन नवान्नं योऽत्यकामतः ॥
 वैश्वानरश्चरुस्तस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ १८ ॥
 इति कात्यायनस्मृतौ पंचविंशतितमः खण्डः ॥ २५ ॥

षड्विंशः खण्डः २६.

चरुः समशनीयो यस्तथा गोयज्ञकर्मणि ॥
 वृषभोत्सर्जने चैव अश्वयज्ञे तथैव च ॥ १ ॥
 श्रावण्यां वा प्रदोषे यः कृष्यारंभे तथैव च ॥
 कथमेतेषु निर्वापाः कथं चैव जुहोतयः ॥ २ ॥

देवतासंख्यया ग्राह्या निर्वापास्तु पृथक्पृथक् ॥

तूष्णीं द्विरेव गृह्णीयाद्धोमश्चापि पृथक्पृथक् ॥ ३ ॥

यावता होमनिर्वृत्तिर्भवेद्वा यत्र कीर्तिता ॥

शेषं चैव भवेत्किञ्चित्तावन्तं निर्वपेच्चरुम् ॥ ४ ॥

चरौ समशनीये तु पितृयज्ञे चरौ तथा ॥

होतव्यं मेक्षणे वान्य उपस्तौर्याभिधारितम् ॥ ५ ॥

कालः कात्यायनेनोक्तो विधिश्चैव समासतः ॥

वृषोत्सर्गो यतो नात्र गोभिलेन न भाषितः ॥ ६ ॥

पारिभाषिक एव स्यात्कालो गोवाजियज्ञयोः ॥

अन्यास्मादुपदेशात्तु स्वस्तरारोहणस्य च ॥ ७ ॥

अथवा मार्गपाल्येऽहि कालो गोयज्ञकर्मणः ॥

नीराजनेऽहि वाश्वानामिति तंत्रांतरे विधिः ॥ ८ ॥

शरद्वसन्तयोः केचिन्नवयज्ञं प्रचक्षते ॥

धान्यपाकवशादन्ये श्यामाको वनिनः स्मृतः ॥ ९ ॥

आश्वयुज्यां तथा कृष्यां वास्तुकर्मणि यज्ञिकाः ॥

यज्ञार्थतत्त्ववेत्तारो होममेवं प्रचक्षते ॥ १० ॥

द्वे पंच द्वे क्रमेणैता हविराहुतयः स्मृताः ॥

शेषा आज्येन होतव्या इति कात्यायनोद्भवी ॥ ११ ॥

पयो यदाज्यसंयुक्तं तत्तृषातकमुच्यते ॥

दध्मेके तदुपासाद्य कर्तव्यः पायसश्चरुः ॥ १२ ॥

ब्रीहयः शालयो मुद्गा गोधूमाः सर्षपास्तिलाः ॥
 यवाश्चोषधयः सप्त विपदं घ्नन्ति धारिताः ॥ १३ ॥
 संस्काराः पुरुषस्यैते स्मर्य्यन्ते गौतमादिभिः ॥
 अतोऽष्टकादयः कार्याः सर्वकालप्रमोदिनाम् ॥ १४ ॥
 सकृदप्यष्टकादीनि कुर्यात्कर्माणि यो द्विजः ॥
 स पंक्तिपावनो भूत्वा लोकान्प्रैति घृतश्च्युतः ॥ १५ ॥
 एकाहमपि कर्मस्थो योऽग्निशुश्रूषकः शुचिः ॥
 नयत्यत्र तदेवास्य शताहं दिवि जायते ॥ १६ ॥
 यस्त्वाधायामिमाशास्य देवादीन्नैभिरिष्टवान् ॥
 निराकर्त्ताऽमरादीनां स विज्ञेयो निराकृतिः ॥ १७ ॥
 इति कात्यायनस्मृतौ षड्विंशतितमः खण्डः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः खण्डः २७.

यच्छ्राद्धं कर्मणामादौ या चान्ते दक्षिणा भवेत् ॥
 अमावास्यां द्वितीयं यदन्वाहार्यं तदुच्यते ॥ १ ॥
 एकसाध्येषु बर्हिःषु न स्यात्परिसमूहनम् ॥
 नोदगासादनं चैव क्षिप्रहोमा हि ते मताः ॥ २ ॥
 अभावे ब्रीहियवयोर्दध्ना वा पयसापि वा ॥
 तदभावे यवाग्वा वा जुहुयादुदकेन वा ॥ ३ ॥
 रौद्रं तु राक्षसं पित्र्यमासुरं चाभिसारिकम् ॥
 वक्त्रा मंत्रं स्पृशेदाप आलभ्यात्मानमेव च ॥ ४ ॥

यजनोयेऽहि सोमश्चेद्ब्राह्मण्यां दिशि दृश्यते ॥
 तत्र व्याहृतिभिर्दुत्वा दंडं दद्याद्विजातये ॥ ५ ॥
 लवणं मधु मांसं च सारांशो येन ह्रयते ॥
 उपवासेन भुञ्जति नोरु रात्रौ न किञ्चन ॥ ६ ॥
 स्वकाले सायमाहुत्या अप्राप्तौ होतृहव्ययोः ॥
 प्राक्प्रातराहुतेः कालः प्रायश्चित्ते हुते सति ॥ ७ ॥
 प्राक्सायमाहुतेः प्रातर्होमकालानतिक्रमः ॥
 प्राक्पौर्णमासादर्शस्य प्राग्दर्शादितरस्य तु ॥ ८ ॥
 वैश्वदेवे त्वतिक्रान्ते अहोरात्रमभोजनम् ॥
 प्रायश्चित्तमथो हुत्वा पुनः सन्तनुयाद्रतम् ॥ ९ ॥
 होमद्वयात्यये दर्शपौर्णमासात्यये तथा ॥
 पुनरेवाग्निमादध्यादिति भार्गवशासनम् ॥ १० ॥
 रुरुर्गौरमृगः प्रोक्तस्तंबलः शौण उच्यते ॥ ११ ॥
 केशान्तिको ब्राह्मणस्य दंडः कार्यः प्रमाणतः ॥
 ललाटसंभितो राज्ञः स्यात्तु नासांतिको विशः ॥ १२ ॥
 ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरव्रणाः सौम्यदर्शनाः ॥
 अनुद्वेगकरा नृणां सत्वचोऽनग्निदूषिताः ॥ १३ ॥
 गौर्विशिष्टतमा विप्रैर्वेदेष्वपि निगद्यते ॥
 न ततोऽन्यद्वरं यस्मात्तस्माद्गौर्वर उच्यते ॥ १४ ॥

येषां व्रतानामन्तेषु दक्षिणा न विधीयते ॥
 वरस्तत्र भवेदानमपि वाऽऽच्छादयेद्गुरुम् ॥ १५ ॥
 अनृचो माणवो ज्ञेय एणः कृष्णमृगः स्मृतः ॥
 अस्थानोच्छ्वासविच्छेदघोषणाध्यापनादिकम् ॥
 प्रामादिकं श्रुतौ यत्स्याद्यातयामत्वकारे तत् ॥ १६ ॥
 प्रत्यब्दं यदुपाकर्म सोत्सर्गं विधिवद्विजैः ॥
 क्रियते छन्दसां तेन पुनराप्यायनं भवेत् ॥ १७ ॥
 अयातयामैश्छन्दोभिर्यत्कर्म क्रियते द्विजैः ॥
 क्रीडमानैरपि सदा तत्तेषां सिद्धिकारकम् ॥ १८ ॥
 गायत्रीञ्च सगायत्रां बार्हस्पत्यमिति त्रिकम् ॥
 शिष्येभ्योऽनूच्य विधिवदुपाकुर्यात्ततः श्रुतिम् ॥ १९ ॥
 छन्दसामेकविंशानां संहितायां यथाक्रमम् ॥
 तच्छन्दस्काभिरेवार्गभराद्याभिर्होम इष्यते ॥ २० ॥
 पर्वभिश्चैव गानेषु ब्राह्मणेषूत्तरादिभिः ॥
 अङ्गेषु चर्चामन्त्रेषु इति षष्टिर्जुहोतयः ॥ २१ ॥
 इति कात्यायनस्मृतौ सप्तविंशतितमः खण्डः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशः खंडः २८.

अक्षतास्तु यवाः प्रोक्ता भृष्टा धाना भवन्ति ते ॥
 भृष्टास्तु ब्रीहयो लाजा घटः खाण्डिक उच्यते ॥ १ ॥
 नाधीयीत रहस्यानि सान्तराणि विचक्षणः ॥

न चोपनिषदश्चैव षण्मासान्दक्षिणायनात् ॥ २ ॥
 उपाकृत्योदगयने ततोऽधीयीत धर्मवित् ।
 उत्सर्गश्चैक एवैषां तैष्यां प्रौष्ठपदेऽपि वा ॥ ३ ॥
 अजातव्यञ्जनाऽलोम्नी न तया सह संविशेत् ॥
 अयुगूः काकवन्ध्या या जाता तां न विवाहयेत् ॥ ४ ॥
 संसक्तपदविन्यासस्त्रिपदः प्रक्रमः स्मृतः ॥
 स्मार्त्ते कर्मणि सर्वत्र श्रौते त्वध्वर्युणोदितः ॥ ५ ॥
 यस्यां दिशि बलिं दद्यात्तामेवाभिमुखो विशेत् ॥
 श्रवणाकर्मणि भवेद्यच्च कर्म न सर्वदा ॥ ६ ॥
 बलिशेषस्य हवनमग्निप्रणयनन्तथा ॥
 प्रत्यहं न भवेयातामुल्मुकन्तु भवेत्सदा ॥ ७ ॥
 पृषातकप्रेषणयोर्नवस्य हविषस्तथा ॥
 शिष्टस्य प्राशने मन्त्रस्तत्र सर्वेऽधिकारिणः ॥ ८ ॥
 ब्राह्मणानामसान्निध्ये स्वयमेव पृषातकम् ॥
 अवेक्षेद्धविषः शेषं नवयज्ञेऽपि भक्षयेत् ॥ ९ ॥
 सफला बदरीशाखा फलवत्यभिधीयते ॥
 घना विक्षिकताशंकाः स्मृता जातशिलास्तु ताः ॥ १० ॥
 नष्टो विनष्टो मणिकः शिलानाशे तथैव च ॥
 तदैवाहत्य संस्कार्यो नापेक्षेताग्रहायणीम् ॥ ११ ॥
 श्रवणाकर्म लुप्तं चेत्कथञ्चित्सूनकादिना ॥

आग्रहायणिकं कुर्याद्विलिबर्जमशेषतः ॥ १२ ॥
 ऊर्ध्वस्वस्तरशायी स्यान्मासमर्द्धमथापि वा ॥
 सप्तरात्रं त्रिरात्रं वा एकां वा सद्य एव वा ॥ १३ ॥
 नोर्ध्वं मंत्रप्रयोगः स्यान्नाग्न्यगारं नियम्यते ॥
 नाहतास्तरणं चैव न पार्श्वं चापि दक्षिणम् ॥ १४ ॥
 दृढश्चेदाग्रहायण्यामावृत्त्या वापि कर्मणः ॥
 कुंभं मंत्रवदासिंचेत्पतिकुंभमृचं पठेत् ॥ १५ ॥
 अल्पानां यो विघातः स्यात्स बाधो बहुभिः स्मृतः ॥
 प्राणसाम्मत इत्याद वसिष्ठबोधितं यथा ॥ १६ ॥
 विरोधो यत्र वाक्यानां प्रामाण्यं तत्र भूयसाम् ॥
 तुल्यप्रमाणकत्वे तु न्याय एवं प्रकीर्तितः ॥ १७ ॥
 त्रैयंबकं करतलमपूपा मंडकाः स्मृताः ॥
 पालाशगोलकाश्चैव लोहचूर्णं च चीवरम् ॥ १८ ॥
 स्पृशन्ननामिकाग्रेण कचिदालोकयन्नपि ॥
 अनुमंत्रणीयं सर्वत्र सदैवमनुमंत्रयेत् ॥ १९ ॥
 इति कात्यायनस्मृतौ अष्टाविंशतितमः खण्डः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः खण्डः २९.

क्षालनं दर्भकूर्चैर्न सर्वत्र स्रोतसां पशोः ॥
 तूष्णीमिच्छाक्रमेण स्याद्वपार्थे प्राणदारुणि ॥ १ ॥

सप्त तावन्मूर्धन्यानि तथा स्तनचतुष्टयम् ॥
 नाभिः श्रोणिरपानं च गोमोतांसि चतुर्दश ॥ २ ॥
 क्षुरो मांसावदानार्थः कृत्स्ना स्विष्टकृदावृता ॥
 वपामादाय जुहुयात्तत्र मंत्रं समापयेत् ॥ ३ ॥
 हृज्जिह्वाक्रोडमस्थीनि यकृद्वृक्कौ गुदं स्तनाः ॥
 श्रोणिस्कंधसटापार्श्वं पश्वंगानि प्रचक्षते ॥ ४ ॥
 एकादशानामंगानामवदानानि संख्यया ॥
 पार्श्वस्य वृक्कसक्थनोश्च द्वित्वादाहुश्चतुर्दश ॥ ५ ॥
 चरितार्था श्रुतिः कार्या यस्मादप्यनुकल्पशः ॥
 अतोऽष्टच्चर्ने होमः स्याच्छागपक्षे चरावपि ॥ ६ ॥
 अवदानानां यावन्तिक्रियेरन्प्रस्तरे पशोः ॥
 तावतः पायसान्पिडान्पश्वभावेऽपि कारयेत् ॥ ७ ॥
 ऊहनव्यंजनार्थं तु पश्वभावेऽपि पायसम् ॥
 सद्रवं श्रपयेत्तद्वदन्वष्टक्येऽपि कर्मणि ॥ ८ ॥
 प्राधान्यं पिंडदानस्य केचिदाहुर्मनीषिणः ॥
 गयादौ पिंडमात्रस्य दीयमानत्वदर्शनात् ॥ ९ ॥
 भोजनस्य प्रधानत्वं वदंत्यन्ये महर्षयः ॥
 ब्राह्मणस्य परीक्षायां महायत्नप्रदर्शनात् ॥ १० ॥
 आमश्राद्धविधानस्य विना पिंडैः क्रियाविधिः ॥
 तदालभ्याप्यनध्यायविधानश्रवणादपि ॥ ११ ॥

विद्वन्मतमुपादाय ममाप्येतद्धृदि स्थितम् ॥

प्राधान्यमुभयोर्यस्मात्तस्मादेष समुच्चयः ॥ १२ ॥

प्राचीनावीतिना कार्यं पित्र्येषु प्रोक्षणं पशौः ॥

दक्षिणोद्वासनान्तं च चरोर्निर्वपणादिकम् ॥ १३ ॥

सन्नयश्चावदानानां प्रधानार्थो नहीतरः ॥

प्रधानं हवनं चैव शेषं प्रकृतिवद्भवेत् ॥ १४ ॥

द्वीपमुन्नतमाख्यातं शादा चैवेष्टका स्मृता ॥

कोलिनं सजलं प्रोक्तं दूरखातोदको मरुः ॥ १५ ॥

द्वारे गवाक्षस्तम्भैः कर्दमभित्यन्तकोणवेधैश्च ॥

नेष्टं वास्तुद्वारं विद्वमनाक्रांतमार्यैश्च ॥ १६ ॥

वशं गमाविति व्रीहींश्चरुनश्चेति यवांस्तथा ॥

असावित्यत्र नामोक्त्वा जुहुयात्क्षिप्रहोमवत् ॥ १७ ॥

साक्षतं सुमनायुक्तमुदकं दधिसंयुतम् ॥

अर्घ्यं दधिमधुभ्यां च मधुपर्को विधीयते ॥ १८ ॥

कांस्येनैवार्हणीयस्य निनयेदर्घ्यमंजली ॥

कांस्यापिधानं कांस्यस्थं मधुपर्कं समर्पयेत् ॥ १९ ॥

इति कात्यायनस्मृतावेकोनत्रिंशत्तमः खण्डः ॥ २९ ॥

इति कात्यायनविरचिते कर्मप्रदीपे तृतीयः

प्रपाठकः समाप्तः ॥ ३ ॥

इति कात्यायनस्मृतिः समाप्ता ॥ ९ ॥

श्रीः ।

अथ बृहस्पतिस्मृतिः १०.



अथ बृहस्पतिस्मृतिप्रारंभः ॥

इष्ट्वा क्रतुशतं राजा समाप्तवरदक्षिणम् ॥
भगवंतं गुरुं श्रेष्ठं पर्यपृच्छद्बृहस्पतिम् ॥ १ ॥
भगवन्केन दानेन सर्वतः सुखमेधते ॥
यदक्षयं महार्थं च तन्मे ब्रूहि महत्तम ॥ २ ॥
एवमिद्रेण पृष्ठोऽसौ देवदेवपुरोहितः ॥
वाचस्पतिर्महाप्राज्ञो बृहस्पतिरुवाच ॥ ३ ॥
सुवर्णदानं भूदानं गोदानं चैव वाप्तव ॥
एतत्प्रयच्छमानस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥
सुवर्णं रजतं वस्त्रं मणिं रत्नं च वाप्तव ॥
सर्वमेव भवेदत्तं वसुधां यः प्रयच्छति ॥ ५ ॥
फालकृष्ठां महीं दत्त्वा सन्धीजां सस्यमालिनीम् ॥
यावत्सूर्यकृता लोकास्तावत्स्वर्गे महीयते ॥ ६ ॥
यत्किञ्चित्कुरुते पापं पुरुषो वृत्तिकर्षितः ॥
अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥
दशहस्तेन दंडेन त्रिंशदंडान्निवर्त्तनम् ॥

दश तान्येव विस्तारो गोचर्मैतन्महाफलम् ॥ ८ ॥

सवृषं गोसहस्रं तु यत्र तिष्ठत्यतन्द्रितम् ॥

बालवत्साप्रसूतानां तद्गोचर्म इति स्मृतम् ॥ ९ ॥

विप्राय दद्याच्च गुणान्विताय तपोनियुक्ताय जितेन्द्रियाय ॥

यावन्मही तिष्ठति सागरांता तावत्फलं तस्य भवेदनंतम् ॥ १० ॥

यथा बीजानि रोहन्ति प्रकीर्णानि महीतले ॥

एवं कामाः प्ररोहन्ति भूमिदानसमर्जिताः ॥ ११ ॥

यथाप्सु पतितः शक्र तैलबिंदुः प्रसर्पति ॥

एवं भूम्याः कृतं दानं सस्ये सस्ये प्ररोहति ॥ १२ ॥

अन्नदाः सुखिनो नित्यं वस्त्रदश्चैव रूपवान् ॥

स नरः सर्वदो भूपो यो ददाति वसुंधराम् ॥ १३ ॥

यथा गौर्भरते वत्सं क्षीरमुत्सृज्य क्षीरिणी ॥

स्वयं दत्ता सहस्राक्ष भूमिर्भरति भूमिदम् ॥ १४ ॥

शंखं भद्रासनं छत्रं चरस्थावरवारणाः ॥

भूमिदानस्य पुण्यानि फलं स्वर्गः पुरंदर ॥ १५ ॥

आदित्यो वरुणो वह्निर्ब्रह्मा सोमो हुताशनः ॥

शूलपाणिश्च भगवानभिनंदन्ति भूमिदम् ॥ १६ ॥

आस्फोटयन्ति पितरः प्रवल्गन्ति पितामहाः ॥

भूमिदाता कुले जातः स च त्राता भविष्यति ॥ १७ ॥

त्रीण्यादुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती ॥

तारयंतीह दातारं जपवापनदोहनैः ॥ १८ ॥

प्रावृता वस्त्रदा यांति नम्रा यांति त्ववस्त्रदाः ॥

तृप्ता यांत्यन्नदातारः क्षुधिता यांत्यन्नदाः ॥ १९ ॥

कांक्षंति पितरः सर्वे नरकाद्भयभीरवः ॥

गयां यास्यति यः पुत्रः स नस्त्राता भविष्यति ॥ २० ॥

एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥

यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ २१ ॥

लोहितो यस्तु वर्णेन पुच्छाग्रे यस्तु पांडुरः ॥

श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ॥ २२ ॥

नीलः पांडुरलांगूलस्तृणमुद्धरते तु यः ॥

षष्टिवर्षसहस्राणि पितरस्तेन तर्पिताः ॥ २३ ॥

यस्य शृगगतं पंकं कूलात्तिष्ठति चोद्धृतम् ॥

पितरस्तस्य चाश्रंति सोमलोकं महाद्युतिम् ॥ २४ ॥

पृथोर्यदोर्दिलिपस्य नृगस्य नहुषस्य च ॥

अन्येषां च नरेन्द्राणां पुनरन्यो भविष्यति ॥ २५ ॥

बहुभिर्वसुधा दत्ता राजभिः सगरादिभिः ॥

यस्य यस्य यथा भूमिस्तस्य तस्य तथा फलम् ॥ २६ ॥

यस्तु ब्रह्मघ्नः स्त्रीघ्नो वा यस्तु वै पितृघातकः ॥

गवां शतसहस्राणां हंता भवति दुष्कृती ॥ २७ ॥

स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुंधराम् ॥

श्रविष्ठायां कृमिभूत्वा पितृभिः सह पच्यते ॥ २८ ॥

आक्षेप्ता चानुर्धता च तमेव नरकं व्रजेत् ॥

भूमिदो भूमिहर्ता च नापरं पुण्यपापयोः ॥

ऊर्ध्वं चाधोऽवतिष्ठेत यावदाभूतसंलवम् ॥ २९ ॥

अमेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूर्वैष्णवी सूर्यसुताश्च गावः ॥

लोकान्त्रयस्तेन भवंति दत्ता यः कांचनं गां च महीं च दद्यात् ३०
षडशीतिसहस्राणां योजनानां वसुंधरा ॥

स्वयं दत्ता तु सर्वत्र सर्वकामप्रदायिनी ॥ ३१ ॥

भूमिं यः प्रतिगृह्णाति भूमिं यश्च प्रयच्छति ॥

उभौ तो पुण्यकर्माणौ नियतं स्वर्गगामिनौ ॥ ३२ ॥

सर्वेषामेव दानानामेकजन्मानुगं फलम् ॥

हाटकक्षितिगौरीणां सप्तजन्मानुगं फलम् ॥ ३३ ॥

यो न हिंस्यादहं ह्यात्मा भूतग्रामं चतुर्विधम् ॥

तस्य देहाद्वियुक्तस्य भयं नास्ति कदाचन ॥ ३४ ॥

अन्यायेन हृता भूमिर्यैर्नरैरपहारिता ॥

हरंतो हारयंतश्च हन्युरासप्तमं कुलम् ॥ ३५ ॥

हरते हारयेद्यस्तु मंदबुद्धिस्तमोवृतः ॥

स बद्धो वारुणैः पाशैस्तिर्यग्योनिषु जायते ॥ ३६ ॥

असुभिः पतितैस्तेषां दानानामवकीर्तनम् ॥

ब्राह्मणस्य हृते क्षेत्रे हन्ति त्रिपुरुषं कुलम् ॥ ३७ ॥

षापीकूपसहस्रेण अश्वमेधशतेन च ॥

गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुद्ध्यति ॥ ३८ ॥

गामेकां स्वर्णमेकं वा भूमेरप्यर्द्धमंगुलम् ॥

हरन्नरकमायाति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ३९ ॥

द्रुतं दत्तं तपोऽधीतं यत्किञ्चिद्धर्मसंचितम् ॥

अर्धांगुलस्य सीमायां हरणेन प्रणश्यति ॥ ४० ॥

गोवीथीं ग्रामरथ्यां च श्मशानं गोपितं तथा ॥

संपीड्य नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ४१ ॥

ऊषरे निर्जले स्थाने प्रास्तं सस्यं विवर्जयेत् ॥

जलाधारस्य कर्तव्यो व्यासस्य वचनं यथा ॥ ४२ ॥

पंच कन्यानृतं हन्ति दश हन्ति गवानृतम् ॥

शतमश्वानृतं हन्ति सहस्रं पुरुषानृतम् ॥ ४३ ॥

हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन् ॥

सर्वं भूम्यनृतं हन्ति मा स्म भूम्यनृतं वदीः ॥ ४४ ॥

ब्रह्मस्वे न रतिं कुर्यात्पाणैः कंठगतैरपि ॥

अनौषधमभैषज्यं विषमेतद्धलाहलम् ॥ ४५ ॥

न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते ॥

विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम् ॥ ४६ ॥

लोहचूर्णाश्मचूर्णं च विषं च जरयेन्नरः ॥

ब्रह्मस्वं त्रिषु लोकेषु कः पुमाञ्जरयिष्यति ॥ ४७ ॥

मन्युप्रहरणा विप्रा राजानः शस्त्रपाणयः ॥
 शस्त्रमेकाकिनं हन्ति ब्रह्ममन्युः कुलत्रयम् ॥ ४८ ॥
 मन्युप्रहरणा विप्राश्चक्रप्रहरणो हरिः ॥
 चक्रातीव्रतरो मन्युस्तस्माद्विप्रं न कोपयेत् ॥ ४९ ॥
 अग्निदग्धाः प्ररोहन्ति सूर्यदग्धास्तथैव च ॥
 मन्युदग्धस्य विप्राणामंकुरो न प्ररोहति ॥ ५० ॥
 तेजसाग्निश्च दहति सूर्यो दहति रश्मिना ॥
 राजा दहति दण्डेन विप्रो दहति मन्युना ॥ ५१ ॥
 ब्रह्मस्वेन तु यत्सौख्यं देवस्वेन तु या रतिः ॥
 तद्धनं कुलनाशाय भवत्यात्मविनाशनम् ॥ ५२ ॥
 ब्रह्मस्वं ब्रह्महत्या च दरिद्रस्य च यद्धनम् ॥
 गुरुमित्राहिरण्यं च स्वर्गस्थमपि पीडयेत् ॥ ५३ ॥
 ब्रह्मस्वेन तु यच्छिद्रं तच्छिद्रं न प्ररोहति ॥
 प्रच्छादयति तच्छिद्रमप्यत्र तु विसर्पति ॥ ५४ ॥
 ब्रह्मस्वेन तु पुष्टानि साधनानि बलानि च ॥
 संग्रामे तानि लीयन्ते सिकतासु यथोदकम् ॥ ५५ ॥
 श्रोत्रियाय कुलीनाय दरिद्राय च वासव ॥
 संतुष्टाय विनीताय सर्वभूतहिताय च ॥ ५६ ॥
 वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिन्द्रियाणां च संयमः ॥
 ईदृशाय सुरश्रेष्ठ यद्वत्तं हि तदक्षयम् ॥ ५७ ॥

आमपात्रे यथा न्यस्तं क्षीरं दधि घृतं मधु ॥
 विनश्येत्पात्रदौर्बल्यात्तच्च पात्रं विनश्यति ॥ ५८ ॥
 एवं गां च हिरण्यं च वस्त्रमन्नं महीं तिलान् ॥
 अविद्वान्प्रतिगृह्णाति भस्मीभवति काष्ठवत् ॥ ५९ ॥
 यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरे चापि बहुश्रुतः ॥
 बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥ ६० ॥
 कुलं तारयते धीरः सप्त सप्त च वासव ॥ ६१ ॥
 यस्तडागं नवं कुर्यात्पुराणं वापि खानयेत् ॥
 स सर्वं कुलमुद्धृत्य स्वर्गलोके महीयते ॥ ६२ ॥
 वापीकूपतडागानि उद्यानोपवनानि च ॥
 पुनः संस्कारकर्ता च लभते मौक्तिकं फलम् ॥ ६३ ॥
 निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठति वासव ॥
 स दुर्गविषमं कृत्स्नं न कदाचिदवाप्नुयात् ॥ ६४ ॥
 एकाहं तु स्थितं तोयं पृथिव्यां राजसत्तम ॥
 कुलानि तारयेत्तस्य सप्त सप्त पराण्यपि ॥ ६५ ॥
 दीपालोकप्रदानेन वपुष्मान्स भवन्नरेः ॥
 प्रेक्षणीयप्रदानेन स्मृतिं मेधां च विंदति ॥ ६६ ॥
 कृत्वापि पापकर्माणि यो दद्यादन्नमर्थिने ॥
 ब्राह्मणाय विशेषेण न स पापेन लिप्यते ॥ ६७ ॥

भूमिर्गावस्तथा दाराः प्रसह्य हियते यदा ॥

न चावेदयते यस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ ६८ ॥

निवेदितश्च राजा वै ब्राह्मणैर्मन्युदीपितैः ॥

न निवारयते यस्तु तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥ ६९ ॥

उपस्थिते विवाहे च यज्ञे दाने च वासव ॥

मोहाच्चरति विघ्नं यः स मृतो जायते कृमिः ॥ ७० ॥

धनं फलति दानेन जीवितं जीवरक्षणात् ॥

रूपमारोग्यमैश्वर्यमहिंसाफलमश्नुते ॥ ७१ ॥

फलमूलाशनात्पूजा स्वर्गस्सत्येन लभ्यते ॥

प्रायोपवेशनाद्राज्यं सर्वं च सुखमश्नुते ॥ ७२ ॥

गवाढ्यः शक्र दीक्षायाः स्वर्गगामी तृणाशनः ॥

स्त्रियस्त्रिषवणस्त्रायी वायुं पीत्वा क्रतुं लभेत् ॥ ७३ ॥

नित्यस्त्रायी भवेदर्कः संध्ये द्वे च जपन्दिजः ॥

नवं साधयते राज्यं नाकपृष्ठमनाशकम् ॥ ७४ ॥

अग्निप्रवेशे नियतं ब्रह्मलोके महीयते ॥

रसनाप्रतिसंहारे पशून्पुत्रांश्च विंदति ॥ ७५ ॥

नाके चिरं स वसते उपवासी च यो भवेत् ॥

सततं चैकशायी यः स लभेतेप्सितां गतिम् ॥ ७६ ॥

वीरासनं वीरशय्यां वीरस्थानमुपाश्रितः ॥

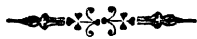
अक्षय्यास्तस्य लोकाः स्युस्सर्वकामागमास्तथा ॥ ७७ ॥

उपवासं च दीक्ष चाभिषेकं च वासव ॥
 कृत्वा द्वादशवर्षाणि वीरस्थानाद्विशिष्यते ॥ ७८ ॥
 अधीत्य सर्ववेदान्वै सद्यो दुःखात्प्रमुच्यते ॥
 पावनं चरते धर्मं स्वर्गलोके महीयते ॥ ७९ ॥
 बृहस्पतिमतं पुण्यं ये पठन्ति द्विजातयः ॥
 चत्वारि तेषां वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥ ८० ॥
 इति श्रीबृहस्पतिप्रणीतं धर्मशास्त्रं समाप्तम् ॥ १० ॥



। श्रीः ।

अथ पाराशरस्मृतिः ११.



प्रथमः खण्डः ।

अथातो हिमशैलाग्रे देवदारुवनालये ॥

व्यासमेकाग्रमासीनमपृच्छन्नृषयः पुरा ॥ १ ॥

मानुषाणां हितं धर्मं वर्तमाने कलौ युगे ॥

शौचाचारं यथावच्च वद सत्यवतीसुत ॥ २ ॥

तच्छ्रुत्वा ऋषिवाक्यं तु सशिष्योऽग्न्यर्कसन्निभः ॥

प्रत्युवाच महातेजाः श्रुतिस्मृतिविशारदः ॥ ३ ॥

न चाहं सर्वतत्त्वज्ञः कथं धर्मं वदाम्यहम् ॥

अस्मत्पितृषु प्रष्टव्य इति व्यासः सुतोऽवदत् ॥ ४ ॥

ततस्ते ऋषयः सर्वे धर्मतत्त्वार्थकाक्षिणः ॥

ऋषिं व्यासं पुरस्कृत्य गता बदरिकाश्रमम् ॥ ५ ॥

नानापुष्पलताकीर्णं फलपुष्पैरलंकृतम् ॥

नदीप्रस्रवणोपेतं पुण्यतीर्थोपशोभितम् ॥ ६ ॥

मृगपक्षिनिनादाढ्यं देवतायतनावृतम् ॥

यक्षगंधर्वसिद्धेश्च नृत्यगीतैरलंकृतम् ॥ ७ ॥

तस्मिन्नृषिसभामध्ये शक्तिपुत्रं पराशरम् ॥
 सुखासीनं महातेजा मुनिमुख्यगणावृतम् ॥ ८ ॥
 कृताञ्जलिपुटो भूत्वा व्यासस्तु ऋषिभिः सह ॥
 प्रदक्षिणाभिवादैश्च स्तुतिभिः समपूजयत् ॥ ९ ॥
 अथ संतुष्टहृदयः पराशरमहामुनिः ॥
 आह सुस्वागतं ब्रूहीत्यासीनो मुनिपुंगवः ॥ १० ॥
 कुशलं सम्यगित्युक्त्वा व्यासः पृच्छत्यनंतरम् ॥
 यदि जानासि मे भक्तिं स्नेहाद्वा भक्तवत्सल ॥ ११ ॥
 धर्मं कथय मे तात अनुग्राह्यो ह्यहं तव ॥
 श्रुता म मानवा धर्मा वासिष्ठाः काश्यपास्तथा ॥ १२ ॥
 गार्गीया गौतमीयाश्च तथा चौशनसाः स्मृताः ॥
 अत्रेर्विष्णोश्च संवर्ताद्दक्षादंगिरसस्तथा ॥ १३ ॥
 शातातपाच्च हारीताद्याज्ञवल्क्यास्तथैव च ॥
 आपस्तम्बकृता धर्माः शंखस्य लिखितस्य च ॥ १४ ॥
 कात्यायनकृताश्चैव तथा प्राचेतसान्मुनेः ॥
 श्रुता ह्येते भवत्प्रोक्ताः श्रौतार्था मे न विस्मृताः ॥ १५ ॥
 अस्मिन्मन्वंतरे धर्माः कृतत्रेतादिके युगे ॥
 सर्वे धर्माः कृते जाताः सर्वे नष्टाः कलौ युगे ॥ १६ ॥
 चातुर्वर्ण्यसमाचारं किञ्चित्साधारणं वद ॥
 चतुर्णामपि वर्णानां कर्त्तव्यं धर्मकोविदैः ॥ १७ ॥

ब्रूहि धर्मस्वरूपज्ञ सूक्ष्मं स्थूलं च विस्तरात् ॥
 व्यासवाक्यावसानेषु मुनिमुरूपः पराशरः ॥
 धर्मस्य निर्णयं प्राह सूक्ष्मं स्थूलं च विस्तरात् ॥ १८ ॥
 शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि शृण्वंतु मुनयस्तथा ॥ १९ ॥
 कल्पे कल्पे क्षये सत्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥
 श्रुतिस्मृतिसदाचारनिर्णेतारश्च सर्वदा ॥ २० ॥
 न कश्चिद्वेदकर्ता च वेदं स्मृत्वा चतुर्मुखः ॥
 तथैव धर्मान्स्मरति मनुः कल्पांतरेऽंतरे ॥ २१ ॥
 अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे युगे ॥
 अन्ये कलियुगे नृणां युगरूपानुसारतः ॥ २२ ॥
 तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ॥
 द्वापरे यज्ञमेवाद्बुर्दानमेव कलौ युगे ॥ २३ ॥
 कृते तु मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः ॥
 द्वापरे शंखलिखिताः कलौ पाराशराः स्मृताः ॥ २४ ॥
 त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत् ॥
 द्वापरे कुलमेकं तु कर्तारं तु कलौ युगे ॥ २५ ॥
 कृते संभाषणादेव त्रेतायां स्पर्शनेन च ॥
 द्वापरे त्वन्नमादाय कलौ पतति कर्मणा ॥ २६ ॥
 कृते तात्क्षणिकः शापस्त्रेतायां दशभिर्दिनैः ॥
 द्वापरे चैकमासेन कलौ संवत्सरेण तु ॥ २७ ॥

अभिगम्य कृते दानं त्रेतास्वाहूय दीयते ॥
 द्वापरे याचमानाय सेवाया दीयते कलौ ॥ २८ ॥
 अभिगम्योत्तमं दानमाहूयैव तु मध्यमम् ॥
 अधमं याचमानाय सेवादानं तु निष्फलम् ॥ २९ ॥
 जितो धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं चैवानृतेन च ॥
 जिताश्चोरैश्च राजानः स्त्रीभिश्च पुरुषा जिताः ॥ ३० ॥
 सीदन्ति चामिहोत्राणि गुरुपूजा प्रणश्यति ॥
 कुमार्यश्च प्रसूयन्ते तस्मिन्कलियुगे सदा ॥ ३१ ॥
 कृते त्वस्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांसमाश्रिताः ॥
 द्वापरे रुधिरं चैव कलौ त्वन्नादिषु स्थिताः ॥ ३२ ॥
 युगे युगे च ये धर्मास्तत्र तत्र च ये द्विजाः ॥
 तेषां निदा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः ॥ ३३ ॥
 युगे युगे तु सामर्थ्यं शेषं मुनिविभाषितम् ॥
 पराशरेण चाप्युक्तं प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ ३४ ॥
 चातुर्वर्ण्यसमाचारं शृण्वन्तु ऋषिपुंगवाः ॥ ३५ ॥
 पराशरमतं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥
 चिंतितं ब्राह्मणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥ ३६ ॥
 चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालकः ॥
 आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः ॥ ३७ ॥

षट्कर्माभिरतो नित्यं देवतातिथिपूजकः ॥

दुतशेषं तु भुञ्जानो ब्राह्मणो नावसीदति ॥ ३८ ॥

संध्या स्नानं जपो होमो देवतानां च पूजनम् ॥

आतिथ्यं वैश्वदेवं च षट्कर्माणि दिने दिने ॥ ३९ ॥

इष्टो वा यदि वा द्वेष्टो मूर्खः पण्डित एव वा ॥

संप्राप्तो वैश्वदेवांते सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥ ४० ॥

दूराच्चोपगतं श्रान्तं वैश्वदेव उपस्थितम् ॥

अतिथिं तं विजानीयान्नातिथिः पूर्वमागतः ॥ ४१ ॥

नैकग्रामीणमतिथिं संगृह्णीत कदाचन ॥

अनित्यमागतो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ ४२ ॥

अतिथिं तत्र संप्राप्तं पूजयेत्स्वागतादिना ॥

तथासनप्रदानेन पादप्रक्षालनेन च ॥ ४३ ॥

श्रद्धया चान्नदानेन प्रियप्रश्नोत्तरेण च ॥

गच्छतश्चानुयानेन प्रीतिमुत्पादयेद् गृही ॥ ४४ ॥

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते ॥

पितरस्तस्य नाश्रंति दश वर्षाणि पंच च ॥ ४५ ॥

काष्ठभारसहस्रेण घृतकुंभशतेन च ॥

अतिथियस्य भग्नाशस्तस्य होमो निरर्थकः ॥ ४६ ॥

सुक्षेत्रे वापयेद्भोजं सुपात्रे निक्षिपेद्धनम् ॥

सुक्षेत्रे च सुपात्रे च ह्युप्तं दत्तं न नश्यति ॥ ४७ ॥

न पृच्छेद्भोजचरणे न स्वाध्यायं श्रुतं तथा ॥

हृदये कल्पयेद्दं सर्वदेवमयो हि सः ॥ ४८ ॥

अपूर्वः सुव्रती विप्रो ह्यपूर्वश्चातिथिस्तथा ॥

वेदाभ्यासरतो नित्यं त्रयोऽपूर्वा दिने दिने ॥ ४९ ॥

वैश्वदेवे तु संप्राप्ते भिक्षुके गृहमागते ॥

उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत् ॥ ५० ॥

तयोरन्नमदत्त्वा च भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ५१ ॥

दद्याच्च भिक्षात्रितयं परिव्राड्ब्रह्मचारिणाम् ॥

इच्छया च ततो दद्याद्भिभवे सत्यवारितम् ॥ ५२ ॥

यतिहस्तं जलं दद्याद्भैक्षं दद्यात्पुनर्जलम्

तद्भैक्षं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम् ॥ ५३ ॥

यस्य च्छत्रं हयश्चैव कुंजरारोहमृद्धिमत् ॥

ऐन्द्रस्थानमुपासीत तस्मात्तं न विचारयेत् ॥ ५४ ॥

वैश्वदेवकृतं पापं शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ॥

नहि भिक्षुकृतं दोषं वैश्वदेवो व्यपोहति ॥ ५५ ॥

अकृत्वा वैश्वदेवं तु भुंजते ये द्विजातयः ॥

तेषामन्नं न भुंजीत काकयोनिं व्रजंति ते ॥ ५६ ॥

अकृत्वा वैश्वदेवं तु भुञ्जते ये द्विजाधमाः ॥
 सर्वे ते निष्फला ज्ञेयाः पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ ५७ ॥
 वैश्वदेवविहीना ये आतिथ्येन बहिष्कृताः ॥
 सर्वे ते नरकं यांति काकयोनिं व्रजन्ति च ॥ ५८ ॥
 शिरो वेष्य तु यो भुङ्क्ते दक्षिणाभिमुखस्तु यः ॥
 वामपादकरः स्थित्वा तद्वै रक्षांसि भुञ्जते ॥ ५९ ॥
 यतये कांचनं दत्त्वा तांबूलं ब्रह्मचारिणे ॥
 चोरेभ्योऽप्यभयं दत्त्वा दातापि नरकं व्रजेत् ॥ ६० ॥
 शुक्लवस्त्रं च यानं च तांबूलं धातुमेव च ॥
 प्रतिगृह्य कुलं हन्यात्प्रतिगृह्णाति यस्य च ॥ ६१ ॥
 चोरो वा यदि चंडालः शत्रुर्वा पितृघातकः ॥
 वैश्वदेवे तु संप्राप्ते सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥ ६२ ॥
 न गृह्णाति तु यो विप्रो ह्यातिथिं वेदपारगम् ॥
 अदत्तं चान्नपात्रं तु भुक्त्वा भुङ्क्ते तु किल्बिषम् ॥ ६३ ॥
 ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रं निरुपममकंटकम् ॥
 वाग्येत्सर्वबीजानि सा कृषिः सर्वकामिका ॥ ६४ ॥
 सुक्षेत्रे वाग्येद्बीजं सुपात्रे निक्षिपेद्धनम् ॥
 सुक्षेत्रे च सुपात्रे च ह्यशुभं तत्र विनश्यति ॥ ६५ ॥
 अवता ह्यनघीयाना यत्र भैक्षचरा द्विजाः ॥
 तं ग्रामं दंडयेद्राजा चोरभक्तप्रदो हि सः ॥ ६६ ॥

क्षत्रियो हि प्रजा राजञ्छस्त्रपाणिः प्रदंडवान् ॥

निर्जित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत् ॥ ६७ ॥

न श्रीः कुलक्रमायाता भूषणोल्लिखिताऽपि वा ॥

खड्गेनाक्रम्य भुंजीत वीरभोग्यां वसुंधराम् ॥ ६८ ॥

फलं पुष्पं विचिनुयान्मूलच्छेदं न कारयेत् ॥

मालाकार इवारामे न यथांगारकारकः ॥ ६९ ॥

लाभकर्म तथा रत्नं गवां च परिपालनम् ॥

कृषिकर्म च वाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहृता ॥ ७० ॥

शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा परमो धर्म उच्यते ॥

अन्यथा कुरुते किञ्चित्द्रवेत्तस्य निष्फलम् ॥ ७१ ॥

लवणं मधु तैलं च दधि तक्रं घृतं पयः ॥

न दुष्येच्छूद्रजातीनां कुर्यात्सर्वेषु विक्रयम् ॥ ७२ ॥

विक्रीणन्मद्यमांसानि ह्यभक्ष्यस्य च भक्षणम् ॥

कुर्वन्नगम्यागमनं शूद्रः पतति तत्क्षणात् ॥ ७३ ॥

कपिलाक्षीरपानेन ब्राह्मणीगमनेन चः ॥

वेदाक्षरविचारेण शूद्रस्य नरको ध्रुवम् ॥ ७४ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अतः परं गृहस्थस्य कर्माचारं कलौ युगे ॥
 धर्मं साधारणं शक्त्या चातुर्वर्ण्याश्रमागतम् ॥ १ ॥
 तं प्रवक्ष्याम्यहं पूर्वं पाराशरवचो यथा ॥
 षट्कर्मसहितो विप्रः कृषिकर्म च कारयेत् ॥ २ ॥
 क्षुधितं तृषितं श्रांतं बलीवर्दं न योजयेत् ॥
 हीनांगं व्याधितं क्लीबं वृषं विप्रो न वाहेयेत् ॥ ३ ॥
 स्थिरांगं नीरुजं तृप्तं सुनर्दं षण्ठवर्जितम् ॥
 वाहयेद्विषसस्यार्द्धं पश्चात्स्नानं समाचरेत् ॥ ४ ॥
 जपं देवार्चनं होमं स्वाध्यायं चैवमभ्यसेत् ॥
 एकद्वित्रिचतुर्विप्रान्भोजयेत्स्नातकान्द्विजः ॥ ५ ॥
 स्वयं कृष्टे तथा क्षेत्रे धान्यैश्च स्वयमर्ज्जितैः ॥
 निर्वपेत्पञ्चपक्षांश्च क्रतुदीक्षां च कारयेत् ॥ ६ ॥
 तिला रसा न विक्रेया विक्रेया धान्यतत्समाः ॥
 विप्रस्यैवंविधा वृत्तिस्तृणकाष्ठादिविक्रयः ॥ ७ ॥
 ब्राह्मणश्चेत्कृषिं कुर्यात्तन्महादोषमाप्नुयात् ॥
 अष्टागवं धर्महलं षड्गवं वृत्तिलक्षणम् ॥ ८ ॥
 चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं गोजिघांसुवत् ॥
 द्विगवं वाहयेत्पादं मध्याह्ने तु चतुर्गवम् ॥ ९ ॥

षड्भवं तु त्रियामाहेऽष्टभिः पूर्णं तु वाहयेत् ॥
 न याति नरकेष्वेवं वर्तमानस्तु वै द्विजः ॥ १० ॥
 दानं दद्याच्च वै तेषां प्रशस्तं स्वर्गसाधनम् ॥
 संवत्सरेण यत्पापं मत्स्यघाती समाप्नुयात् ॥ ११ ॥
 अयोमुखेन काष्ठेन तदेकोद्भेदं लांगली ॥
 पाशको मत्स्यघाती च व्याधः शाकुनिकस्तथा ॥ १२ ॥
 अदाता कर्षकश्चैव पंचैते समभागिनः ॥
 कंडना पेषणी चुल्ली उदकुंभी च मार्जनी ॥ १३ ॥
 पंच सूना गृहस्थस्य अहन्यहनि वर्तते ॥
 वैश्वदेवो बलिर्भिक्षा गोघ्रासो दंतकारकः ॥ १४ ॥
 गृहस्थः प्रत्यहं कुर्यात्सूनादेषैर्न लिप्यते ॥
 वृक्षं छित्त्वा महीं भित्त्वा हत्वा च कृमिकीटकान् ॥ १५ ॥
 कर्षकः खलयज्ञेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
 यो न दद्याद्विजातिभ्यो राशिमूलमुपागतः ॥ १६ ॥
 स चोरः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नं तं विनिर्दिशेत् ॥
 राज्ञे दत्त्वा तु षड्भागं देवानां चैकविंशकम् ॥ १७ ॥
 विप्राणां त्रिंशकं भागं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
 क्षत्रियोऽपि कृषिं कृत्वा देवान्विप्रांश्च पूजयेत् ॥ १८ ॥
 वैश्यः शूद्रस्तथा कुर्यात्कृषिवाणिज्यशिल्पकम् ॥
 विकर्मं कुर्वते शूद्रा द्विजशुश्रूषयोज्झिताः ॥ १९ ॥

भवंत्यल्पायुषस्ते वै निरयं यांत्यसंशयम् ॥

चतुर्णामपि वर्णानामेष धर्मः सनातनः ॥ २० ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अतः शुद्धिं प्रवक्ष्यामि जनने मरणे तथा

दिनत्रयेण शुद्ध्यन्ति ब्राह्मणाः प्रेतसूतके ॥ १ ॥

क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पंचदशाहकैः ॥

शूद्रः शुद्ध्यति मासेन पराशरवचो यथा ॥ २ ॥

उपासने तु विप्रानां भंगशुद्धिश्च जायते ॥

ब्राह्मणानां प्रसूतौ तु देहस्पर्शो विधीयते ॥ ३ ॥

जातौ विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ॥

वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥

एकाहान्छुद्ध्यते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वितः ॥

त्र्यहात्केवलवेदस्तु द्विहीनो दशभिर्दिनैः ॥ ५ ॥

जन्मकर्मपरिभ्रष्टः सन्ध्योपासनवर्जितः ॥

नामधारकविप्रस्तु दशाहं सूतकी भवेत् ॥ ६ ॥

अजा गावो महिष्यश्च ब्राह्मणी नवसूतिकाः ॥

दशरात्रेण संशुद्ध्यन्ते मिष्टं च नवोदकम् ॥ ७ ॥

एकपिंडास्तु दायादाः पृथग्दारानिकेतनाः ॥
 जन्मन्यपि विपत्तौ च तेषां तत्सूतकं भवेत् ॥ ८ ॥
 तावत्तत्सूतकं गोत्रे चतुर्थपुरुषेण तु ॥
 दायाद्विच्छेदमाप्नोति पंचमो वात्मवंशजः ॥ ९ ॥
 चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षाणिशाः पुंसि पंचमे ॥
 षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे तु दिनत्रयात् ॥ १० ॥
 भृग्वग्निमरणे चैव देशांतरमृते तथा ॥
 बाले प्रेते च संन्यस्ते सद्यः शौचं विधीयते ॥ ११ ॥
 देशांतरमृतः कश्चित्सगोत्रः श्रूयते यदि ॥
 न त्रिरात्रमहोरात्रं सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत् ॥ १२ ॥
 देशांतरगतो विप्रः प्रयासात्कालकारितात् ॥
 देहनाशमनुप्राप्तस्तिथिर्न ज्ञायते यदि ॥ १३ ॥
 कृष्णाष्टमी त्वमावास्या कृष्णा चैकादशी च या ॥
 उदकं पिंडदानं च तत्र श्राद्धं च कारयेत् ॥ १४ ॥
 अजातदंता ये बाला ये च गर्भाद्विनिःसृताः ॥
 न तेषामग्निसंस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ॥ १५ ॥
 यदि गर्भो विपद्येत स्रवते वापि योषितः ॥
 यावन्मासं स्थितो गर्भो दिनं तावत्तु सूतकम् ॥ १६ ॥
 आचतुर्थ्याद्भवेत्स्त्रावः पातः पंचमषष्ठयोः ॥
 अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्यादशाहं सूतकं भवेत् ॥ १७ ॥

दंतजातेऽनुजाते च कृतचूडे च संस्थिते ॥
 अमिसंस्करणं तेषां त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ १८ ॥
 आदंताज्जन्मतः सद्य आचूडान्नैशिकी स्मृता ॥
 त्रिरात्रमाव्रतादेशादशरात्रमतः परम् ॥ १९ ॥
 ब्रह्मचारी गृहे येषां हूयते च हुताशनः ॥
 संपर्कं चेन्न कुर्वति न तेषां सूतकं भवेत् ॥ २० ॥
 संपर्काद्दुष्यते विप्रो जनने मरणे तथा ॥
 संपर्काच्च निवृत्तस्य न प्रेतं नैव सूतकम् ॥ २१ ॥
 शिल्पिनः कारुका वैद्या दासीदासाश्च नापिताः ॥
 राजानः श्रोत्रियाश्चैव सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः ॥ २२ ॥
 सव्रतो भ्रत्रपूतश्च आहिताग्निश्च यो द्विजः ॥
 राज्ञश्च सूतकं नास्ति यस्य चेच्छति पार्थिवः ॥ २३ ॥
 उद्यतो निधने दाने आर्तो विप्रो निमंत्रितः ॥
 तदैव ऋषिभिर्दृष्टं यथा कालेन शुद्ध्यति ॥ २४ ॥
 प्रसवे गृहमेधी तु न कुर्यात्संस्करणं यदि ॥
 दशाहाच्छुध्यते माता त्ववगाह्य पिता शुचिः ॥ २५ ॥
 सर्वेषां शावमाशौचं मातापित्रोस्तु सूतकम् ॥
 सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥ २६ ॥
 यदि पत्न्यां प्रसूतायां संपर्कं कुरुते द्विजः ॥
 सूतकं तु भवेत्तस्य यदि विप्रः षडंगवित् ॥ २७ ॥

संपर्काज्जायेत दोषो नान्यो दोषोऽस्ति वै द्विजे ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संपर्कं वर्जयेद्बुधः ॥ २८ ॥

विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वंतरा मृतसूतके ॥

पूर्वसंकल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दुष्यति ॥ २९ ॥

अंतरा तु दशाहस्य पुनर्मरणजन्मनी ॥

तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्पूर्वं न गच्छति ॥ ३० ॥

ब्राह्मणार्थं विपन्नानां बन्दीगोग्रहणे तथा ॥

आहवेषु विपन्नानामेकरात्रमशौचकम् ॥ ३१ ॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमंडलभेदिनौ ॥

परित्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिसुखो हतः ॥ ३२ ॥

यत्र यत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः ॥

अक्षयौल्लभते लोकान्यदि क्लीबं न भाषते ॥ ३३ ॥

सून्यस्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति भास्करः ॥

एष मे मंडलं भित्त्वा परं स्थानं प्रयास्यति ॥ ३४ ॥

यस्तु भग्नेषु सैन्येषु विद्रवत्सु समंततः ॥

परित्राता यदा गच्छेत्स च क्रतुफलं लभेत् ॥ ३५ ॥

यस्य च्छेदक्षतं गात्रं शरमुद्गरयष्टिभिः ॥

देवकन्यास्तु तं वीरं हरन्ति रमयन्ति च ॥ ३६ ॥

देवांगनासहस्राणि शूरमायोधने हतम् ॥

त्वरमाणाः प्रधावन्ति मम भर्ता ममेति च ॥ ३७ ॥

यं यज्ञस्रैस्तपसा च विप्राः स्वर्गेषिणो वात्र यथैव याति ॥

क्षणेन यात्येव हि तत्र वीराः प्राणान्सुयुद्धेन परित्यजन्ति ॥ ३८ ॥

जितेन लभ्यते लक्ष्मीर्मृतेनापि वरांगना ॥

क्षणध्वंसिनि कायेऽस्मिन्का चिन्ता मरणे रणे ॥ ३९ ॥

ललाटदेशे रुधिरं स्रवच्च यस्याहवे तु प्रविशेत वक्रम् ॥

तत्सोमपानेन किलास्य तुल्यं संग्रामयज्ञे विधिवच्च दृष्टम् ॥ ४० ॥

अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः ॥

पदे पदे यज्ञफलमानुषपूर्वाल्लभन्ति ते ॥ ४१ ॥

न तेषामशुभं किञ्चित्पापं वा शुभकर्मणाम् ॥

जलावगाहनात्तेषां सद्यः शौचं विधीयते ॥ ४२ ॥

असगोत्रमबंधुं च प्रेतीभूतं द्विजोत्तमम् ॥

बहित्वा च दहित्वा च प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ ४३ ॥

अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव वा ॥

स्नात्वा सचैतं स्पृष्ट्वाऽग्निं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ४४ ॥

क्षत्रियं मृतमज्ञानाद्ब्राह्मणो योऽनुगच्छति ॥

एकाहमशुचिर्भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ४५ ॥

शवं च वैश्यमज्ञानाद्ब्राह्मणो ह्यनुगच्छति ॥

कृत्वा शौचं द्विरात्रं च प्राणायामान्बडाचरेत् ॥ ४६ ॥

प्रेतीभूतं तु यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ॥
 अनुगच्छेन्नीयमानं त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥ ४७ ॥
 त्रिरात्रे तु ततः पूर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम् ॥
 प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ४८ ॥
 विनिवर्त्य यदा शूद्रा उदकांतमुपस्थिताः ॥
 द्विजैस्तदानुगंतव्या एष धर्मः सनातनः ॥ ४९ ॥
 तस्माद्विजो मृतं शूद्रं न स्पृशेत् च दाहयेत् ॥
 दृष्टे सूर्यावलोकनेन शुद्धिरेषा पुरातनी ॥ ५० ॥
 इति पराशरीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

अतिमानादतिक्रोधात्स्नेहाद्वा यदि वा भयात् ॥
 उद्धर्नीयात्स्त्री पुमान्वा गतिरेषा विधीयते ॥ १ ॥
 पूयशोणितसंपूर्णे त्वंधे तमसि मज्जाति ॥
 षष्टिवर्षसहस्राणि नरकं प्रतिपद्यते ॥ २ ॥
 नाशौचं नोदकं नार्मि नाश्रुपातं च कारयेत् ॥
 वोढारोऽभिप्रदातारः पाशच्छेदकरास्तथा ॥ ३ ॥
 तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्तीत्येवमाह प्रजापतिः ॥
 गोभिर्हतं तथोद्धृष्टं ब्राह्मणेन तु घातितम् ॥ ४ ॥

संस्पृशन्ति तु ये विप्रा वोढारश्वाग्निदाश्च ये ॥
 अन्ये ये चानुगन्तारः पाशच्छेदकराश्च ये ॥ ५ ॥
 तप्तकृच्छ्रेण शुद्धास्ते कुर्युर्ब्राह्मणभोजनम् ॥
 अनडुत्सहितां गां च दद्युर्विप्राय दक्षिणान् ॥ ६ ॥
 अथहमुष्णं पिबेद्भारि अथहमुष्णं पयः पिबेत् ॥
 अथहमुष्णं पिबेत्सर्पिर्वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥ ७ ॥
 षट्पलं तु पिबेदंभस्त्रिपलं तु पयः पिबेत् ॥
 पलमेकं पिबेत्सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते ॥ ८ ॥
 यो वै समाचरेद्भिषः पतितादिष्वकामतः ॥
 पंचाहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ॥ ९ ॥
 मासाद्ध मासमेक वा मासद्वयमथापि वा ॥
 अष्टाद्धमर्द्धमेकं वा भवेदूर्ध्वं हि तत्समः ॥ १० ॥
 त्रिरात्रं प्रथमे पक्षे द्वितीये कृच्छ्रमाचरेत् ॥
 तृतीये चैव पक्षे तु कृच्छ्रं सातपनं चरेत् ॥ ११ ॥
 चतुर्थे दशरात्रं स्यात्पराकः पंचमे मतः ॥
 कुर्याच्चांदायगं षष्ठे सप्तमे त्वेदृषद्वयम् ॥ १२ ॥
 शुद्धयर्थमष्टमे चैव षण्मासं कृच्छ्रमाचरेत् ॥
 पक्षसंख्याप्रमाणेन सुवर्णान्यपि दक्षिणा ॥ १३ ॥
 ऋतुस्नाता तु या नारी भर्तारं नोपसर्पति ॥
 सा मृता नरकं याति विधवा च पुनः पुनः ॥ १४ ॥

ऋतुस्नातां तु यो भार्या सन्निधौ नोपगच्छति ॥
 घोरयां भ्रूणहत्यायां युष्यते नात्र संशयः ॥ १५ ॥
 दरिद्रं व्याधितं धूर्तं भर्तारं याऽवमन्यते ॥
 सा शुनो जायते मृत्वा सूकरी च पुनः पुनः ॥ १६ ॥
 पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत् ॥
 आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥ १७ ॥
 अपृष्ट्वा चैव भर्तारं या नारी कुरुते व्रतम् ॥
 सर्वं तद्राक्षसान्गच्छेदित्येवं मनुरब्रवीत् ॥ १८ ॥
 बांधवानां सजातीनां दुर्वृत्तं कुरुते तु या ॥
 गर्भपातं च या कुर्यान्न तां संभाषयेत्क्वचित् ॥ १९ ॥
 यत्पापं ब्रह्महत्याया द्विगुणं गर्भपातने ॥
 प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति तस्यास्त्यागो विधीयते ॥ २० ॥
 न कार्यमावसथ्येन नाग्निहोत्रेण वा पुनः ॥
 स भवेत्कर्मचांडालो यस्तु धर्मपराङ्मुखः ॥ २१ ॥
 स क्षेत्री लभते वीजं न वीजी भागमर्हति ॥ २२ ॥
 तद्वत्परस्त्रियः पुत्रौ द्वौ सुतौ कुंडगोलकौ ॥
 पत्यौ जीवति कुंडस्तु मृते भर्तारि गोलकः ॥ २३ ॥
 औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिमकः सुतः ॥
 दद्यान्माता पिता वापि स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥ २४ ॥

परिवित्तिः परिवित्ता यया च परिविद्यते ॥
 सर्वे ते नरकं यांति दातृयाजकपंचमाः ॥ २५ ॥
 द्वौ कृच्छ्रौ परिवित्तेस्तु कन्यायाः कृच्छ्र एव च ॥
 कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ दातुस्तु होता चांद्रायणं चरेत् ॥ २६ ॥
 कुम्भामनषण्डेषु गद्गदेषु जडेषु च ॥
 जात्यंधे बधिरे मूके न दोषः परिविंदतः ॥ २७ ॥
 पितृव्यभुत्रः सापत्नः परनारीसुतस्तथा ॥
 दारामिहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने ॥ २८ ॥
 ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव कारयेत् ॥
 अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शंखस्य वचनं यथा ॥ २९ ॥
 नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतितेऽपतौ ॥
 पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥ ३० ॥
 मृते भर्तरि या नारी ब्रह्मचर्यव्रते स्थिता ॥
 सा मृता लभते स्वर्गं यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ ३१ ॥
 तिस्रः कोट्योर्ध्वकोटी च यानि लोमानि मानवे ॥
 तावत्कालं वसेत्स्वर्गे भर्तारं याऽनुगच्छति ॥ ३२ ॥
 व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् ॥
 एवं स्त्री पतिमुद्धृत्य तेनैव सह मोदते ॥ ३३ ॥
 ॥ इति पराशरीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

वृकश्चानशृगालादिदष्टो यस्तु द्विजोत्तमः ॥
 स्नात्वा जपेत्स गापत्रीं पवित्रां वेदमातरम् ॥ १ ॥
 गवां शृंगोदकस्नानान्महानद्योस्तु संगमे ॥
 समुद्रदर्शनाद्वापि शुना दष्टः शुचिर्भवेत् ॥ २ ॥
 वेदविद्याव्रतस्नातः शुना दष्टो द्विजो यदि ॥
 स हिरण्योदके स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ३ ॥
 सव्रतस्तु शुना दष्टो यस्त्रिपात्रमुपावसेत् ॥
 घृतं कुशोदकं पीत्वा व्रतशेषं समापयेत् ॥ ४ ॥
 अव्रतः सव्रतो वापि शुना दष्टो भवेद्विजः ॥
 प्रणिपत्य भवेत्पूतो विप्रैश्चक्षुर्निरीक्षितः ॥ ५ ॥
 शुना घाताऽवलीढस्य नखैर्विलिखितस्य च ॥
 अद्भिः प्रक्षालनं प्रोक्तमग्निना चोपचूलनम् ॥ ६ ॥
 ब्राह्मणी तु शुना दष्टा जंबुकेन वृकेण वा ॥
 उदितं महानक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्भवेत् ॥ ७ ॥
 कृष्णपक्षे यदा सोमो न दृश्येत कदाचन ॥
 यां दिशं व्रजते सोमस्तां दिशं चावलोकयेत् ॥ ८ ॥
 असद्ब्राह्मणके ग्रामे शुना दष्टो द्विजोत्तमः ॥
 वृषं प्रदक्षिणीकृत्य सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत् ॥ ९ ॥

चंडालेन श्वपाकेन गोभिर्विप्रैर्हतो यदि ॥
 आहिताभिर्मृतो विप्रो विषेणात्मा हतो यदि ॥ १० ॥
 दहेत्तं ब्राह्मणं विप्रो लोकामौ मंत्रवर्जितम् ॥
 स्पृष्ट्वा चोह्यं च दग्ध्वा च सर्पिण्डेषु च सर्वदा ॥ ११ ॥
 प्राजापत्यं चरेत्पश्चाद्विप्राणामनुशासनात् ॥
 दग्ध्वास्थीनि पुनर्गृह्य क्षीरैः प्रक्षालयेद्विजः ॥ १२ ॥
 स्वेनाग्निना स्वमंत्रेण पृथगेत्पुनर्दहेत् ॥
 आहिताग्निर्द्विजः कश्चित्प्रवसन्कालचोदितः ॥ १३ ॥
 देहनाशमनुप्राप्तस्तस्याग्निर्वसते गृहे ॥
 प्रेताग्निहोत्रसंस्कारः श्रूयतां मुनिपुंगवाः ॥ १४ ॥
 कृष्णाजिनं समास्तर्पि कुशैस्तु पुरुषाकृतिम् ॥
 षट्शतानि शतं चैव पलाशानां च वृततः ॥ १५ ॥
 चत्वारिंशच्छिरे दद्याच्छतं कंठे तु विन्यसेत् ॥
 बाहुभ्यां दशकं दद्यादंगुलीषु दशैव तु ॥ १६ ॥
 शतं तु जघने दद्याद्विशतं तूदरे तथा ॥
 दद्यादष्टौ वृषणयोः पंच मेढ्रे तु विन्यसेत् ॥ १७ ॥
 एकविंशतिमूरुभ्यां द्विशतं जानुजंघयोः ॥
 पादांगुष्ठेषु दद्यात्षट् यज्ञपात्रं ततो न्यसेत् ॥ १८ ॥

शम्यां शिश्रे विनिक्षिप्य अरणं मुष्कयोरपि ॥
 जुह्वं च दक्षिणे हस्ते वामे तूपभृतं न्यसेत् ॥ १९ ॥
 पृष्ठे तूलखलं दद्यात्पृष्ठे च मुशलं न्यसेत् ॥
 उरसि क्षिप्य दृषदं तंडुलाज्यतिलान्मुखे ॥ २० ॥
 श्रोत्रे च प्रोक्षणीं दद्यादाज्यस्थालीं च चक्षुषोः ॥
 कर्णे नेत्रे मुखे घ्राणे हिरण्यशकलं न्यसेत् ॥ २१ ॥
 अग्निहोत्रोपकरणमशेषं तत्र विन्यसेत् ॥
 असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्येकाहुतिं सकृत् ॥ २२ ॥
 दद्यात्पुत्रोऽथवा भ्राताऽप्यन्यो वापि च बांधवः ॥
 यथा दहनसंस्कारस्तथा कार्यं विचक्षणेः ॥ २३ ॥
 ईदृशं तु विधिं कुर्याद्ब्रह्मलोके गतिः स्मृता ॥
 दहन्ति ये द्विजास्तं तु ते यांति परमां गतिम् ॥ २४ ॥
 अन्यथा कुर्वते कर्म त्वात्मबुद्ध्या प्रचोदिताः ॥
 भवंत्पल्पायुषस्ते वै पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ २५ ॥
 इति पराशरीये धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्राणिहत्यासु निष्कृतिम् ॥
 पराशरेण पूर्वोक्तां मन्वर्थेऽपि च विस्तृताम् ॥ १ ॥

कौंचसारसहंसांश्च चक्रवाकं च कुक्कुटम् ॥
 जालपादं च शरभं हत्वाऽहोरात्रतः शुचिः ॥ २ ॥
 बलाकाटिट्टिभौ वापि शुकपारावतावपि ॥
 अटीनवकघाती च शुद्ध्यते नक्तभोजनात् ॥ ३ ॥
 वृककाककपोतानां सारीतित्तिरघातकः ॥
 अंतर्जले उभे संध्ये प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥
 गृध्रश्येनशशादीनामुलूकस्य च घातकः ॥
 अपक्वाशी दिनं तिष्ठेत्रिकालं मारुताशनः ॥ ५ ॥
 वल्गुलीटिट्टिभानां च कोकिलाखंजरीटके ॥
 लाविकारक्तपक्षेषु शुद्ध्यते नक्तभोजनात् ॥ ६ ॥
 कार्दवचकोराणां पिंगलाकुररस्य च ॥
 भारद्वाजादिकं हत्वा शिवं संपूज्य शुद्ध्यति ॥ ७ ॥
 भेरुंडचाषभासांश्च पारावतकर्पिजलौ ॥
 पक्षिणां चैव सर्वेषामहोरात्रमभोजनम् ॥ ८ ॥
 हत्वा मूषकमाजारीसर्पाजगरडुडुभान् ॥
 कृसरं भोजयेद्विप्राँल्लोहदंडं च दक्षिणाम् ॥ ९ ॥
 वृकजंबुकक्रुक्षाणां तरक्षूणां च घातकः ॥
 तिलप्रस्थं द्विजे दद्याद्वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥ ११ ॥
 गजस्य च तुरंगस्य महिषोष्ट्रनिपातने ॥
 प्रायश्चित्तमहोरात्रं त्रिसंध्यमवगाहनम् ॥ १२ ॥

THE KUPPUSWAMY SASTRI
RESEARCH INSTITUTE,
84, R. H. ROAD, MADRAS - 4

पाराशरस्मृतिः १६.

(२३५)

कुरंगं वानरं सिंहं चित्रं व्याघ्रं च घातयन् ॥
शुद्ध्यते स त्रिरात्रेण विप्राणां तर्पणेन च ॥ १३ ॥
मृगरोहिद्वराहाणामवेर्वस्तस्य घातकः ॥
अफालकृष्टमशनीयादहोरात्रमुपोष्य सः ॥ १४ ॥
एवं चतुष्पदानां च सर्वेषां वनचारिणाम् ॥
अहोरात्रोषितस्तिष्ठेज्जपन्वै जातवेदसम् ॥ १५ ॥
शिल्पिनं कारुषं शूद्रं स्त्रियं वा यस्तु घातयेत् ॥
प्राजापत्यद्वयं कृत्वा वृषैकादश दक्षिणा ॥ १६ ॥
वैश्यं वा क्षत्रियं वापि निर्दोषं योऽभिघातयेत् ॥
सोऽतिकृच्छ्रद्वयं कुर्याद्दोर्विंशदक्षिणां ददेत् ॥ १७ ॥
वैश्यं शूद्रं क्रियासक्तं विकर्मस्थं द्विजोत्तमम् ॥
हत्वा चांद्रायणं तस्य त्रिंशद्वाश्चैव दक्षिणा ॥ १८ ॥
चंडालं हतवान्कश्चिद्ब्राह्मणो यदि कंचन ॥
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं गोद्वयं दक्षिणां ददेत् ॥ १९ ॥
क्षत्रियेणापि वैश्येन शूद्रेणैवेतेरेण च ॥
चंडालस्य वधे प्राप्ते कृच्छ्राद्धेन विशुद्ध्यति ॥ २० ॥
चोरः श्वपाकश्चंडालो विप्रेणाभिहतो यदि ॥
अहोरात्रोषितः स्नात्वा पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ २१ ॥

श्वपाकं चापि चंडालं विप्रः संभाषते यदि ॥

द्विजसंभाषणं कुर्यात्सावित्रीं च सकृज्जपेत् ॥ २२ ॥

चंडालैः सह सुप्त्वा तु त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥

चंडालकपथं गत्वा गायत्रीस्मरणाच्छुचिः ॥ २३ ॥

चंडालदर्शने सद्य आदित्यमवलोकयेत् ॥

चंडालस्पर्शने चैव सचैलं स्नानमाचरेत् ॥ २४ ॥

चंडालखातवापीषु पीत्वा सलिलमग्रतः ॥

अज्ञानाच्चैकनक्तेन त्वहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ २५ ॥

चंडालभाण्डं संस्पृश्य पीत्वा कूपगतं जलम् ॥

गोमूत्रयावकाहारश्चिरात्राच्छुद्धिमाप्नुयात् ॥ २६ ॥

चंडालघटसंस्थं तु यत्तोयं पिबति द्विजः ॥

तत्क्षणात्क्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २७ ॥

यदि न क्षिपते तोयं शरीरे यस्य जीर्यति ॥

प्राजापत्यं न दातव्यं कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ २८ ॥

चरेत्सांतपनं विप्रः प्राजापत्यमनंतरः ॥

तदर्थं तु चरेद्वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥ २९ ॥

भाण्डस्थमंत्यजानां तु जलं दधि पयः पिबेत् ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव प्रमादतः ॥ ३० ॥

ब्रह्मकूर्चोपवासेन द्विजातीनां तु निष्कृतिः ॥

शूद्रस्य चोपवासेन तथा दानेन शक्तिः ॥ ३१ ॥

भुंक्तेऽज्ञानाद्विजश्रेष्ठश्चंडालान्नं कथंचन ॥

गोमूत्रयावकाहारो दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ३२ ॥

एकैकं ग्रासमश्नीयाद्गोभूत्रे यावकस्य च ॥

दशाहं नियमस्थस्य व्रतं तत्तु विनिर्दिशेत् ॥ ३३ ॥

अविज्ञातस्तु चंडालो यत्र वेश्मनि तिष्ठति ॥

विज्ञाते तूपसंन्यस्य द्विजाः कुर्युरनुग्रहम् ॥ ३४ ॥

मुनिवक्त्रोद्भूतान्धर्मान्गायंतो वेदपारगाः ॥

पतंतमुद्धरेयुस्तं धर्मज्ञाः पापसंकरात् ॥ ३५ ॥

दध्ना च सर्पिषा चैव क्षीरगोमूत्रयावकम् ॥

भुंजीत सह भृत्यैश्च त्रिसंध्यमवगाहनम् ॥ ३६ ॥

व्यहं भुंजीत दध्ना च व्यहं भुंजीत सर्पिषा ॥

व्यहं क्षीरेण भुंजीत एकैकेन दिनत्रयम् ॥ ३७ ॥

भावदुष्टं न भुंजीत नोच्छिष्टं कृमिदूषितम् ॥

दधिक्षीरस्य त्रिपलं पलमेकं घृतस्य तु ॥ ३८ ॥

भस्मना तु भवेच्छुद्धिरुभयोः कांस्यताम्रयोः ॥

जलशौचेन वस्त्राणां परित्यागेन मृण्मयम् ॥ ३९ ॥

कुसुंभगुडकार्पासलवणं तैलसर्पिषी ॥

द्वारे कृत्वा तु धान्यानि दद्याद्वेश्मनि पावकम् ॥ ४० ॥

एवं शुद्धस्ततः पश्चात्कुर्याद्ब्राह्मणतर्पणम् ॥

त्रिशतं गा वृषं चैकं दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥ ४१ ॥

पुनर्लेपनखातेन होमजाप्येन शुद्ध्यति ॥
 आधारेण च विप्राणां भूमिदोषो न विद्यत ॥ ४१ ॥
 चंडालैः सह संपर्कं मांसं मासार्द्धमेव वा ॥
 गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥ ४२ ॥
 रजको चर्मकारी च लुब्धकी वेणुजीविनी ॥
 चातुर्वर्ण्यस्य तु गृहे त्वविज्ञातानुतिष्ठति ॥ ४४ ॥
 ज्ञात्वा तु निष्कृतिं कुर्यात्पूर्वोक्तस्यार्द्धमेव तु ॥
 गृहदाहं न कुर्वीत शेषं सर्वं च कारयेत् ॥ ४५ ॥
 गृहस्याभ्यंतरं गच्छेच्चंडालो यदि कस्यचित् ॥
 तमागारादिनिःसार्य मृद्भाटं तु विसर्जयेत् ॥ ४६ ॥
 रसपूर्णं तु मृद्भाटं न त्यजेत्तु कदाचन ॥
 गोमेयेन तु संमिश्रजलैः प्रोक्षेद्गृहं तथा ॥ ४७ ॥
 ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पूयशोणितसंभवे ॥
 कृमिरुत्पद्यते यस्य प्रायाश्चित्तं कथं भवेत् ॥ ४८ ॥
 गवां मूत्रपुरीषेण दधिक्षीरेण सर्पिषा ॥
 ज्यहं स्नात्वा च पीत्वा च कृमिदष्टः शुचिर्भवेत् ॥ ४९ ॥
 क्षत्रियोऽपि सुवर्णस्य पंच माषान्प्रदाय तु ॥
 गोदक्षिणां तु वैश्यस्याप्युपवासं विनिर्दिशेत्
 शूद्राणां नोपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुद्ध्यति ॥ ५० ॥

अच्छिद्रमिति यद्वाक्यं वदन्ति क्षितिदेवताः ॥
 प्रणम्य शिरसा ग्राह्यमग्निष्टोमफलं हि तत् ॥ ५१ ॥
 जपच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं यज्ञकर्मणि ॥
 सर्वं भवति निश्छिद्रं ब्राह्मणैरुपपादितम् ॥ ५२ ॥
 व्याधिव्यसनिनि श्रान्ते दुर्भिक्षे डामरे तथा ॥
 उपवासो व्रतं होमो द्विजसंपादितानि वा ॥ ५३ ॥
 अथवा ब्राह्मणास्तुष्टाः सर्वे कुर्वत्यनुग्रहम् ॥
 सर्वान्कामानवाप्नोति द्विजसंपादितैरिह ॥ ५४ ॥
 दुर्बलेऽनुग्रहः प्रोक्तस्तथा वै बालवृद्धयोः ॥
 ततोऽन्यथा भवेद्दोषस्तस्मान्नानुग्रहः स्मृतः ॥ ५५ ॥
 स्नेहाद्वा यदि वा लोभाद्भयादज्ञानतोऽपि वा ॥
 कुर्वत्यनुग्रहं ये तु तत्पापं तेषु गच्छति ॥ ५६ ॥
 शरीरस्यात्यये प्राप्ते वदन्ति नियमं तु ये ॥
 महत्कार्योपरोधेन नास्वस्थस्य कदाचन ॥ ५७ ॥
 स्वस्थस्य मूढाः कुर्वन्ति वदन्ति नियमं तु ये ॥
 ते तस्य विघ्नकर्तारः पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ ५८ ॥
 स्वयमेव व्रतं कृत्वा ब्राह्मणं योऽवमन्यते ॥
 वृथा तस्योपवासः स्यान्न स पुण्येन युज्यते ॥ ५९ ॥

स एव नियमो ग्राह्यो यमेकोऽपि वदेद्विजः ॥

कुर्याद्वाक्यं द्विजानां तु ह्यन्यथा भ्रूणहा भवेत् ॥ ६० ॥

ब्राह्मणा जंगमं तीर्थं तीर्थभूता हि साधवः ॥

तेषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः ॥ ६१ ॥

ब्राह्मणा यानि भाषन्ते मन्यन्ते तानि देवताः ॥

सर्वदेवमयो विप्रो न तद्वचनमन्यथा ॥ ६२ ॥

उपवासो व्रतं चैव ज्ञानं तीर्थं जपस्तपः ॥

विप्रैः संपादितं यस्य संपूर्णं तस्य तत्फलम् ॥ ६३ ॥

अन्नाद्ये कीटसंयुक्ते मक्षिकाकेशदूषिते ॥

तदन्तरा स्पृशेच्चापस्तदन्नं भस्मना स्पृशेत् ॥ ६४ ॥

भुञ्जानश्चैव यो विप्रः पादं हस्तेन संस्पृशेत् ॥

स्वमुच्छिष्टमसौ भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते भुक्तभाजने ॥ ६५ ॥

पादुकास्थो न भुञ्जति पर्यंकस्थः स्थितोऽपि वा ॥

श्वानचण्डालदृक्चैव भोजनं परिवर्जयेत् ॥ ६६ ॥

यदन्नं प्रतिषिद्धं स्यादन्नशुद्धिस्तथैव च ॥

यथा पराशरेणोक्तं तथैवाहं वदामि वः ॥ ६७ ॥

शृतं द्रोणाढकस्यान्नं काकश्वानोपधातितम् ॥

केनदं शुद्ध्यते चेति ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥ ६८ ॥

काकश्वानावलीढं तु द्रोणान्नं न परित्यजेत् ॥

वेदवेदांगविद्विप्रैर्धर्मशास्त्रानुपालकैः ॥ ६९ ॥

प्रस्था द्वात्रिंशतिद्रोणः स्मृतो विप्रस्य आढकः ॥
 ततो द्रोणाऽऽढकस्यान्नं श्रुतिस्मृतिविदो विदुः ॥ ७० ॥
 काकश्वानावलीढं तु गशाघातं खरेण वा ॥
 स्वरूपमन्नं त्यजेद्विप्रः शुद्धिद्रोणाढके भवेत् ॥ ७१ ॥
 अन्नस्योद्धृत्य तन्मात्रं यच्च लालाहतं भवेत् ॥
 सुवर्णादकमभ्युक्ष्य हुताशेनैव तापयेत् ॥ ७२ ॥
 हुताशनेन संस्पृष्टं सुवर्णसलिलेन च ॥
 स्नेहो वा गोरसो वापि तत्र शुद्धिः कथं भवेत् ॥ ७४ ॥
 अल्पं परित्यजेत्तत्र स्नेहस्योत्पवेनेन च ॥
 अनलज्वाल्या शुद्धिर्गोरसस्य विधीयते ॥ ७५ ॥
 इति पराशरीये धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

अथातो द्रव्यशुद्धिस्तु पराशरवचो यथा ॥
 दारवाणां सुपात्राणां तत्क्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ १ ॥
 मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ॥
 चमसानां ग्रहाणां च शुद्धिः प्रक्षालनेन च ॥ २ ॥
 चरूणां सुक्सुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणा ॥
 भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुद्ध्यति ॥ ३ ॥

रजसा शुद्ध्यते नारी विकलं या न गच्छति ॥
 नदी वेगेन शुद्ध्येत लेपो यदि न दृश्यते ॥ ४ ॥
 वापीकूपतडागेषु दूषितेषु कथंचन ॥
 उद्धृत्य वै कुंभशतं पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ५ ॥
 अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी ॥
 दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ ६ ॥
 प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति ॥
 मासि मासि रजस्तस्याः पिबन्ति पितरोऽनिशम् ॥ ७ ॥
 माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ॥
 त्रयस्ते नरकं याति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ ८ ॥
 यस्तां समुद्बहेत्कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः ॥
 असंभाष्यो ह्यपांक्तियः स विप्रो वृषलीपतिः ॥ ९ ॥
 यः करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः ॥
 स भैक्ष्यभुग्जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्विशुद्ध्यति ॥ १० ॥
 अस्तंगते यदा सूर्ये चांडालं पतितं स्त्रियः ॥
 सूतिकां स्पृशते चैव कथं शुद्धिर्विधीयते ॥ ११ ॥
 जातवेदं सुवर्णं च सोममार्गं विलोक्य च ॥
 ब्राह्मणानुमतश्चैव स्नानं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥ १२ ॥
 स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी ब्राह्मणीं तथा ॥
 तावत्तिष्ठेन्निराहारा विरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥ १३ ॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी क्षत्रियां तथा ॥
 अर्द्धकृच्छ्रं चरेत्पूर्वा पादमेकं त्वनन्तरा ॥ १४ ॥
 स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी वैश्यजां तथा ॥
 पादहीनं चरेत्पूर्वा पादमेकमनन्तरा ॥ १५ ॥
 स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी शूद्रजां तथा ॥
 कृच्छ्रेण शुद्ध्यते पूर्वा शूद्रा दानेन शुद्ध्यति ॥ १६ ॥
 स्नाता रजस्वला या तु चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ॥
 कुर्याद्व्रजोनिवृत्तौ तु दैवपित्र्यादिकर्म च ॥ १७ ॥
 रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहं तु प्रवर्तते ॥
 नाशुचिः सा ततस्तेन तत्स्याद्वैकारिकं मलम् ॥ १८ ॥
 साध्वाचारा न तावत्स्याद्रजो यावत्प्रवर्तते ॥
 रजोनिवृत्तौ गम्या स्त्री गृहकर्मणि चैव हि ॥ १९ ॥
 प्रथमेऽहनि चंडाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ॥
 तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ॥ २० ॥
 आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः ॥
 स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदनं ततः शुद्ध्येत्स आतुरः ॥ २१ ॥
 उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा पुनः ॥
 उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ २२ ॥
 अनुच्छिष्टेन शूद्रेण स्पर्शे स्नानं विधीयते ॥
 तेनोच्छिष्टेन संस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २३ ॥

भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं सुरया यत्र लिप्यते ॥

सुरामात्रेण संस्पृष्टं शुद्ध्यतेऽग्न्युपलेपनैः ॥ २४ ॥

गवाघ्रातानि कांस्यानि श्वकाकोपहतानि च ॥

शुद्ध्यन्ति दशभिः क्षारैः शूद्रोच्छिष्टानि यानि च ॥ २५ ॥

गंडूषं पादशौचं च कृत्वा वै कांस्यभाजने ॥

षण्मासान्धुवि निक्षिप्य उद्धृत्य पुनराहरेत् ॥ २६ ॥

आयसेष्वायसानां च सीसस्यामौ विशोधनम् ॥

दंतमस्थि तथा शृंगं रौप्यं सौवर्णभाजनम् ॥ २७ ॥

मणिपात्राणि शंखश्चेत्येतान्प्रक्षालयेज्जलैः ॥

पाषाणे तु पुनर्धर्ष एषा शुद्धिरुदाहता ॥ २८ ॥

मृन्मये दहनाच्छुद्धिर्धान्यानां मार्जनादपि ॥

वेणुवल्कलचीराणां क्षौमकार्पासवाससाम् ॥ २९ ॥

और्णनेत्रपटानां च प्रोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ ३० ॥

मुंजोपस्करशूर्पाणां शणस्य फलचर्मणाम् ॥

तृणकाष्ठस्य रज्जूनामुदकाभ्युक्षणं मतम् ॥ ३१ ॥

तूलिकाद्युपधानानि रक्तवस्त्रादिकानि च ॥

शोषयित्वार्कतापेन प्रोक्षणाच्छुद्धतामियुः ॥ ३२ ॥

मार्जारमक्षिकाकीटपतंगकृमिदुर्गन्धः ॥

मेध्यामेध्यं स्पृशंतो ये नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत् ॥ ३३ ॥

महीं स्पृष्ट्वा गतं तोयं याश्चाप्यन्योन्यविप्रुषः ॥
 भुक्तोच्छिष्टं तथा स्नेहं नेच्छिष्टं मनुरब्रवीत् ॥ ३४ ॥
 तांबूलेक्षुफलान्येव भुक्ते स्नेहानुलेपने ॥
 मधुपर्के च सोमे च नोच्छिष्टं धर्मतो विदुः ॥ ३५ ॥
 रथ्याकर्द्धमतोयानि नावः पंथास्तृणानि च ॥
 मारुताक्रेण शुद्ध्यन्ति पक्वेष्टकचितानि च ॥ ३६ ॥
 अदुष्टा संतता धारा वातोद्धूताश्च रेणवः ॥
 स्त्रियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन ॥ ३७ ॥
 क्षुते निष्ठीवने चैव दंतोच्छिष्टे तथानृते ॥
 पतितानां च संभाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥ ३८ ॥
 अमिरापश्च वेदाश्च सोमसूर्यानिलास्तथा ॥
 एते सर्वेऽपि विप्राणां श्रोत्रे तिष्ठन्ति दक्षिणे ॥ ३९ ॥
 प्रभासादीनि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा ॥
 विप्रस्य दक्षिणे कर्णे सान्निध्यं मनुरब्रवीत् ॥ ४० ॥
 देशभंगे प्रवासे वा व्याधिषु व्यसनेष्वपि ॥
 रक्षेदेव स्वदेहादि पश्चाद्धर्मं समाचरेत् ॥ ४१ ॥
 येन केन च धर्मेण मृदुना दारुणेन वा ॥
 उद्धरेद्दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत् ॥ ४२ ॥
 आपत्काले तु निस्तीर्णे शौचाचारं न चिंतयेत् ॥
 शुद्धिं समुद्धरेत्पश्चात्स्वस्थो धर्मं समाचरेत् ॥ ४३ ॥
 इति पराशरीये धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

भवां बंधनयोक्त्रेषु भवेन्मृत्युरकामतः ॥

अकामकृतपापस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ १ ॥

वेदवेदांगविदुषां धर्मशास्त्रं विजानताम् ॥

स्वकर्मरतविप्राणां स्वकं पापं निवेदयेत् ॥ २ ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि उपस्थानस्य लक्षणम् ॥

उपस्थितो हि न्यायेन व्रतादेशं समर्हति ॥ ३ ॥

सद्यो निःसंशये पापे न भुंजीतानुपस्थितः ॥

भुंजानो वर्द्धयेत्पापं पर्षद्यत्र न विद्यते ॥ ४ ॥

संशये तु न भोक्तव्यं यावत्कार्याविनिश्चयः ॥

प्रमादस्तु न कर्तव्यो यथैवासंशयस्तथा ॥ ५ ॥

कृत्वा पापं न गूहेत गूह्यमानं विवर्द्धते ॥

स्वल्पं वाथ प्रभूतं वा धर्मविद्वो निवेदयेत् ॥ ६ ॥

तेऽपि पापकृतां वैद्या हंतारश्चैव पाप्मनाम् ॥

व्याधितस्य यथा वैद्या बुद्धिमंतो रुजापहाः ॥ ७ ॥

प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने ह्रीमान्सत्यपरायणः ॥

मुद्गरार्जवसंपन्नः शुद्धिं गच्छेत मानवः ॥ ८ ॥

सचैलं वाग्यतः स्नात्वा क्लिन्नवासाः समाहितः ॥

क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा ततः पर्षदमावजेत् ॥ ९ ॥

उपस्थाय ततः शीघ्रमार्तिमान्धरणिं व्रजेत् ॥
 गात्रैश्च शिरसा चैव न च किञ्चिदुदाहरेत् ॥ १० ॥
 सावित्र्याश्चापि गायत्र्याः संध्योपास्त्यग्निकार्ययोः ॥
 अज्ञानात्कृषिकर्तारो ब्राह्मणा नामधारकाः ॥ ११ ॥
 अव्रतानाममंत्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ॥
 सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥ १२ ॥
 यद्वदन्ति तमोमूढा मूर्खा धर्ममतिद्विदः ॥
 तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तृनधिगच्छति ॥ १३ ॥
 अज्ञात्वा धर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तं ददाति यः ॥
 प्रायश्चित्ती भवेत्पूतः किल्बिषं पर्षदि व्रजेत् ॥ १४ ॥
 चत्वारो वा त्रयो वापि यं ब्रूयुर्वेदपारगाः ॥
 स धर्म इति विज्ञेयो नेतरेस्तु सहस्रशः ॥ १५ ॥
 प्रमाणमार्गं मार्गतो येऽधर्मं प्रवदन्ति वै ॥
 तेषामुद्विजते पापं सद्भूतगुणवादिनाम् ॥ १६ ॥
 यथाश्मनि स्थितं तोयं मारुतार्केण शुद्ध्यति ॥
 एवं परिषदादेशान्नाशयेत्तत्र दुष्कृतम् ॥ १७ ॥
 नैव गच्छति कर्तारं नैव गच्छति पर्षदम् ॥
 मारुतार्कादिसंयोगात्पापं नश्यति तोयवत् ॥ १८ ॥

चत्वारो वा त्रयो वापि वेदवंतोऽग्निहोत्रिणः ॥

ब्राह्मणानां समर्था ये परिषत्सा विधीयते ॥ १९ ॥

अनाहितामयो येऽन्ये वेदवेदांगपारगाः ॥

पंच त्रयो वा धर्मज्ञाः परिषत्सा प्रकीर्तिता ॥ २० ॥

मुनीनामात्मविद्यानां द्विजानां यज्ञयाजिनाम् ॥

वेदव्रतेषु स्नातानामेकोऽपि परिषद्भवेत् ॥ २१ ॥

पंच पूर्वं मया प्रोक्तास्तेषां चासंभवे त्रयः ॥

स्ववृत्तिपरितुष्टा ये परिषत्सा प्रकीर्तिता ॥ २२ ॥

अत ऊर्ध्वं तु ये विप्राः केवलं नामधारकाः ॥

परिषत्त्वं न तेष्वस्ति सहस्रगुणितेष्वपि ॥ २३ ॥

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ॥

ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥ २४ ॥

ग्रामस्थानं यथा शून्यं यथा कूपस्तु निर्जलः ॥

यथा हुतमनमौ च अमंत्रो ब्राह्मणस्तथा ॥ २५ ॥

यथा षण्डोऽफलः स्त्रीषु यथा गौरुषराऽफला ॥

यथा चाज्ञोऽफलं दानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः ॥ २६ ॥

चित्रकर्म यथानेकैरङ्गैरुन्मील्यते शनैः ॥

ब्राह्मण्यमपि तद्विद्धि संस्कारैर्मन्त्रपूर्वकैः ॥ २७ ॥

प्रायश्चित्तं प्रयच्छन्ति ये द्विजा नामधारकाः ॥
 ते द्विजाः पापकर्माणः समेता नरकं ययुः ॥ २८ ॥
 ये पठन्ति द्विजा वेदं पञ्चयज्ञरताश्च ये ॥
 त्रैलोक्यं तारयन्त्येव पञ्चेन्द्रियरता अपि ॥ २९ ॥
 संप्रणीतः श्मशानेषु दीप्तोऽग्निः सर्वभक्षकः ॥
 तथा च वेदाविद्विप्रः सर्वभक्षोऽपि दैवतम् ॥ ३० ॥
 अमेध्यानि तु सर्वाणि प्रक्षिप्यन्ते यथोदके ॥
 तथैव किल्बिषं सर्वं प्रक्षिपेच्च द्विजानले ॥ ३१ ॥
 गायत्रीरहितो विप्रः शूद्रादप्यशुचिर्भवेत् ॥
 गायत्रीब्रह्मतत्त्वज्ञाः संपूज्यन्ते जनैर्द्विजाः ॥ ३२ ॥
 दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न तु शूद्रो जितेन्द्रियः ॥
 कः परित्यज्य गां दुष्टां दुहेच्छीलवतीं खरीम् ॥ ३३ ॥
 धर्मशास्त्ररथारूढा वेदखड्गधरा द्विजाः ॥
 क्रीडार्थमपि यदूब्रूयुः स धर्मः परमः स्मृतः ॥ ३४ ॥
 चातुर्वेद्योऽविकल्पी च अंगविद्धर्मपाठकः ॥
 त्रयश्चाश्रमिणो मुख्याः पर्षदेषा दशावरा ॥ ३५ ॥
 राज्ञश्चानुमते स्थित्वा प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥
 स्वयमेव न कर्तव्यं कर्तव्या स्वरूपनिष्कृतिः ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणांस्तानतिक्रम्य राजा कर्तुं यदीच्छति ॥
 तत्पापं शतधा भूत्वा राजानमनुगच्छति ॥ ३७ ॥
 प्रायश्चित्तं सदा दद्यादेवतायतनाग्रतः ॥
 आत्मकृच्छ्रं ततः कृत्वा जपेद्वै वेदमातरम् ॥ ३८ ॥
 सशिखं वपनं कृत्वा त्रिसंध्यमवगाहनम् ॥
 गवां मध्ये वसेद्रात्रौ दिवा गाश्चाप्यनुव्रजेत् ॥ ३९ ॥
 उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् ॥
 न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥ ४० ॥
 आत्मनो यदि वाऽन्येषां गृहे क्षेत्रेऽथवा खले ॥
 भक्षयन्तीं न कथयेत्पिबन्तं चैव वत्सकम् ॥ ४१ ॥
 पिबन्तीषु पिबेत्तोयं संविशन्तीषु संविशेत् ॥
 पतितां पंकलप्रां वा सर्वप्राणिः समुद्धरेत् ॥ ४२ ॥
 ब्राह्मणार्थं गवार्थं वा यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥
 मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता गोब्राह्मणस्य च ॥ ४३ ॥
 गोवधस्यानुरूपेण प्राजापत्यं विनिर्दिशेत् ॥
 प्राजापत्यं ततः कृच्छ्रं विभजेत चतुर्विधम् ॥ ४४ ॥
 एकाहमेकभक्ताशी एकाहं नक्तभोजनः ॥
 अयाचिताश्येकमहरेकाहं मारुताशनः ॥ ४५ ॥
 दिनद्वयं चैकभक्तो द्विदिनं नक्तभोजनः ॥
 दिनद्वयमयाची स्याद्विदिनं मारुताशनः ॥ ४६ ॥

त्रिदिनं चैकभक्ताशी त्रिदिनं नक्तभोजनः ॥
 दिनत्रयमयाची स्यात्त्रिदिनं मारुताशनः ॥ ४७ ॥
 चतुरहं त्वेकभक्ताशी चतुरहं नक्तभोजनः ॥
 चतुर्दिनमयाची स्याच्चतुरहं मारुताशनः ॥ ४८ ॥
 प्रायश्चित्ते ततस्तीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥
 विप्राणां दक्षिणां दद्यात्पवित्राणि जपेद्विजः ॥ ४९ ॥
 ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु गोघ्नः शुद्ध्येन्न संशयः ॥ ५० ॥
 इति पराशरीये धर्मशास्त्रे ऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

गवां संरक्षणार्थाय न दुष्येद्रोधबंधयोः ॥
 तद्धधं तु न तं विद्यात्कामाकामकृतं तथा ॥ १ ॥
 दंडादूर्ध्वं यदान्येन प्रहाराद्यदि पातयेत् ॥
 प्रायश्चित्तं तदा प्रोक्तं द्विगुणं गोवधे चरेत् ॥ २ ॥
 रोधबंधनयोक्त्राणि घातश्चेति चतुर्विधम् ॥
 एकपादं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बंधने चरेत् ॥ ३ ॥
 योक्त्रेषु तु त्रिपादं स्याच्चरेत्सर्वं निपातने ॥
 गोघाटे वा गृहे वापि दुर्गेष्वप्यसमस्थले ॥ ४ ॥
 नदष्विथ समुद्रेषु त्वन्येषु च नदीमुखे ॥
 दग्धदेशे मृता गावः स्तंभनाद्रोध उच्यते ॥ ५ ॥

योऋदामकारैश्च कंठाभरणभूषणैः ॥

गृहे चापि वने वापि बद्धा स्पाद्रौर्भृता यदि ॥ ६ ॥

तदेव बन्धनं विद्यात्कामाकामकृतं च यत् ॥

हले वा शकटे पंक्तौ पृष्ठे वा पीडितो नरैः ॥ ७ ॥

गोपतिर्मृत्युमाप्नोति योऋो भवति तद्वधः ॥

मत्तः प्रमत्त उन्मत्तश्चेतनो वाऽप्यचेतनः ॥ ८ ॥

कामाकामकृतक्रोधो दंढैर्हन्यादथोपलैः ॥

प्रहता वा मृता वापि तद्धि हेतुर्निपातने ॥ ९ ॥

अंगुष्ठमात्रस्थूलस्तु बाहुमात्रः प्रमाणतः ॥

आर्द्रस्तु सपलाशश्च दंढ इत्यभिधीयते ॥ १० ॥

मूर्च्छितः पतितो वापि दंढेनाभिहतः स तु ॥

उत्थितस्तु यदा गच्छेत्पञ्च सप्त दशाथवा ॥ ११ ॥

ग्रासं वा यदि मृह्नीयात्तोयं वापि पिवद्येदि ॥

पूर्वव्याधयुपसृष्टश्चेत्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥

पिंडस्थे पादमेकं तु द्वौ पादौ गर्भसंमिते ॥

पादोनं व्रतमुद्दिष्टं हत्वा गर्भमचेतनम् ॥ १३ ॥

पादेऽगरोमवपनं द्विपादे श्मश्रुणोऽपि च ॥

त्रिपादे तु शिखावर्जं सशिखं तु निपातने ॥ १४ ॥

पादे वस्त्रयुगं चैव द्विपादे कांस्यभाजनम् ॥

त्रिपादे गोवृषं दद्याच्चतुर्थे गोद्वयं स्मृतम् ॥ १५ ॥

निष्पन्नसर्वगात्रेषु दृश्यते वा सचेतनः ॥

अंगप्रत्यंगसंपूर्णो द्विगुणं गोव्रतं चरेत् ॥ १६ ॥

पाषाणेनैव दंडेन गावो येनाभिधातिताः ॥

शृंगभंगे चरेत्पादं द्वौ पादौ नेत्रवातने ॥ १७ ॥

लांगूले पादकृच्छ्रं तु द्वौ पादावस्थिभंजने ॥

त्रिपादं चैव कर्णे तु चरेत्सर्वं निपातने ॥ १८ ॥

शृंगभंगेऽस्थिभंगे च कटिभंगे तथैव च ॥

यदि जीवति षण्मासान्प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ १९ ॥

व्रणभंगे च कर्तव्यः स्नेहाभ्यंगस्तु पाणिना ॥

यवसश्चोपहर्तव्यो यावद्दृढबलो भवेत् ॥ २० ॥

यावत्संपूर्णसर्वांगस्तावत्तं पोषयेन्नरः ॥

गोरूपं ब्राह्मणशश्रे नमस्कृत्वा विसर्जयेत् ॥ २१ ॥

यद्यसंपूर्णसर्वांगो हीनदेहो भवेत्तदा ॥

गोघातकस्य तस्यार्द्धं प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ २२ ॥

काष्ठलोष्टकपाषाणैः शस्त्रेणैवोद्धतो बलात् ॥

व्यापादयति यो गौं तु तस्य शुद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ २३ ॥

चरेत्सांतपनं काष्ठे प्राजापत्यं तु लोष्टके ॥

तप्तकृच्छ्रं तु पाषाणे शस्त्रेणैवातिकृच्छ्रकम् ॥ २४ ॥

पंच सांतपने गावः प्राजापत्ये तथा त्रयः ॥

तप्तकृच्छ्रे भवंत्यष्टावतिकृच्छ्रे त्रयोदश ॥ २५ ॥

प्रमापणे प्राणभृतां दद्यात्तत्प्रतिरूपकम् ॥

तस्यानुरूपं मूल्यं वा दद्यादित्यब्रवीन्मनुः ॥ २६ ॥

अन्यत्रांकनलक्ष्मभ्यां वाहने मोचने तथा ॥

सायं संगोपनार्थं च न दुष्येद्रोधबंधयोः ॥ २७ ॥

अतिदाहेऽतिधाहे च नासिकाभेदने तथा ॥

नदीपर्वतसंचारे प्रायश्चित्तं विानर्दिशेत् ॥ २८ ॥

अतिदाहे चरेत्पादं द्वौ पादौ वाहने चरेत् ॥

नासिक्ये पादहीनं तु चरेत्सर्वं निपातने ॥ २९ ॥

दहनात्तु विपद्येत अनङ्गान्योऽक्रयंत्रितः ॥

उक्तं पराशरेणैव ह्येकपादं यथाविधि ॥ ३० ॥

रोधनं बन्धनं चैव भारप्रहरणं तथा ॥

दुर्गप्रेरणयोऽक्रं च निमित्तानि वधस्य षट् ॥ ३१ ॥

बंधपाशसुगुप्तांगो म्रियते यदि गोपशुः ॥

भुवने तस्य पापी स्यात्प्रायश्चित्ताद्धर्महति ॥ ३२ ॥

न नारिकेलैर्न च शाणवालैर्न चापि मौजैर्न च बल्कशृङ्खलैः ॥

एतैस्तु गावो न निबंधनीया बद्धा तु तिष्ठेत्परशुं गृहीत्वा ३३

कुशैः काशैश्च बध्नीयादोपशुं दक्षिणामुखम् ॥

पाशलग्नान्निदग्धेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३४ ॥

यदि तत्र भवेत्काष्ठं प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥
 जपित्वा पावनीं देवीं मुच्यते तत्र किल्बिषात् ॥ ३५ ॥
 श्रेयस्कूपवापीषु वृक्षच्छेदेषु पातयन् ॥
 गवाशनेषु विक्रीणस्ततः प्राप्नोति गोवधम् ॥ ३६ ॥
 आराधितस्तु यः कश्चिद्भिन्नकक्षो यदा भवेत् ॥
 श्रवणं हृदयं भिन्नं भग्नो वा कूरसंकटे ॥ ३७ ॥
 कूपादुत्क्रमणे चैव भग्नो वा ग्रीवपादयोः ॥
 स एव म्रियते तत्र त्रीन्नादांस्तु समाचरेत् ॥ ३८ ॥
 कूपखाते तटाबन्धे नदीबन्धे प्रपासु च ॥
 पानीयेषु विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३९ ॥
 कूपखाते तटाखाते दीर्घखाते तथैव च ॥
 स्वल्पेषु धर्मखातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४० ॥
 वेश्मद्वारे निवासेषु यो नरः खातामिच्छति ॥
 स्वकार्ये गृहखातेषु प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ४१ ॥
 निशि बन्धनिरुद्धेषु सर्पघातहतेषु च ॥
 अग्निविशुद्धिपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४२ ॥
 ग्रामघाते शरीरेण वेश्मभंगनिपातने ॥
 अतिवृष्टिहृतादां च प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४३ ॥
 संग्रामेऽपहतानां च ये दग्धा वेश्मकेषु च ॥
 दावामिग्रामघातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४४ ॥

यन्त्रिता गौश्चिकित्सार्थं मूढगर्भविमोचने ॥

यत्ने कृते विपद्येत प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ४२ ॥

व्यापन्नानां बहूनां च रोधने बंधनेऽपि वा ॥

भिषङ्मिथ्यापचारेण प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ४६ ॥

गोवृषाणां विपत्तौ च यावंतः प्रेक्षका जनाः ॥

अनिवारयतां तेषां सर्वेषां पातकं भवेत् ॥ ४७ ॥

एको हतो यैर्बहुभिः समेतैर्न ज्ञायते यस्य हतोऽभिघातात् ॥

दिव्येन तेषामुपलभ्य हंता निवर्तनीयो नृपसन्नियुक्तैः ॥ ४८ ॥

एका चेद्बहुभिः काचिद्देवाद्यापादिता कचित् ॥

पादं पादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक्पृथक् ॥ ४९ ॥

हते तु रुधिरं दृश्यं व्याधिप्रस्तः कृशो भवेत् ॥

लाला भवति दंष्ट्रेषु एवमन्वेषणं भवेत् ॥ ५० ॥

ग्रासार्थं चोदितो वापि ह्यध्वानं नैव गच्छति ॥

मनुना चैवमेकेन सर्वशास्त्राणि जानता ॥

प्रायश्चित्तं तु तेनोक्तं गोघ्नश्चांद्रायणं चरेत् ॥ ५१ ॥

केशानां रक्षणार्थाय द्विगुणं व्रतमाचरेत् ॥

द्विगुणे व्रत आदिष्टे दक्षिणा द्विगुणा भवेत् ॥ ५२ ॥

राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः ॥

प्रकृत्वा वपनं तेषां प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ ५३ ॥

यस्य न द्विगुणं दानं केशश्च परिरक्षितः ॥

तत्पापं तस्य तिष्ठेत त्यक्त्वा च नरकं व्रजेत् ॥ ५४ ॥

यत्किञ्चित्क्रियते पापं सर्वं केशेषु तिष्ठति ॥

सर्वान्केशान्समुद्धृत्य च्छेदयेदंगुलिद्वयम् ॥ ५५ ॥

एवं नारीकुमारीणां शिरसो मुण्डनं स्मृतम् ॥

न स्त्रियां केशवपनं न दूरे शयनासनम् ॥ ५६ ॥

न च गोष्ठ वसेदात्रौ न दिवा गा अनुव्रजेत् ॥

नदीषु संगमे चैव अरण्येषु विशेषतः ॥ ५७ ॥

न स्त्रीणाग्नितनं वाधो व्रतमेवं समाचरेत् ॥

त्रिसंध्यं स्नानमित्युक्तं सुराणामर्चनं तथा ॥ ५८ ॥

बंधुमध्ये व्रतं तासां कृच्छ्राद्यावणादिकम् ॥

गृहेषु सततं तिष्ठेच्छुचिर्नियममाचरेत् ॥ ५९ ॥

इह यो योवधं कृत्वा व्रच्छादयितुमिच्छति ॥

गमयाति नरकं घोरं कालसूत्रमसंशयम् ॥ ६० ॥

विमुक्तो नरकात्तस्मान्मर्त्यलोके प्रजायते ॥

क्लेशो दुःखी च कुष्ठी च सप्तजन्मानि वै नरः ॥ ६१ ॥

तस्मात्प्रकाशयेत्पापं स्वधर्मं सततं चरेत् ॥

स्त्रीबालभृत्यरोगार्तेष्वतिकोपं विवर्जयेत् ॥ ६२ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

चातुर्वर्ण्येषु सर्वेषु हितां वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥
 अगम्यागमने चैव शुद्धौ चांद्रायणं चरेत् ॥ १ ॥
 एकैकं ह्रासयेद्ग्रासं कृष्णे शुक्ले च वर्द्धयेत् ॥
 अमावस्यां न भुंजीत ह्येष चांद्रायणो विधिः ॥ २ ॥
 कुक्कुटांडप्रमाणं तु ग्रासं वै परिकल्पयेत् ॥
 अन्यथा जातदोषेण न धर्मो न च शुद्ध्यते ॥ ३ ॥
 प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥
 गोद्वयं वस्त्रयुग्मं च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥ ४ ॥
 चंडालीं वा श्वपार्कीं वा ह्यनुगच्छति यो द्विजः ॥
 त्रिरात्रमुपवासी च विप्राणामनुशासनात् ॥ ५ ॥
 सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥
 ब्रह्मकूर्चं ततः कृत्वा कुर्याद्ब्राह्मणतर्पणम् ॥ ६ ॥
 गायत्रीं च जपेन्नित्यं दद्याद्गोमिथुनद्वयम् ॥
 विप्राय दक्षिणां दद्याच्छुद्धिमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ७ ॥
 गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोब्रवीत् ॥
 क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा चण्डालीं गच्छतो यदि ॥ ८ ॥
 प्राजापत्यद्वयं कुर्यादद्याद्गोमिथुनद्वयम् ॥ ९ ॥
 श्वपार्कीं वाथ चांडालीं शूद्रो वा यदि गच्छति ॥
 प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं चतुर्गोमिथुनं ददेत् ॥ १० ॥

मातरं यदि गच्छेत्तु भगिनीं स्वसुतां तथा ॥
 एतास्तु मोहितो गत्वा त्रीणि कृच्छ्राणि संचरेत् ॥ ११ ॥
 चांद्रायणत्रयं कुर्याच्छिरश्छेदेन शुद्ध्यति ॥
 मातृष्वसृगभे चैव आत्ममेढ्रनिकृंतनम् ॥ १२ ॥
 अज्ञानेन तु यो गच्छेत्कुर्याच्चांद्रायणद्वयम् ॥
 दश गोमिथुनं दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् ॥ १३ ॥
 पितृदारान्समारुह्य मातुराप्तं च भ्रातृजाम् ॥
 गुरुपत्नीं स्नुषां चैव भ्रातृभार्यां तथैव च ॥ १४ ॥
 मातुलानीं सगोत्रां च प्राजापत्यत्रयं चरेत् ॥
 गोद्वयं दक्षिणां दत्त्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥ १५ ॥
 पशुवेश्यादिगमने महिष्युष्ट्रयौ कर्पीं तथा ॥
 खरीं च शूकरीं गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ १६ ॥
 गोगामी च त्रिरात्रेण गामेकां ब्राह्मणे ददेत् ॥
 महिष्युष्ट्रीखरीगामी त्वहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ १७ ॥
 ढाक्षरे समरे वापि दुर्भिक्षे वा जनक्षये ॥
 बंदिग्राहे भयातो वा सदा स्वस्त्रीं निरीक्षयेत् ॥ १८ ॥
 चण्डालैः सह संपर्कं या नारी कुरुते ततः ॥
 विप्रान्दशवरान्कृत्वा स्वयं दोषं प्रकाशयेत् ॥ १९ ॥
 आकंठसंमिते कूपे गोमयोदककर्मभे ॥
 तत्र स्थित्वा निराहारा त्वहोरात्रेण निष्क्रमेत् ॥ २० ॥

सशिखं वपनं कृत्वा भुंजीयाद्यावकौदनम् ॥
 त्रिरात्रमुपवासित्वा त्वेकरात्रं जले वसेत् ॥ २१ ॥
 शंखपुष्पीलतामूलं पत्रं वा कुसुमं फलम् ॥
 सुवर्णं पंचगव्यं च काथयित्वा पिबेज्जलम् ॥ २२ ॥
 एकभक्तं चरेत्पश्चाद्यावत्पुष्पवती भवेत् ॥
 व्रतं चरति तद्यावत्तावत्संवसते बहिः ॥ २३ ॥
 प्रायश्चित्ते ततश्चोर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥
 गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् ॥ २४ ॥
 चातुर्वर्ण्यस्य नारीणां कृच्छ्रं चाद्रायणं व्रतम् ॥
 यथा भूमिस्तथा नारी तस्मात्तां न तु दूषेयत् ॥ २५ ॥
 बन्दिग्राहेण या भुक्ता हत्वा बद्धा बलाद्भयात् ॥
 कृत्वा सांतपनं कृच्छ्रं शुद्धयेत्पाराशरोऽब्रवीत् ॥ २६ ॥
 सकृद्भुक्ता तु या नारी नेच्छंती पापकर्मभिः ॥
 प्राजारत्येन शुद्धयेत् ऋतुप्रस्रवणेन च ॥ २७ ॥
 पतत्यर्द्धं शरीरस्य यस्य भार्या सुगं पिबेत् ॥
 पतितार्द्धशरीरस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥ २८ ॥
 गायत्रीं जपमानस्तु कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥ २९ ॥
 गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥
 एकगत्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥ ३० ॥
 जारेण जनयेद्गर्भं मृतं त्यक्ते गते पतौ ॥
 तां त्यजेदपरे राष्ट्रे पाततां पापकारिणीम् ॥ ३१ ॥

ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत्परपुंसा समन्विता ॥
 सा तु नष्टा विनिर्दिष्टा न तस्या गमनं पुनः ॥ ३२ ॥
 कामान्मोहाच्च या गच्छेत्त्यक्त्वा बंधून्सुतान्पतिम् ॥
 सापि नष्टा परे लोके मानुषेषु विशेषतः ॥ ३३ ॥
 मदमोहगता नारी क्रोधादंडादिताडिता ॥
 अद्वितीयं गता चैव पुनरागमनं भवेत् ॥ ३४ ॥
 दशमे तु दिने प्राप्ते प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥
 दशाहं न त्यजेन्नारी त्यजेद्वष्टश्रुतां तथा ॥ ३५ ॥
 भर्ता चैव चरेत्कृच्छ्रं कृच्छ्राद्धं चैव बांधवाः ॥
 तेषां भुक्त्वा च पीत्वा च त्वहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥ ३६ ॥
 ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत्परपुंसा विवर्जिता ॥
 गत्वा पुंसां शतं याति त्यजेयुस्तां तु गोत्रिणः ॥ ३७ ॥
 पुंसो यदि गृहं गच्छेत्तदाऽशुद्धं गृहं भवेत् ॥
 पितृमातृगृहं यच्च जारस्यैव तु तद् गृहम् ॥ ३८ ॥
 उल्लिख्य तद् गृहं पश्चात्पंचगव्येन सेचयेत् ॥
 त्यजेच्च मृन्मयं पात्रं वस्त्रं काष्ठं च शोधयेत् ॥ ३९ ॥
 संभाराञ्छोधयेत्सर्वाङ्गोकेशैश्च फलोद्भवान् ॥
 ताम्राणि पंचगव्येन कांस्यानि दशभस्मभिः ॥ ४० ॥
 प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रो ब्राह्मणैरुपपादयेत् ॥
 गोद्वयं दक्षिणां दद्यात्प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ४१ ॥

इतरेषामहोरात्रं पंचगव्यं च शोधनम् ॥

उपवासैर्व्रतैः पुण्यैः स्नानसंध्यार्चनादिभिः ॥ ४२ ॥

जपहोमदयादानैः शुद्ध्यन्ते ब्राह्मणादयः ॥

आकाशं वायुरग्निश्च मेध्यं भूमिगतं जलम् ॥ ४३ ॥

न दुष्पति च दर्भाश्च यज्ञेषु चमसा यथा ॥ ४४ ॥

इति पराशरीये धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

अमेधपरेतो गोमांसं चंडालान्नमथापि वा ॥

यदि भुक्तं तु विप्रेण कृच्छ्रं चांद्रायणं चरेत् ॥ १ ॥

क्षत्रियो वाथ वैश्यश्च दर्धकृच्छ्रं च कायिकम् ॥ २ ॥

पंचगव्यं पिबेच्छूद्रो ब्रह्मकूर्चं पिबेद्विजः ॥

एकद्वित्रिचतुर्गावो दद्याद्विप्राद्यनुक्रमात् ॥ ३ ॥

शूद्रान्नं सूतकान्नं च ह्यभोज्यस्यान्नमेव च ॥

शंकितं प्रतिषिद्धान्नं पूर्वोच्छिष्टं तथैव च ॥ ४ ॥

यदि भुक्तं तु विप्रेण अज्ञानादापदापि वा ॥

ज्ञात्वा समाचरेत्कृच्छ्रं ब्रह्मकूर्चं तु पावनम् ॥ ५ ॥

व्यालैर्नकुलमार्जारैर्नमुच्छिष्टितं यदा ॥

तिलदर्भोदकैः प्रोक्ष्य शुद्ध्यते नात्र संशयः ॥ ६ ॥

शूद्रोऽप्यभोज्यं भुक्तान्नं पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥

क्षत्रियो वापि वैश्यश्च प्राजापत्येन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥

एकपत्तयुपविष्टानां विप्राणां सहभोजने ॥
 यद्येकोऽपि त्यजेत्पात्रं शेषमन्नं न भोजयेत् ॥ ८ ॥
 मोहादभुंजीत यस्तत्र पंक्ताबुच्छिष्टभोजने ॥
 प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रः कृच्छ्रं सातपथं तथा ॥ ९ ॥
 पीयूषं श्वेतलशुनं धृताकफलगृजने ॥
 पलांडुं क्षुनिर्यासान्देवस्वं कवकानि च ॥ १० ॥
 उष्ट्रक्षीरमधीक्षीरमज्ञानादभुंजते द्विजः ॥
 त्रिरात्रमुपवासेन पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ११ ॥
 मंडूकं भक्षयित्वा तु मूषिकामांसमेव च ॥
 ज्ञात्वा विप्रस्त्वहोरात्रं यावकात्रेण शुद्ध्यति ॥ १२ ॥
 क्षत्रियश्चापि वैश्यश्च क्रियावंतौ शुचिव्रतौ ॥
 तद्गृहेषु द्विजैर्भोज्यं हव्यकव्येषु नित्यशः ॥ १३ ॥
 घृतं क्षीरं तथा तैलं गुडं तैलेन पाचितम् ॥
 गत्वा नदीतटे विप्रो भुंजीयाच्छूद्रभाजने ॥ १४ ॥
 मद्यमांसरतं नित्यं नीचकर्मप्रवर्तकम् ॥
 तं शूद्रं वर्जयेद्विप्रः श्वपाकमिष दूरतः ॥ १५ ॥
 द्विजशुश्रूषणरतान्मद्यमांसविवर्जितान् ॥
 स्वकर्मनिरतान्नित्यं ताञ्छूदान्न त्यजेद्विजः ॥ १६ ॥
 अज्ञानादभुंजते विप्राः सूतके मृतकेऽपि वा ॥
 प्रायश्चित्तं कथं तेषां वर्णे वर्णे विनिर्दिशेत् ॥ १७ ॥

गायत्र्यष्टसहस्रेण शुद्धिः स्याच्छूद्रसूतके ॥
 वैश्ये पंचसहस्रेण त्रिसहस्रेण क्षत्रिये ॥ १८ ॥
 ब्राह्मणस्य यदा भुंक्ते द्विसहस्रं तु दापयेत् ॥
 अथवा वामदेव्येन साम्ना चैकेन शुद्ध्यति ॥ १९ ॥
 शुष्कात्रं गोरसं स्नेहं शूद्रवेषेण चाहतम् ॥
 पक्वं विप्रगृहे भुंक्ते भोज्यं तं मनुरब्रवीत् ॥ २० ॥
 आपत्कोल तु विप्रेण भुंक्ते शूद्रगृहे यदि ॥
 मनस्तापेन शुद्ध्यति दुपदां वा सकृज्जपेत् ॥ २१ ॥
 दासनापितगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः ॥
 एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥ २२ ॥
 शूद्रकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः ॥
 असंस्काराद्देवासः संस्कारादेव नापितः ॥ २३ ॥
 क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां समुत्पन्नस्तु यः सुतः ॥
 स गोपाल इति ख्यातो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥ २४ ॥
 वैश्यकन्यासमुद्भूतो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः ॥
 स हार्दिक इति ज्ञेयो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥ २५ ॥
 भांडस्थितमभोज्येषु जलं दधि घृतं पयः ॥
 अकामतस्तु यो भुंक्ते प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ॥ २६ ॥
 ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा तूपसर्पति ॥
 ब्रह्मकृच्चोपवासेन याज्यवर्णस्य निष्कृतिः ॥ २७ ॥

शूद्राणां नोपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुद्ध्यति ॥

ब्रह्मकूर्चमहोरात्रं श्वपाकमपि शोधयेत् ॥ २८ ॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥

निर्दिष्टं पंचगव्यं च पवित्रं पापशोधनम् ॥ २९ ॥

गोमूत्रं कृष्णवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम् ॥

पयश्च ताम्रवर्णाया रक्ताया गृह्यते दधि ॥ ३० ॥

कपिलाया घृतं ग्राह्यं सर्वं कापिलमेव वा ॥

मूत्रमेकपलं दद्यादंगुष्ठार्धं तु गोमयम् ॥ ३१ ॥

क्षीरं सप्तपलं दद्याद्दधि त्रिपलमुच्यते ॥

घृतमेकपलं दद्यात्पलमेकं कुशोदकम् ॥ ३२ ॥

गायत्र्यादाय गोमूत्रं गंधद्वारेति गोमयम् ॥

आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिकाष्णस्तथा दधि ॥ ३३ ॥

तेजोऽग्निं शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम् ॥

पंचगव्यमृचा पूतं स्थापयेदग्निसन्निधौ ॥ ३४ ॥

आपोहिष्ठेति चालोड्य मानस्तोकेति मंत्रयेत् ॥

सप्तावरासु ये दर्भा अच्छिन्नाग्राः शुक्लविषः ॥ ३५ ॥

एतैरुद्धृत्य होतव्यं पंचगव्यं यथाविधि ॥

इरावती इदंविष्णुर्मानस्तोके च शंखती ॥ ३६ ॥

एताभिश्चैव होतव्यं द्रुतशेषं पिबेद्विजः ॥

आलोड्य प्रणवेनैव निर्मथ्य प्रणवेन तु ॥ ३७ ॥

उद्धृत्य प्रणवेनैवं पिवेच्च प्रणवेन तु ॥

यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति देहिनाम् ॥ ३८ ॥

ब्रह्मकूर्चं दहेत्सर्वं यथैवाग्निरिवंधनम् ॥

पवित्रं त्रिषु लोकेषु देवताभिरधिष्ठितम् ॥ ३९ ॥

वरुणश्चैव गोमूत्रे गोमये हव्यवाहनः ॥

दधि वायुः समुद्दिष्टः सोमः क्षीरे घृते रविः ॥ ४० ॥

पिबतः पतितं तोयं भाजने मुखनिःसृतम् ॥

अपेयं तद्विजानीयाद्भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ ४१ ॥

कूपे च पतितं दृष्ट्वा श्वशृगालौ च मर्कटम् ॥

अस्थिचर्मादिपतितः पीत्वाऽमेध्या अपो द्विजः ॥ ४२ ॥

नारं तु कुणपं क्काकं विड्वराहं खरोष्ट्रकम् ॥

गावयं सौप्रतीकं च मायूरं खड्गकं तथा ॥ ४३ ॥

वैयाघ्रमार्क्षं सैहं वा कूपे यदि निमज्जति ॥

तडागस्याप्यदुष्टस्य पीतं स्यादुदकं यदि ॥ ४४ ॥

प्रायश्चित्तं भवेत्पुंशः क्रमेणैतेन सर्वशः ॥

विप्रः शुध्येत्रिरात्रेण क्षत्रियस्तु दिनद्वयात् ॥ ४५ ॥

एकाहेन तु वैश्यस्तु शूद्रो नक्तेन शुद्ध्यति ॥ ४६ ॥

परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्य च ॥

अपचस्य च भुक्त्वात्रिं द्विजश्चांद्रायणं चरेत् ॥ ४७ ॥

अपचस्य तु यद्दानं दातुरस्य कुतः फलम् ॥

दाता प्रतिगृहीता च द्वौ तौ निरयगामिनौ ॥ ४८ ॥

गृहीत्वामिं समारोप्य पंचयज्ञान्न निर्वपेत् ॥
 परपाकनिवृत्तोऽसौ मुनिभिः परिकीर्तितः ॥ ४९ ॥
 पंचयज्ञान्स्वयं कृत्वा परान्नोपजीवति ॥
 सततं प्रातरुत्थाय परपाकरतस्तु सः ॥ ५० ॥
 गृहस्थधर्मो यो विप्रो ददाति परिवर्जितः ॥
 ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैरपचः परिकीर्तितः ॥ ५१ ॥
 युगे युगे तु ये धर्मास्तेषु तेषु च ये द्विजाः ॥
 तेषां निंदा न कर्तव्या युगरूपा हिते द्विजाः ॥ ५२ ॥
 हुंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारं च गरीयसः ॥
 ज्ञात्वा तिष्ठन्नहःशेषमभिवाद्य प्रसादयेत् ॥ ५३ ॥
 ताडयित्वा तृणेनापि कंठे बद्धापि वाससा ॥
 विवादेनापि निर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत् ॥ ५४ ॥
 अवगूर्य त्वहोरात्रं त्रिरात्रं क्षितिपातने ॥
 अतिकृच्छ्रं च रुधिरं कृच्छ्रोऽभ्यंतरशोणिते ॥ ५५ ॥
 नवाहमतिकृच्छ्री स्यात्पाणिपूरान्नभोजनः ॥
 त्रिरात्रमुपवासः स्यादतिकृच्छ्रः स उच्यते ॥ ५६ ॥
 सर्वेषामेव पापानां संकरे समुपस्थिते ॥
 दशसाहस्रमभ्यस्ता गायत्री शोधनं परम् ॥ ५७ ॥
 इति पराशरीये धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

दुःस्वप्नं यदि पश्येत्तु वांते वा क्षुरकर्मणि ॥
 मैथुने प्रेतधूम्रे च स्नानमेव विधीयते ॥ १ ॥
 अज्ञानात्प्राश्य विष्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च ॥
 पुनः संस्कारमर्हति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ २ ॥
 अजिनं मेखला दंडो भैक्षचर्या व्रतानि च ॥
 निवर्त्तते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि ॥ ३ ॥
 विष्मूत्रस्य च शुद्ध्यर्थं प्राजापत्यं समाचरेत् ॥
 पंचगव्यं च कुर्वीत स्नात्वा पीत्वा शुचिर्भवेत् ॥ ४ ॥
 जलाम्पितने चैव प्रव्रज्यानाशकेषु च ॥
 प्रत्यवसितवर्णानां कथं शुद्धिर्विधीयते ॥ ५ ॥
 प्राजापत्यद्वयेनैव तीर्थाभिगमनेन च ॥
 वृषैकादशदानेन वर्णाः शुद्ध्यन्ति ते त्रयः ॥ ६ ॥
 ब्राह्मणस्य प्रवक्ष्यामि वनं गत्वा चतुष्पथे ॥
 सशिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ७ ॥
 गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् ॥
 मुच्यते तेन पापेन ब्राह्मणत्वं च गच्छति ॥ ८ ॥
 स्नानानि पंच पुण्यानि कीर्तितानि मनीषिभिः ॥
 आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं वायव्यं दिव्यमेव च ॥ ९ ॥

ओमेयं भस्मना स्नानमवगाह्य तु वारुणम् ॥
 आपोहिष्ठेति च ब्राह्मं वायव्यं गोरजः स्मृतम् ॥ १० ॥
 यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद्विष्यमुच्यते ॥
 तत्र स्नात्वा तु गंगायां स्नातो भवति मानवः ॥ ११ ॥
 स्नातुं यातं द्विजं सर्वे देवाः पितृगणैः सह ॥
 वायुभूतास्तु गच्छन्ति तृषार्ताः सलिलार्थिनः ॥ १२ ॥
 निराशास्ते निवर्त्तन्ते वस्त्रनिष्पीडने कृते ॥
 तस्मान्न पीडयेद्वस्त्रमकृत्वा पितृतर्पणम् ॥ १३ ॥
 रोमकूपेष्ववस्थाप्य यस्तिलैस्तर्पयेत्पितॄन् ॥
 तर्पितास्तेन ते सर्वे रुधिरेण मलेन च ॥ १४ ॥
 अवधूनोति यः केशान्स्नात्वा प्रस्रवतो द्विजः ॥
 आचामेद्वा जलस्थोऽपि स बाह्यः पितृदैवतैः ॥ १५ ॥
 शिरः प्रावृत्य कंठं वा मुक्तकक्षशिखोऽपि वा ॥
 विना यज्ञोपवीतेन आचांतोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ १६ ॥
 जले स्थलस्थो नाचामेज्जलस्थश्चेद्बहिः स्थले ॥
 उभे स्पृष्ट्वा समाचामेदुभयत्र शुचिर्भवेत् ॥ १७ ॥
 स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्पणे ॥
 आचांतः पुनराचामेद्वासौ विपरिधाय च ॥ १८ ॥
 क्षुते निष्ठीवने चैव दंतोच्छिष्टे तथाऽनृते ॥
 पतितानां च संभाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥ १९ ॥

भास्करस्य करैः पूतं दिवा स्नानं प्रशस्यते ॥
 अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात् ॥ २० ॥
 मरुतो वसवो रुद्रा आदित्याश्चाथ देवताः ॥
 सर्वे सोमे प्रलीयन्ते तस्मादानं तु संग्रहे ॥ २१ ॥
 खलयज्ञे विवाहे च संक्रांतौ ग्रहणे तथा ॥
 शर्वर्ण्या दानमस्त्येव नान्यत्र तु विधीयते ॥ २२ ॥
 पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा चात्ययधर्मणि ॥
 राहोश्च दर्शने दानं प्रशस्तं नान्यदा निशि ॥ २३ ॥
 महानिशा तु विज्ञेया मध्यस्थं प्रहरद्वयम् ॥
 प्रदोषपश्चिमौ यामौ दिनवत्स्नानमाचरेत् ॥ २४ ॥
 चैत्यवृक्षश्रितिः पूयश्चंडालः सोमविक्रयी ॥
 एतांस्तु ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ॥ २५ ॥
 अस्थिसंचयनात्पूर्वं रुदित्वा स्नानमाचरेत् ॥
 अंतर्दशाहे विप्रस्य हनूध्वमाचमनं स्मृतम् ॥ २६ ॥
 सर्वं गंगासमं तोयं राहुग्रस्ते दिवाकरं ॥
 सोमग्रहे तथैवोक्तं स्नानदानादिकर्मसु ॥ २७ ॥
 कुशैः पूतं भवेत्स्नानं कुशेनोपस्पृशेद्विजः ॥
 कुशेन चोद्धृतं तोयं सोमपानसमं भवेत् ॥ २८ ॥
 अभिकार्यात्परिभ्रष्टाः संध्योपासनवर्जिताः ॥
 चेदं चैवानधीयानाः सर्वे ते वृषलाः स्मृताः ॥ २९ ॥

तस्मादृषलभीतेन ब्राह्मणेन विशेषतः ॥

अध्येतव्योऽप्येकदेशो यदि सर्वं न शक्यते ॥ ३० ॥

शूदान्नरसपुष्टस्याधीयमानस्य नित्यशः ॥

जपतो जुह्वतो वापि गतिरूर्ध्वा न विद्यते ॥ ३१ ॥

शूदान्नं शूद्रसंपर्कः शूद्रेण तु सहासनम् ॥

शूद्राज्ज्ञानागमश्चापि ज्वलंतमपि पातयेत् ॥ ३२ ॥

यः शूद्र्या पाचयेन्नित्यं शूद्री च गृहमेधिनी ॥

वार्जितः पितृदेवेभ्यो रौरवं याति स द्विजः ॥ ३३ ॥

मृतसूतकपुष्टांगं द्विजं शूदान्नभोजिनम् ॥

अहं तं न विजानामि कां कां योनिं गमिष्यति ॥ ३४ ॥

गृध्रो द्वादशजन्मानि दशजन्मानि सूकरः ॥

श्वयोनौ सप्तजन्मानि हीत्पेवं मनुरब्रवीत् ॥ ३५ ॥

दक्षिणार्थं तु यो विप्रः शूद्रस्य जुहुयाद्धविः ॥

ब्राह्मणस्तु भवेच्छूद्रः शूद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत् ॥ ३६ ॥

मौनव्रतं समाश्रित्य आसीनो न वदेद्विजः ॥

भुंजानो हि वदेद्यस्तु तदन्नं परिवर्जयेत् ॥ ३७ ॥

अर्द्धभुक्ते तु यो विप्रस्तस्मिन्पात्रे जलं पिबेत् ॥

हतं दैवं च पित्र्यं च ह्यात्मानं चोपघातयेत् ॥ ३८ ॥

भुंजानेषु तु विप्रेषु योऽग्रे पात्रं विमुंचति ॥

स मूढः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नः स खलूच्यते ॥ ३९ ॥

भाजनेषु च तिष्ठत्सु स्वस्ति कुर्वन्ति ये द्विजाः ॥
 न देवास्तृप्तिमायांति निराशाः पितरस्तथा ॥ ४० ॥
 अस्नात्वा वै न भुञ्जीत तथैवामिमपूज्य च ॥
 न पर्णपृष्ठे भुञ्जीत रात्रौ दीपं विना तथा ॥ ४१ ॥
 गृहस्थस्तु दयायुक्तो धर्ममेवानुचितयेत् ॥
 पोष्यवर्गार्थसिद्धयर्थं न्यायवर्ती स बुद्धिमान् ॥ ४२ ॥
 न्यायोपार्जितवित्तेन कर्त्तव्यं ह्यात्मरक्षणम् ॥
 अन्यायेन तु यो जीवेत्सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ ४३ ॥
 अमिचित्कपिला सत्री राजा भिक्षुर्महोदधिः ॥
 दृष्टमात्राः पुनंत्येते तस्मात्पश्येत्तु नित्यशः ॥ ४४ ॥
 अरणिं कृष्णमार्जारं चन्दनं सुमणिं घृतम् ॥
 तिलान्कृष्णाजिनं छागं गृहे चैतानि रक्षयेत् ॥ ४५ ॥
 गवां शतं सैकवृषं यत्र तिष्ठत्ययं त्रितम् ॥
 तत्क्षेत्रं दशगुणितं गोचर्म परिकीर्तितम् ॥ ४६ ॥
 ब्रह्महत्यादिभिर्मर्त्यो मनोवाक्कायकर्मभिः ॥
 एतद्गोचर्मदानेन मुच्यते सर्वाकिल्बिषैः ॥ ४७ ॥
 कुटुंबिने दरिदाय श्रोत्रियाय विशेषतः ॥
 यद्दानं दीयते तस्मै तद्दानं शुभकारकम् ॥ ४८ ॥
 वापीकूपतडागाद्यैर्वाजपेयशतैर्मखैः ॥
 गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुद्ध्यति ॥ ४९ ॥

अष्टादशदिनादर्धास्नानमेव रजस्वला ॥

अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं स्यादुशना मुनिरब्रवीत् ॥ ५० ॥

युगं युगद्वयं चैव त्रियुगं च चतुर्युगम् ॥

चण्डालसूतिकोदक्यापतितानामधः क्रमात् ॥ ५१ ॥

ततः सन्निधिमात्रेण सचैलं स्नानमाचरेत् ॥

स्नात्वावलोकयेत्सूर्यमज्ञानात्स्पृशते यदि ॥ ५२ ॥

विद्यमानेषु हस्तेषु ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ॥

तोयं पिबति वक्त्रेण श्वयोनौ जायते ध्रुवम् ॥ ५३ ॥

यस्तु क्रुद्धः पुमान्भूयाज्जायायास्तु अगम्यताम् ॥

पुनरिच्छति चेदेनां विप्रमध्ये तु श्रावयेत् ॥ ५४ ॥

श्रांतः क्रुद्धस्तमोऽथो वा क्षुत्पिपासाभयार्दितः ॥

दानं पुण्यमकृत्वा वा प्रायश्चित्तं दिनत्रयम् ॥ ५५ ॥

उपस्पृशेन्निषवणं महानद्युपसंगमे ॥

चीर्णाति चैव गां दद्याद्ब्राह्मणान्भोजयेद्दश ॥ ५६ ॥

दुराचारस्य विप्रस्य निषिद्धाचरणस्य च ॥

अत्रं भुक्त्वा द्विजः कुर्याद्दिनमेकमभोजनम् ॥ ५७ ॥

सदाचारस्य विप्रस्य तथा वेदांगवेदिनः ॥

भुक्तान्नं मुच्यते पापादहोरात्रांतरान्नरः ॥ ५८ ॥

ऊर्ध्वोच्छिष्टमधोच्छिष्टमंतरिक्षमृतौ तथा ॥

कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत ह्यशौचमरणे तथा ॥ ५९ ॥

कृच्छ्रं देव्ययुतं चैव प्राणायामशतद्वयम् ॥

पुण्यतीर्थे चार्दशिराः स्नानं द्वादशसंख्यया ॥ ६० ॥

द्वियोजनं तीर्थयात्रा कृच्छ्रमेकं प्रकल्पितम् ॥ ६१ ॥

गृहस्थः कामतः कुर्यादेतसः स्वलनं यदि ॥

सहस्रं तु जपेद्देव्याः प्राणायामैस्त्रिभिः सह ॥ ६२ ॥

चतुर्विद्योपपन्नस्तु विधिवद्ब्रह्मघातके ॥

समुद्रसेतुगमनं प्रायश्चित्तं समादिशेत् ॥ ६३ ॥

सेतुबंधपथे भिक्षां चातुर्वर्ण्यात्समाचरेत् ॥

वर्जयित्वा विकर्मस्थांश्छत्रोपानहवर्जितः ॥ ६४ ॥

अहं दुष्कृतकर्मा वै महापातककारकः ॥

गृहद्वारेषु तिष्ठामि भिक्षार्थी ब्रह्मघातकः ॥ ६५ ॥

गोकुलेषु वसेच्चैव ग्रामेषु नगरेषु च ॥

तपोवनेषु तीर्थेषु नदीप्रस्रवणेषु च ॥ ६६ ॥

पतेषु ख्यापयन्नेनः पुण्यं गत्वा तु सागरम् ॥

दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ॥ ६७ ॥

रामचंद्रसमादिष्टं नलसंचयसंचितम् ॥

सेतुं दृष्ट्वा समुद्रस्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ६८ ॥

सेतुं दृष्ट्वा विशुद्धात्मा त्ववगाहेत सागरम् ॥
 यजेत वाश्वमेधेन राजा तु पृथिवीपतिः ॥ ६९ ॥
 पुनः प्रत्यागतो वेश्म वासार्थमुपसर्पति ॥
 सपुत्रः सहभृत्यश्च कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ ७० ॥
 गाश्चैकशतं दद्याच्चातुर्विद्येषु दक्षिणाम् ॥
 ब्राह्मणानां प्रसादेन ब्रह्महा तु विमुच्यते ॥ ७१ ॥
 विध्यादुत्तरतो यस्य संवासः परिकीर्तितः ॥
 पराशरमतं तस्य सेतुबंधस्य दर्शनात् ॥ ७२ ॥
 सवनस्थां स्त्रियं हत्वा ब्रह्महत्यावतं चरेत् ॥ ७३ ॥
 सुरापश्च द्विजः कुर्यान्नदीं गत्वा समुद्रगाम् ॥
 चांद्रायणे ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ ७४ ॥
 अनडुत्सहितां गां च दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥ ७५ ॥
 सुरापानं सकृत्कृत्वा अग्निवर्णां सुरां पिबेत् ॥
 स पावयेदिहात्मानमिह लोके परत्र च ॥ ७६ ॥
 अपहृत्य सुवर्णं तु ब्राह्मणस्य ततः स्वयम् ॥
 गच्छेन्मुशलमादाय राजानं स्ववधाय तु ॥ ७७ ॥
 हतः शुद्धिमवाप्नोति राज्ञाऽसौ मुक्त एव च ॥
 कामतस्तु कृतं यत्स्यान्नान्यथा बधमर्हति ॥ ७८ ॥

आसनाच्छयनाद्यानात्संभाषात्सहभोजनात् ॥

संक्रामंतीह पापानि तैलबिंदुरिवांभसि ॥ ७९ ॥

चांद्रायणं यावकं च तुलापुरुष एव च ॥

गवां चैवानुगमनं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ८० ॥

एतत्पाराशरं शास्त्रं श्लोकानां शतपंचकम् ॥

द्विर्नवत्या समायुक्तं धर्मशास्त्रस्य संग्रहः ॥ ८१ ॥

यथाध्ययनकर्माणि धर्मशास्त्रमिदं तथा ॥

अध्येतव्यं प्रयत्नेन निपतं स्वर्गकामिना ॥ ८२ ॥

इति श्रीपराशरीये धर्मशास्त्रे सकलप्रायश्चित्तनिर्णये पं० श्यामसुन्दर

लालत्रिपाठिकृत-भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इति पाराशरस्मृतिः समाप्ता ॥ ११ ॥



श्रीः।

व्यासस्मृतिः १२.

प्रथमोऽध्यायः १.

वाराणस्यां सुखासीनं वेदव्यासं तपोनिधिम् ॥
पप्रच्छुर्मुनयोऽभ्येत्य धर्मान्वर्णव्यवस्थितान् ॥ १ ॥
स पृष्टः स्मृतिमान्स्मृत्वा स्मृतिं वेदार्थगर्भिताम् ॥
उवाचाथ प्रसन्नात्मा मुनयः श्रूयतामिति ॥ २ ॥
यत्र यत्र स्वभावेन कृष्णसारो मृगः सदा ॥
चरते तत्र वेदोक्तो धर्मो भवितुमर्हति ॥ ३ ॥
श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते ॥
तत्र श्रौतं प्रमाणं तु तयोर्द्विधे स्मृतिर्वरा ॥ ४ ॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥
श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तधर्मयोग्यास्तु नेतरे ॥ ५ ॥
शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्वर्ममर्हति ॥
वेदमंत्रस्वधास्वाहावषट्कारादिभिर्विना ॥ ६ ॥
विप्रवद्विप्रवित्रासु क्षत्रवित्रासु क्षत्रवत् ॥
जातकर्माणि कुर्वीत ततः शूद्रासु शूद्रवत् ॥ ७ ॥

वैश्यासु विपक्षत्राभ्यां ततः शूद्रासु शूद्रवत् ॥

अथमादुत्तमायां तु जातः शूद्राश्रमः स्मृतः ॥ ८ ॥

ब्राह्मण्यां शूद्रजनितश्चण्डालो धर्मवर्जितः ॥ ९ ॥

कुमारीसंभवस्त्वेकः सगोत्रायां द्वितीयकः ॥

ब्राह्मण्यां शूद्रजनितश्चण्डालस्त्रिविधः स्मृतः ॥ १० ॥

वर्द्धकिर्नापितो गोप आशायः कुंभकारकः ॥

घणिकिरातकायस्थमालाकारकुटुंबिनः ॥

वरदो मेदचण्डालदासश्चपचकोलकाः ॥ ११ ॥

एतैस्त्यजाः समाख्याता ये चान्ये च गवाशनाः ॥

एषां संभाषणात्ज्ञानं दर्शनादर्कवीक्षणम् ॥ १२ ॥

गर्भाधानं पुंसवनं स्त्रीमंतो जातकर्म च ॥

नाभक्रियानिष्क्रमणेऽन्नाशनं वपनक्रिया ॥ १३ ॥

कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारंभक्रियाविधिः ॥

केशांतः स्नानमुद्वाहो विवाहामिपरिग्रहः ॥ १४ ॥

त्रेतामिसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः ॥

नवैताः कर्णवेधांता मंत्रवर्जं क्रियाः स्त्रियाः ॥ १५ ॥

विवाहो मंत्रतस्तस्याः शूद्रस्यामंत्रतो दश ॥ १६ ॥

गर्भाधानं प्रथमतस्तृतीये मासि पुंसवः ॥

स्त्रीमंतश्चाष्टमे मासि जाते जातक्रिया भवेत् ॥ १७ ॥

एकादशेऽहि नामार्कस्येक्षा मासि चतुर्थके ॥

षष्ठे मास्यन्नमश्रीयाच्चूडाकर्म कुलोचितम् ॥ १८ ॥

कृतचूडे च बाले हि कर्णवेधो विधीयते ॥

विप्रो गर्भाष्टमे वर्षे क्षत्र एकादशे तथा ॥ १९ ॥

द्वादशे वैश्यजातिस्तु व्रतोपनयमर्हति ॥

तस्य प्राप्तव्रतस्यायं कालः स्याद्विगुणाधिकः ॥ २० ॥

वेदव्रतच्युतो व्रात्यः स व्रात्यस्तोममर्हति ॥ २१ ॥

द्वे जन्मनी द्विजातीनां मातुः स्यात्प्रथमं तयोः ॥

द्वितीयं छंदसां मातुर्ग्रहणाद्विधिवद्गुरोः ॥ २२ ॥

एवं द्विजातिमापन्नो विमुक्तो वान्यदोषतः ॥

श्रुतिस्मृतिपुराणानां भवेदध्ययनक्षमः ॥ २३ ॥

उपनीतो गुरुकुले वसेन्नित्यं समाहितः ॥

विभृयादंडकौपीनोपवीताजिन्ममेखलाः ॥ २४ ॥

पुण्येऽहि गुर्वनुज्ञातः कृतमंत्राद्भुतिक्रियः ॥

स्मृत्वोंकारं च गायत्रीमारभेद्वेदमादितः ॥ २५ ॥

शौचाचारविचारार्थं धर्मशास्त्रमपि द्विजः ॥

पठेत गुरुतः सम्यक्कर्म तद्दिष्टमाचरेत् ॥ २६ ॥

ततोऽभिवाद्य स्थविरान्गुरुं चैव समाश्रयेत् ॥

स्वाध्यायार्थं तदापन्नः सर्वदा हितमाचरेत् ॥ २७ ॥

नापक्षितोऽपि भाषेत नाव्रजेत्ताडितोऽपि वा ॥

विद्वेषमथ पैशुन्यं हिंसनं चार्कवीक्षणम् ॥ २८ ॥

तौर्यत्रिकानृतोन्मादपरिवादानलंक्रियाम् ॥
 अञ्जनोद्धर्तनादर्शस्रग्विलेपनयोषितः ॥ २९ ॥
 वृथाऽनमसंतोषं ब्रह्मचारी विवर्जयेत् ॥
 ईषच्चलितमध्याह्नेऽनुज्ञातो गुरुणा स्वयम् ॥ ३० ॥
 अलोलुपश्चरेद्भैक्षं वृत्तिषुत्तमवृत्तिषु ॥
 सद्यो भिक्षान्नमादाय वित्तवत्तदुपस्पृशेत् ॥ ३१ ॥
 कृतमाध्याह्निकोऽश्रियादनुज्ञातो यथाविधि ॥
 नाद्यादेकान्नमुच्छिष्टं भुक्त्वा चाचामितामियात् ॥ ३२ ॥
 नान्याद्भिक्षितमादद्यादापन्नो द्रविणादिकम् ॥
 अनिद्यामंत्रितः श्राद्धे पैत्रेऽद्याद्गुरुचोदितः ॥ ३३ ॥
 एकान्नमप्यविरोधे व्रतानां प्रथमाश्रमी ॥
 भुक्त्वा गुरुमुपासीत कृत्वा संधुक्षणादिकम् ॥ ३४ ॥
 समिधोऽग्नावादधीत ततः परिचरेद्गुरुम् ॥
 शयीत गुर्वनुज्ञातः प्रह्वश्च प्रथमं गुरोः ॥ ३५ ॥
 एवमन्वहमभ्यासी ब्रह्मचारी व्रतं चरेत् ॥
 हितोपवादः प्रियवाक्सम्यग्गुर्वर्थसाधकः ॥ ३६ ॥
 नित्यमाराधयेद्देनमासमाप्तेः श्रुतिग्रहात् ॥
 अनेन विधिनाधीतो वेदमंत्रो द्विजं नयेत् ॥ ३७ ॥
 शापानुग्रहसामर्थ्यमृषीणां च सलोकताम् ॥
 पयोऽमृताभ्यां मधुभिः साज्यैः प्रीणति देवताः ॥ ३८ ॥

तस्मादहरहर्वेदमनध्यायमृते पठेत् ॥
 यदंगं तदनध्याये गुरोर्वचनमाचरेत् ॥ ३९ ॥
 व्यतिक्रमादसंपूर्णमनहंकृतिराचरेत् ॥
 परत्रेह च ब्रह्म नत्वधीतमपि द्विजम् ॥ ४० ॥
 यस्तूपनयनादेतदामृत्योर्व्रितमाचरेत् ॥
 स नैष्ठिको ब्रह्मचारी ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ४१ ॥
 समाप्य वेदान्वेदौ वा वेदं वा प्रसभं द्विजः ॥
 स्नायीत गुर्वनुज्ञातः प्रवृत्तोदितदक्षिणः ॥ ४३ ॥
 इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

एवं स्नातकतां प्राप्तो द्वितीयाश्रमकाक्षया ॥
 प्रतीक्षेत विवाहार्थमनिन्द्यान्वयसंभवाम् ॥ १ ॥
 अरोगो दुष्टवंशोत्थामशुल्कादानदूषिताम् ॥
 सवर्णामसमानार्णाममातृपितृगोत्रजाम् ॥ २ ॥
 अनन्यपूर्विकां लघ्वीं शुभलक्षणसंयुताम् ॥
 धृताधेवसनां गौरीं विख्यातदशपूरुषाम् ॥ ३ ॥
 ख्यातनाम्नः पुत्रवतः सदाचारवतः सतः ॥
 दातुमिच्छोर्दुहितरं प्राप्य धर्मेण चोद्वहेत् ॥ ४ ॥

ब्राह्मोद्गाहविधानेन तदभावे परो विधिः ॥

दातव्येषा सहस्राय वयोविद्यान्वयादिभिः ॥ ५ ॥

पितृतापितृभ्रातृषु पितृव्यज्ञातिमातृषु ॥

पूर्वाभावे परो दद्यात्सर्वाभावे स्वयं व्रजेत् ॥ ६ ॥

यदि सा दातृवैकल्याद्रजः पश्येत्कुमारिका ॥

भ्रूणहत्याश्च यावत्यः पतितः स्यात्तदप्रदः ॥ ७ ॥

तुभ्यं दास्याम्यहमिति ग्रहीष्यामीति यस्तयोः ॥

कृत्वा समयमन्योन्यं भजते न स दंडभाक् ॥ ८ ॥

त्यजन्नदुष्टां दंड्यः स्याद् दूषयंश्चाप्यदूषिताम् ॥

ऊढायां हि सवर्णायामन्यां वा काममुद्वहेत् ॥ ९ ॥

तस्यामुत्पादितः पुत्रो न सवर्णात्प्रहीयते ॥

उद्वहेत्क्षत्रियां विप्रो वैश्यां च क्षत्रियो विशाम् ॥

न तु शूद्रां द्विजः कश्चिन्नाधमः पूर्ववर्णजाम् ॥ १० ॥

नानावर्णासु भार्यासु सवर्णा सहचारिणी ॥

धर्मार्धमेषु धर्मिष्ठा ज्येष्ठा तस्य स्वजातिषु ॥ ११ ॥

पाटितोऽयं द्विजाः पूर्वमेकदेहः स्वयंभुवा ॥ १२ ॥

पतयोऽर्द्धेन चार्द्धेन पत्न्योऽभूवन्निति श्रुतिः ॥

यावन्न विंदते जायां तावदर्द्धो भवेत्पुमान् ॥ १३ ॥

नार्द्धं प्रजायते सर्वं प्रजायेतेत्यपि श्रुतिः ॥

गुर्वी सा भूस्त्रिवर्गस्य वोढुं नान्येन शक्यते ॥ १४ ॥

यतस्ततोऽन्वहं भूत्वा स्ववशो विभृयान्न ताम् ॥
 कृतदारोऽग्निपत्नीभ्यां कृतवेश्मा गृहं वसेत् ॥ १५ ॥
 स्वकृतं वित्तमासाद्य वैतानार्भि न हापयेत् ॥
 स्मार्तं वैवाहिके वह्नौ श्रौतं वैतानिकामिषु ॥ १६ ॥
 कर्म कुर्यात्प्रातिदिनं विधिवत्प्रातिपूर्वकः ॥
 सम्यग्धर्मार्थिकामेषु दंपतिभ्यामहर्निशम् ॥ १७ ॥
 एकचित्ततया भाव्यं समानव्रतवृत्तितः ॥
 न पृथग्विद्यते स्त्रीणां त्रिवर्गविधिसाधनम् ॥ १८ ॥
 भावतोह्यतिदेशाद्वा इति शास्त्राविधिः परः ॥
 पत्युः पूर्वं समुत्थाय देहशुद्धिं विधाय च ॥ १९ ॥
 उत्थाप्य शयनाद्यानि कृत्वा वेश्मविशोधनम् ॥
 मार्जनैर्लेपनैः प्राप्य सामिशालं स्वमंगणम् ॥ २० ॥
 शोधयेदमिकायांनि स्निग्धान्युष्णेन वारिणा ॥
 प्रोक्ष्ण्यैरिति तान्येव यथास्थानं प्रकल्पयेत् ॥ २१ ॥
 द्वंद्वपात्राणि सर्वाणि न कदाचिद्वियोजयेत् ॥
 शोधयित्वा तु पात्राणि पूरयित्वा तु धारयेत् ॥ २२ ॥
 महानसस्य पात्राणि बहिः प्रक्षाल्य सर्वथा ॥
 मृद्धिश्च शोधयेच्चुल्लीं तत्रामिं विन्यसेत्ततः ॥ २३ ॥

स्मृत्वा नियोगपात्राणि रसांश्च द्रविणानि च ॥
 कृतपूर्वाह्नकार्या च स्वगुरुनभिवादयेत् ॥ २४ ॥
 ताभ्यां भर्तृपितृभ्यां वा भ्रातृमातुलबांधवैः ॥
 वस्त्रालंकाररत्नानि प्रदत्तान्येव धारयेत् ॥ २५ ॥
 मनोवाक्कर्मभिः शुद्धा पतिदेशानुवर्तिनी ॥
 छायेवानुगता स्वच्छा सखीव हितकर्मसु ॥ २६ ॥
 दासीवादिष्टकार्येषु भार्या भर्तुः सदा भवेत् ॥
 ततोऽन्नसाधनं कृत्वा पतये विनिवेद्य तत् ॥ २७ ॥
 वैश्वदेवकृतैरन्नैर्भोजनीयांश्च भोजयेत् ॥
 पतिं चैवाभ्यनुज्ञाता सिद्धमन्नादिनात्मना ॥ २८ ॥
 भुक्त्वा नयेदहःशेषमायव्ययविचिंतया ॥
 पुनः सायं पुनः प्रातर्गृहशुद्धिं विधाय च ॥ २९ ॥
 कृतान्नसाधना साध्वी सुभृशं भोजयेत्पतिम् ॥
 नातितृप्त्या स्वयं भुक्त्वा गृहनीतिं विधाय च ॥ ३० ॥
 आस्तीर्थं साधु शयनं ततः परिचरेत्पतिम् ॥
 सुप्ते पतौ तदभ्याशे स्वपेत्तद्गतमानसा ॥ ३१ ॥
 अनया चाप्रमत्ता च निष्कामा च जितेंद्रिया ॥
 नोच्चैर्वदन्न परुषं न बहून्पत्युरप्रियम् ॥ ३२ ॥

१ पुरुषम् इति पाठान्तरम् । तदा पत्युरन्यं पुरुषमित्यर्थः भ्रातृपि-
 त्रादींस्तु विकारशंकाया अभावाद्भवेत् ।

न केनचिद्विवदेच्च अप्रलापविलापिनी ॥
 न चापि व्ययशीला स्यान्न धर्मार्थविरोधिनी ॥ ३३ ॥
 प्रमादोन्मादरोषेर्ष्यावंचनं चातिमानिताम् ॥
 पैशुन्यहिंसाविद्वेषमदाहंकारधूर्तताः ॥ ३४ ॥
 नास्तिक्यं साहसं स्तेयं दंभान्साध्वी विवर्जयेत् ॥
 एवं परिचरंती सा पतिं परमदैवतम् ॥ ३५ ॥
 यशः शमिह यात्येव परत्र च सलोकताम् ॥
 योषितो नित्यकर्मोक्तं नैमित्तिकमथोच्यते ॥ ३६ ॥
 रजोदर्शनतो दोषात्सर्वमेव परित्यजेत् ॥
 सर्वैरलक्षिता शीघ्रं लज्जितांतर्गृहे वसेत् ॥ ३७ ॥
 एकांवरावृता दीना स्नानालंकारवर्जिता ॥
 मौनिन्यधोमुखी चक्षुःपाणिपद्मिरचंचला ॥ ३८ ॥
 अशनीयात्केवलं भक्तं नक्तं मृन्मयभाजने ॥
 स्वपेद्भूमावप्रमत्ता क्षपेदेवमहस्त्रयम् ॥ ३९ ॥
 स्नायीत च त्रिरात्रांते सचैलमुदिते रवौ ॥
 विलोक्य भर्तुर्वदनं शुद्धा भवति धर्मतः ॥ ४० ॥
 कृतशौचा पुनः कर्म पूर्ववच्च समाचरेत् ॥
 रजोदर्शनतो याः स्यू रात्रयः षोडशर्तवः ॥ ४१ ॥
 ततः पुंबीजमक्लिष्टं शुद्धे क्षेत्रे प्ररोहति ॥
 चतस्रश्चादिमा रात्रीः पर्ववच्च विवर्जयेत् ॥ ४२ ॥

गच्छेद्युग्मासु रात्रीषु पौष्णपित्रर्क्षराक्षसान् ॥

प्रच्छादितादित्यपथे पुमान्गच्छेत्स्वयोषितः ॥ ४३ ॥

क्षमालंकृदवाप्नोति पुत्रं पूजितलक्षणम् ॥

ऋतुकालेऽभिगम्यैवं ब्रह्मचर्ये व्यवस्थितः ॥ ४४ ॥

गच्छन्नपि यथाकामं न दुष्टः स्यादनन्यकृत् ॥

भूणहत्यामवाप्नोति ऋतौ भार्य्यापराङ्मुखः ॥ ४५ ॥

स्त्रा त्ववाप्यान्यतो गर्भं त्याज्या भवति पापिनी ॥

महापातकदुष्टा च पतिगर्भविनाशिनी ॥ ४६ ॥

सद्बृत्तचारिणीं पत्नीं त्यक्त्वा पतति धर्मतः ॥

महापातकदुष्टोऽपि स प्रतीक्ष्यस्तया पतिः ॥ ४७ ॥

अशुद्धे क्षयमादूरं स्थितायामनुचिन्तया ॥

व्यभिचारेण दुष्टानां पतीनां दर्शनादृते ॥ ४८ ॥

धिवकृतायामवाच्यायामन्यत्र वासयेत्पतिः ॥

पुनस्तामार्तवस्नातां पूर्ववद्वयवहारयेत् ॥ ४९ ॥

धूर्ता च धर्मकामघ्नीमपुत्रां दीर्घरोगिणीम् ॥

सुदुष्टां व्यसनासक्तामहितामधिवासयेत् ॥ ५० ॥

अधिविन्नामपि विभुः स्त्रीणां तु समतामियात् ॥

विवर्णां दीनवदना देहसंस्कारवर्जिता ॥ ५१ ॥

पतिव्रता निराहारा शोष्यते प्रोषिते पतौ ॥

मृतं भर्तारमादाय ब्राह्मणी वह्निमाविशेत् ॥ ५२ ॥

जीवंती चेत्यक्तकेशा तपसा शोधयेद्वपुः ॥
 सर्वावस्थासु नारीणां न युक्तं स्यादरक्षणम् ॥ ५३ ॥
 तदेवानुक्रमात्कार्यं पितृभर्तृसुतादिभिः ॥
 जाताः सुरक्षिताः पापान्भुञ्जन्पौत्रप्रपौत्रकाः ॥
 ये यजन्ति पितृन्यज्ञैर्मोक्षप्राप्तिमहोदयैः ॥ ५४ ॥
 मृतानामभिहोत्रेण दाहयेद्विधिपूर्वकम् ॥
 दाहयेद्विलम्बेन भार्या चात्र व्रजेत सा ॥ ५५ ॥
 इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

नित्यं नैमित्तिकं काम्यामिति कर्म त्रिधा मतम् ॥
 त्रिविधं तच्च वक्ष्यामिगृहस्थस्यावधार्यताम् ॥ १ ॥
 यामिन्याः पश्चिमे यामे त्यक्तनिद्रो हरिं स्मरेत् ॥
 आलोक्य मंगलद्रव्यं कर्मावश्यकमाचरेत् ॥ २ ॥
 कृतशौचो निषेव्याग्निन्दन्ताप्रक्षाल्य वारिणा ॥
 स्नात्वोपास्य द्विजः संध्यां देवार्शीश्चैव तर्पयेत् ॥ ३ ॥
 वदेवदांगशास्त्राणि इतिष्ठानानि चाभ्यसेत् ॥
 अध्यापयेच्च सञ्छिष्यान्सद्विप्रांश्च द्विजोत्तमः ॥ ४ ॥

अलब्धं प्रापयेद्बद्ध्वा क्षणमात्रं समापयेत् ॥
 समर्थो हि समर्थेन नाविज्ञातः कचिद्वसेत् ॥ ५ ॥
 सरित्सरःसु वापीषु गर्तप्रस्रवणादिषु ॥
 स्नायीत यावदुद्धृत्य पंचपिंडानि वारिणा ॥ ६ ॥
 तीर्थाभावेऽप्यशक्तो वा स्नायात्तोयैः समाहृतैः ॥
 गृहांगणगतस्तत्र यावदंबरीडनम् ॥ ७ ॥
 स्नानमब्देवतैः कुर्यात्पावनैश्चापि मार्जनम् ॥
 मंत्रैः प्राणांस्त्रिराचम्य सौरैश्चार्कं विलोकेयत् ॥ ८ ॥
 तिष्ठन्स्थित्वा तु गायत्रीं ततः स्वाध्यायमारभेत् ॥
 ऋचां च यजुषां साम्नामथर्वगिरसामपि ॥ ९ ॥
 इतिहासपुराणानां वेदोपनिषदां द्विजः ॥
 शक्त्या सम्यक्पठन्नित्यमल्पमप्यासमापनात् ॥ १० ॥
 स यज्ञदानतपसामखिलं फलमाप्नुयात् ॥
 तस्मादहरहर्वेदं द्विजोऽधीयीत वाग्यतः ॥ ११ ॥
 धर्मशास्त्रेतिहासादि सर्वेषां शक्तितः पठेत् ॥
 कृतस्वाध्यायः प्रथमं तर्पयेच्चाथ देवताः ॥ १२ ॥
 जान्वाच्य दक्षिणां दमैः प्रागग्रैः सयवैस्तिलैः ॥
 यवैकांजलिदानेन प्रकृतिस्थोपवीतकः ॥ १३ ॥
 समजानुद्वयो ब्रह्मसूत्रद्वार उदङ्मुखः ॥
 तिर्यग्दमैश्च वामाग्रैर्यवैस्तिलविमिश्रितैः ॥ १४ ॥

अंभोभिरुत्तरक्षितैः कनिष्ठामूलानिर्गतैः ॥

द्राभ्यां द्वाभ्यामंजलिभ्यां मनुष्यांस्तर्पयेत्ततः ॥ १५ ॥

दक्षिणाभिमुखः सव्यं जान्वाच्य द्विगुणैः कुशैः ॥

तिलैर्जलैश्च देशिन्या मूलदर्भाद्विनिःसृतैः ॥ १६ ॥

दक्षिणांसोपवीतः स्यात्क्रमेणांजलिभिस्त्रिभिः ॥

संतर्पये द्विव्यपितृस्तत्परांश्च पितृन्स्वकान् ॥ १७ ॥

मातृमातामहांस्तद्वत्त्रिणैवं हि त्रिभिस्त्रिभिः ॥

मातामहाश्च येऽप्यन्ये गोत्रिणो दाहवर्जिताः ॥ १८ ॥

तानेकांजलिदानेन तर्पयेच्च पृथक्पृथक् ॥

असंस्कृतप्रमीता ये प्रेतसंस्कारवर्जिताः ॥ १९ ॥

वस्त्रनिष्पीडितांभोभिस्तेषामाप्यायनं भवेत् ॥

अतर्षितेषु पितृषु वस्त्रं निष्पीडयेच्च यः ॥ २० ॥

निराशाः पितरस्तस्य भवंति सुरमानुषैः ॥

पयोदर्भस्वधाकारगोत्रनामतिलैर्भवेत् ॥ २१ ॥

सुदत्तं तत्पुनस्तेषामेकेनापि वृथा विना ॥

अन्यचित्तेन यदत्तं यदत्तं विधिवर्जितम् ॥ २२ ॥

अनासनस्थितेनापि तज्जलं रुधिरायते ॥

एवं संतर्पिताः कामैस्तर्पकांस्तर्पयन्ति च ॥ २३ ॥

ब्रह्मविष्णुशिवादित्यमित्रावरुणनामाभिः ॥

पूजयेल्लक्षितैर्मन्त्रैर्जलमंत्रोक्तदेवताः ॥ २४ ॥

उपस्थाय रविं काष्ठां पूजयित्वा च देवताः ॥

ब्रह्माग्नीन्द्रोषधीजीवविष्णूनां निहतांहसाम् ॥ २५ ॥

तत्तन्मन्त्रैश्च सत्कारं नमस्कारैः स्वनामाभिः ॥

कृत्वा मुखं समालभ्यस्नानमेवं समाचरेत् ॥ २६ ॥

ततः प्रविश्य भवनमावसथ्ये हुताशने ॥

पाकयज्ञांश्च चतुरो विदध्याद्विधेवद्विजः ॥ २७ ॥

अनाहितावसथ्यामिरादायात्रं घृतप्लुतम् ॥

शाकलेन विधानेन जुहुयाल्लौकिकेऽनले ॥ २८ ॥

व्यस्तागिर्व्याहृतीभिश्च समस्ताभिस्ततः परम् ॥

वड्भिर्देवकृतस्येति मंत्रविद्विर्यथाक्रमम् ॥ २९ ॥

प्राजापत्यं स्विष्टकृतं हुत्वैवं द्वादशाहुतीः ॥

ओंकारपूर्वः स्वाहांतस्त्यागः स्विष्टविधानतः ॥ ३० ॥

भुवि दधन्सिमास्तीर्थं बलिकर्म समाचरेत् ॥

विश्वेभ्यो देवेभ्य इति सर्वेभ्यो भूतेभ्य एव च ॥ ३१ ॥

भूतानां पतये चेति नमस्कारेण शास्त्रवित् ॥

दद्याद्वलित्रयं चाग्ने पितृभ्यश्च स्वधानमः ॥ ३२ ॥

पात्रनिर्णेजनं वारि वायव्यां दिशि निःक्षेपत् ॥

उद्धृत्य षोडशप्रासमात्रमन्नं घृताक्षतम् ॥ ३३ ॥

इदमन्नं मनुष्येभ्यो हंतैत्युक्त्वा समुत्सृजेत् ॥

गोत्रनामस्वधाकारैः पितृभ्यश्चापि शक्तिः ॥ ३४ ॥

षड्भ्योऽन्नमन्वहं दद्यात्तित्यन्नाविधानतः ॥

वेदादीनां पठेत्किञ्चिदल्पं ब्रह्ममखाप्तये
ततोऽन्यदन्नमादाय निर्गत्य भवताद्वाहिः ॥

काकेभ्यः श्वपचेभ्यश्च प्रक्षिपेद्वासमेव च ॥ ३६ ॥

उपविश्य गृहद्वारि तिष्ठेद्यावन्मुहूर्तकम् ॥

अप्रमुक्तोऽतिथिं लिप्सुर्भावशुद्धः प्रतीक्षकः ३७

आगतं दूरतः श्रान्तं भोक्तुकर्मिमाकचनम् ॥

दृष्ट्वा संमुखमभ्येत्य सत्कृत्य प्रश्रयार्चनैः ॥ ३८ ॥

पादधावनसंमानाभ्यंजनादिभिरार्चितः ॥

त्रिदिवं प्रापयेत्सद्यो यज्ञस्याभ्याधिकोऽतिथिः ॥ ३९ ॥

कालागतोऽतिथिर्दृष्टवेदपारो गृहागतः ॥

द्वावेतौ पूजितौ स्वर्गं नयतोऽधस्त्वपूजितौ ॥ ४० ॥

विवाहस्रातकक्ष्माभृदाचार्यसुहृद्वत्विजः ॥

अर्घ्या भवंति धर्मेण प्रतिवर्षं गृहागताः ॥ ४१ ॥

गृहागताय सत्कृत्य श्रोत्रियाय यथाविधि ॥

भक्तयोपकल्पयेदेकं महाभागं विसर्जयेत् ॥ ४२ ॥

विसर्जयेदनुव्रज्य सुतृप्तश्रोत्रियातिथीन् ॥

मित्रमातुल्यसंबन्धिर्बाधवान्समुपागतान् ॥ ४३ ॥

भोजयेद्गृहिणो भिक्षां सत्कृतां भिक्षुकोऽर्हति ॥

स्वाद्धन्नमश्रन्नस्वादु ददद्गच्छत्यधोगतिम् ॥ ४४ ॥

गर्भिण्यातुरभृत्येषु बालवृद्धातुरादिषु ॥

बुभुक्षितेषु भुञ्जानो गृहस्थोऽश्नाति किल्बिषम् ॥ ४५ ॥

नाद्याद्गृह्येऽन्नपाकाद्यं कदाचिदनिमंत्रितः ॥

निमंत्रितोऽपि निदेत प्रत्याख्यानं द्विजोऽर्हति ॥ ४६ ॥

शूद्राभिशस्तवार्धुष्यवाग्दुष्टकूरतस्कराः ॥

कुद्धापविद्धबद्धोप्रवधबंधनजीविनः ॥ ४७ ॥

शैलूषशौडिकोन्नद्धोन्मत्तव्रात्यव्रतच्युताः ॥

नम्रनास्तिकिर्लज्जपिशुनव्यसनान्विताः ॥ ४८ ॥

कदर्यस्त्रीजितानार्यपरवादकृता नराः ॥

अनीशाः कीर्तिमंतोऽपि राजदेवस्वहारकाः ॥ ४९ ॥

शयनासनसंसर्गकृतकर्मादिदूषिताः ॥

अश्रद्धयानाः पतिता भ्रष्टाचारादयश्च ये ॥

अभोज्यान्नाः स्युरन्नादो यस्य यः स्यात्सतत्समः ॥ ५० ॥

नापितान्वयमित्रार्द्धक्षीरिणो दासगोपकाः ॥

शूद्राणामप्यभीषां तु भुक्त्वात्रं नैव दुष्यति ॥ ५१ ॥

धर्मेणान्योन्यभोज्यान्ना द्विजास्तु विदितान्वयाः ॥ ५२ ॥

स्ववृत्तोपार्जितं मेध्यमाकरस्थममाक्षिकम् ॥

अश्वलीढमगोघ्रातमस्पृष्टं शूद्रवायसैः ॥ ५३ ॥

अनुच्छिष्टमसंदुष्टमपर्युषितमेव च ॥

अम्लानबाह्यमन्नाद्यमाद्यं नित्यं सुसंस्कृतम् ॥

कृशराष्टपसंयावपायसं शङ्कुलीति च ॥ ५४ ॥

नाश्रीयाद्वाहणो मांसमनियुक्तः कथंचन ॥
 ऋतौ श्राद्धे नियुक्तो वा अनश्रन्पतति द्विजः ॥ ५५ ॥
 मृगयोपार्जितं मांसमभ्यर्च्य पितृदेवताः ॥
 क्षत्रियो द्वादशेन तत्कीत्वा वैश्योऽपि धर्मतः ॥ ५६ ॥
 द्विजो जग्ध्वा वृथा मांसं हत्वाप्यविधिना पशून् ॥
 निरथेष्वक्षयं वासमाप्नोत्याचन्द्रतारकम् ॥ ५७ ॥
 सर्वान्कामान्समासाद्य फलमश्वमखस्य च ॥
 मुनिसाम्यमवाप्नोति गृहस्थोऽपि द्विजोत्तमः ॥ ५८ ॥
 द्विजभोज्यानि गव्यानि माहिष्याणि पयांसि च ॥
 निर्दशासंधिसंबन्धिवत्सवंतीपयांसि च ॥ ५९ ॥
 पलांडुं श्वेतवंताकं रक्तमूलकमेव च ॥
 गृजनारुणवृक्षासृगंतुगर्भफलानि च ॥ ६० ॥
 अकालकुसुमादीनि द्विजो जग्ध्वैदवं चरेत् ॥
 वाग्दूषितमविज्ञातमन्यपीडितकार्यपि ॥ ६१ ॥
 भूतेभ्योऽन्नमदत्त्वा च तदन्नं गृहिणो दहेत् ॥
 हैमराजतकांस्येषु पात्रेष्वद्यात्सदा गृही ॥ ६२ ॥
 अभावे साधुगन्धेषु लोधद्रुमलतासु च ॥
 पलाशपद्मपत्रेषु गृहस्थो भोक्तुमर्हति ॥ ६३ ॥
 ब्रह्मचारी यतिश्चैव श्रेयो यद्रोक्तुमर्हति ॥ ६४ ॥
 अभ्युक्ष्यान्नं नमस्कारैर्भुवि दद्याद्वलित्रयम् ॥
 भूपतये भुवः पतये भूतानां पतये तथा ॥ ६५ ॥

अपः प्राश्य ततः पश्चात्पंच प्राणाहुतीः क्रमात् ॥
 स्वाहाकारेण जुहुयाच्छेषमग्राद्यथासुखम् ॥ ६६ ॥
 अनन्यचित्तो भुंजीत वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ॥
 आतृप्तेरन्नमश्रियादक्षुण्णं पात्रमुत्सृजेत् ॥ ६७ ॥
 उच्छिष्टमन्नमुद्धृत्य ग्रासमेकं भुवि क्षिपेत् ॥ ६८ ॥
 आचांतः साधुसंगेन सद्विद्यापठनेन च ॥
 वृत्तवृद्धकथाभिश्च शेषाहमतिवाहयेत् ॥ ६९ ॥
 सायं संध्यामुपार्शीत दुत्वाग्निं भृत्यसंयुतः ॥
 आपोशानक्रियापूर्वमश्नीयादन्वहं द्विजः ॥ ७० ॥
 सायमप्यतिथिः पूज्यो होमकालागतोऽनिशम् ॥
 श्रद्धया शक्तितो नित्यं श्रुतं हन्यादपूजितः ॥ ७१ ॥
 नातितृप्त उपस्पृश्य प्रक्षाल्य चरणौ शुचिः ॥
 अप्रत्यगुत्तरशिराः शयीत शयने शुभे ॥
 शक्तिमानुदिते काले स्नानं संध्यां न हापयेत् ॥ ७२ ॥
 ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिंतयेद्धितमात्मनः ॥
 शक्तिमान्मतिमात्रित्यं व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ ७३ ॥
 इति श्रीवेदव्यासीये धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

इति व्यासकृतं शास्त्रं धर्मसारसमुच्चयम् ॥
 आश्रमे यानि पुण्यानि मोक्षधर्माश्रितानि च ॥ १ ॥

गृहाश्रमात्परो धर्मो नास्ति नास्ति पुनः पुनः ॥
 सर्वतीर्थफलं तस्य यथोक्तं यस्तु पालयेत् ॥ २ ॥
 गुरुभक्तो भृत्यपोषी दयावाननसूयकः ॥
 नित्यजापो च होमी च सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ ३ ॥
 स्वदारे यस्य संतोषः परदारनिवर्तनम् ॥
 अपवादोऽपि नो यस्य तस्य तीर्थफलं गृहे ॥ ४ ॥
 परदारान्परद्रव्यं हरते यो दिने दिने ॥
 सर्वतीर्थाभिषेकेण पापं तस्य न नश्यति ॥ ५ ॥
 गृहेषु सवनीयेषु सर्वतीर्थफलं ततः ॥
 अन्नदस्य त्रयो भागाः कर्ता भोगेन लिप्यते ॥ ६ ॥
 प्रतिश्रयं पादशौचं ब्राह्मणानां च तर्पणम् ॥
 न पापं संस्पृशेत्तस्य बलिभिक्षां ददाति यः ॥ ७ ॥
 पादोदकं पादधृतं दीपमन्नं प्रतिश्रयम् ॥
 यो ददाति ब्राह्मणेभ्यो नोपसर्पति तं यमः ॥ ८ ॥
 विप्रपादोदकक्लिन्ना यावत्तिष्ठति मेदिनी ॥
 तावत्पुष्करपात्रेषु पिबन्ति पितरोऽमृतम् ॥ ९ ॥
 यत्फलं कपिलादाने कार्त्तिक्यां ज्येष्ठपुष्करे ॥
 तत्फलं बृषयः श्रेष्ठा विप्राणां पादशोधने ॥ १० ॥

स्वागमेनाग्रयः प्रीता आसनेन शतक्रतुः ॥
 पितरः पादशौचेन अन्नाद्येन प्रजापतिः ॥ ११ ॥
 मातापित्रोः परं तीर्थं गंगा गावो विशेषतः ॥
 ब्राह्मणात्परमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥ १२ ॥
 इन्द्रियाणि वशीकृत्य गृह एव वसेन्नरः ॥
 तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च ॥ १३ ॥
 गंगाद्वारं च केदारं सन्निहत्यं तथैव च ॥
 एतानि सर्वतीर्थानि कृत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥ १४ ॥
 वर्णानामाश्रमाणां च चातुर्वर्ण्यस्य भो द्विजाः ॥
 दानधर्मं प्रवक्ष्यामि यथा व्यासेन भाषितम् ॥ १५ ॥
 यद्ददाति विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नाति दिने दिने ॥
 तच्च वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षति ॥ १६ ॥
 यद्ददाति यदश्नाति तद्देव धनिनो धनम् ॥
 अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि ॥ १७ ॥
 किं धनेन करिष्यन्ति देहिनोऽपि गतायुषः ॥
 यद्वर्द्धयितुमिच्छन्तस्तच्छरीरमशाश्वतम् ॥ १८ ॥
 अशाश्वतानि गात्राणि विभवो नैव शाश्वतः ॥
 नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥ १९ ॥
 यदि नाम न धर्माय न कामाय न कीर्तये ॥
 यत्परित्यज्य गन्तव्यं तद्धनं किं न दीयते ॥ २० ॥

जीवांति जीविते यस्य विप्रमित्राणि बांधवाः ॥

जीवितं सफलं तस्य चात्मार्थे को न जीवति ॥ २१ ॥

पशवोऽपि हि जीवांति केवलात्मोदरंभराः ॥

किं कायेन सुगुप्तेन बलिना चिरजीविना ॥ २२ ॥

ग्रासादर्द्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते ॥

इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥ २३ ॥

अदाता पुरुषस्त्यागी धनं संत्यज्य गच्छति ॥

दातारं कृपणं मन्ये मृतोऽप्यथ न मुञ्चति ॥ २४ ॥

प्राणनाशस्तु कर्तव्यो यः कृतार्थो न स मृतः ॥

अकृतार्थस्तु यो मृत्युं प्राप्तः खरसमो हि सः ॥ २५ ॥

अनाद्वृतेषु यद्वत्तं यच्च दत्तमयाचितम् ॥

भविष्यति युगस्यांतस्तस्यांतो न भविष्यति ॥ २६ ॥

मृतवत्सा यथा गौश्च कृष्णा लोभेन दुह्यते ॥

परस्परस्य दानानि लोकयात्रा न धर्मतः ॥ २७ ॥

अदृष्टे चाशुभे दानं भोक्ता चैव न दृश्यते ॥

पुनरागमनं नास्ति तत्र दानमनतकम् ॥ २८ ॥

मातापितृषु यदद्याद्भ्रातृषु श्वशुरेषु च ॥

जायापत्येषु यदद्यात्सोऽनन्तः स्वर्गसंक्रमः ॥ २९ ॥

पितुः शतगुण दानं सहस्रं मातुरुच्यते ॥

भगिन्यां शतसाहस्रं सोदरे दत्तमक्षयम् ॥ ३० ॥

अहन्यहनि दातव्यं ब्राह्मणेषु मुनीश्वराः ॥
 आगमिष्यति यत्पात्रं तत्पात्रं तारयिष्यति ॥ ३१ ॥
 किञ्चिद्वेदमयं पात्रं किञ्चित्पात्रं तपोमयम् ॥
 पात्राणामुत्तमं पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे ॥ ३२ ॥
 यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरे चापि गुणान्वितः ॥
 गुणान्विताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः ॥ ३३ ॥
 देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च ॥
 कुलान्यकुलतां यांति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ ३४ ॥
 ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते ॥
 ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य नहि भस्मानि हूयते ॥ ३५ ॥
 सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् ॥
 भोजनं चैव दानं च हन्यान्निपुरुषं कुलम् ॥ ३६ ॥
 यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ॥
 यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥ ३७ ॥
 ग्रामस्थानं यथा शून्यं यथा कूपश्च निर्जलः ॥
 यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥ ३८ ॥
 ब्राह्मणेषु च यदत्तं यच्च वैश्वानरे द्रुतम् ॥
 तद्धनं धनमाख्यातं धनं शेषं निरर्थकम् ॥ ३९ ॥
 सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ॥
 सहस्रगुणमाचार्य्ये ह्यनन्तं वेदपारगे ॥ ४० ॥

ब्रह्मबीजसमुत्पन्नो मंत्रसंस्कारवर्जितः ॥

जातिमात्रोपजीवी च स भवेद्ब्राह्मणः समः ॥ ४१ ॥

गर्भाधानादिभिर्मन्त्रैर्वेदोपनयनेन च ॥

नाध्यापयति नार्धोते स भवेद्ब्राह्मणब्रुवः ॥ ४२ ॥

अमिहोत्री तपस्वी च वेदमध्यापयेच्च यः ॥

सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ ४३ ॥

इष्टिभिः पशुबन्धैश्च चातुर्मास्यैस्तथैव च ॥

अमिष्टोमादिभिर्यज्ञैर्येन चेष्टं स इष्टवान् ॥ ४४ ॥

मीमांसते च यो वेदान्षड्भिरंगैः सविस्तरैः ॥

इतिहासपुराणानि स भवेद्देदपारगः ॥ ४५ ॥

ब्राह्मणा येन जीवन्ति नान्यो वर्णः कथंचन ॥

ईदृक्पथमुपस्थाय कोऽन्यस्तं त्यक्तुमुत्सहेत् ॥ ४६ ॥

ब्राह्मणः स भवेच्चैव देवानामपि दैवतम् ॥

प्रत्यक्षं चैव लोकस्य ब्रह्मतेजो हि कारणम् ॥ ४७ ॥

ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रं निष्कर्करमकंटकम् ॥

वापयेत्तत्र बीजानि सा कृषिः सार्वकामिकी ॥ ४८ ॥

सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं सुपात्रे दापयेद्धनम् ॥

सुक्षेत्रे च सुपात्रे च क्षिप्तं नैव हि दुष्यति ॥ ४९ ॥

त्रिद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गृहमागते ॥

क्रीढंत्योषधयः सर्वा यास्यामः परमांगतिम् ॥ ५० ॥

नष्टशौचे व्रतभ्रष्टे विप्रे वेदविवर्जिते ॥

दीयमानं रुदत्यन्नं भयाद्वै दुष्कृतं कृतम् ॥ ५१ ॥

वेदपूर्णं मुखं विप्रं सुभुक्तमपि भोजयेत् ॥

न च मूर्खं निराहारं षड्रात्रमुपवासिनम् ॥ ५२ ॥

यानि यस्य पवित्राणि कुक्षौ तिष्ठन्ति भो द्विजाः ॥

तानि तस्य प्रयोज्यानि न शरीराणि देहिनाम् ॥ ५३ ॥

यस्य देहे सदाश्रन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः ॥

कव्यानि चैव पितरः किंभूतमधिकं ततः ॥ ५४ ॥

यद्भुक्ते वेदविद्विप्रः स्वकर्मनिरतः शुचिः ॥

दातुः फलमसंख्यातं प्रतिजन्म तदक्षयम् ॥ ५५ ॥

हस्त्यश्वरथयानानि केचिदिच्छन्ति पंडिताः ॥

अहं नेच्छामि मुनयः कस्येताः सर्वसंपदः ॥ ५६ ॥

वेदलांगलकृष्टेषु द्विजश्रेष्ठेषु सत्सु च ॥

यत्पुरा पातितं बीजं तस्यैताः सस्यसंपदः ॥ ५७ ॥

शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पंडितः ॥

वक्ता शतसहस्रेषु दाता भवति वान वा ॥ ५८ ॥

न रणे विजयाच्छूरोऽध्ययनान्न च पंडितः ॥

न वक्ता वाक्पटुत्वेन न दाता चार्थदानतः ॥ ५९ ॥

इंद्रियाणां जये शूरो धर्मं चरति पंडितः ॥

हितप्रायोक्तिभिर्वक्ता दाता सन्मानदानतः ॥ ६० ॥

यद्येकपंकत्यां विषमं ददाति स्नेहाद्भयाद्वा यदि वार्थहेतोः ॥
वदेषु दृष्टं ह्यृषिभिश्च गीतं तद्ब्रह्महत्यां मुनयो वदन्ति ॥ ६१ ॥

ऊषरे वापितं बीजं भिन्नभांडेषु गोदुहम् ॥

हुतं भस्मनि हव्यं च मूर्खे दानमशाश्वतम् ॥ ६२ ॥

मृतसूतकपुष्टांगो द्विजः शूदान्नभोजने ॥

अहमेवं न जानामि कां योनिं स गमिष्यति ॥ ६३ ॥

शूदान्नेनोदरस्थेन यदि कश्चिन्म्रियेत यः ॥

स भवेत्सूकरो नूनं तस्य वा जायते कुले ॥ ६४ ॥

गूध्रो द्वादश जन्मानि सप्तजन्मानि सूकरः ॥

श्वानश्च सप्तजन्मानि हीत्येवं मनुरब्रवीत् ॥ ६५ ॥

अमृतं ब्राह्मणान्नेन दारिद्र्यं क्षत्रियस्य च ॥

वैश्यान्नेन तु शूद्रत्वं शूदान्नान्नरकं व्रजेत् ॥ ६६ ॥

यश्च भुंक्तेऽथ शूदान्नं मासमेकं निरंतरम् ॥

इह जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा चैव जायते ॥ ६७ ॥

यस्य शूद्रा पचेन्नित्यं शूद्रा वा गृहमेधिनी ॥

वर्जितः पितृदेवैस्तु रौरवं याति स द्विजः ॥ ६८ ॥

भांडसंकरसंकीर्णा नानासंकरसंकराः ॥

योनिसंकरसंकीर्णा निरयं याति मानवाः ॥ ६९ ॥

पंक्तिभेदी वृथापाकी नित्यं ब्राह्मणनिन्दकः ॥

आदेशी वेदविक्रेता पंचैते ब्रह्मघातकाः ॥ ७० ॥

इदं व्यासमतं नित्यमध्येतव्यं प्रवत्सतः ॥

एतदुक्ताचारवतः पतनं नैव विद्यते ॥ ७१ ॥

इति वेदव्यासीये धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥ ४ ॥

इति व्यासस्मृतिः समाप्ता ॥ १२ ॥



शंखस्मृतिः १३.



स्वयंभुवे नमस्कृत्य सृष्टिसंहारकारिणे ॥
चातुर्वर्ण्यहितार्थाय शंखः शास्त्रमकल्पयत् ॥ १ ॥
यजनं याजनं दानं तथैवाध्यापनक्रिया ॥
प्रतिग्रहश्चाध्ययनं विप्रकर्माणि निर्दिशेत् ॥ २ ॥
दानं चाध्ययनं चैव यजनं च यथाविधि ॥
क्षत्रियस्य च वैश्यस्य कर्मेदं परिकीर्तितम् ॥ ३ ॥
क्षत्रियस्य विशेषेण प्रजानां परिपालनम् ॥
कृषिगोरक्षवाणिज्यं विशश्च परिकीर्तितम् ॥ ४ ॥
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा सर्वशिल्पानि वाप्यथ ॥
क्षमा सत्यं दमः शौचं सर्वेषामविशेषतः ॥ ५ ॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥
तेषां जन्म द्वितीयं तु विज्ञेयं मौजिवंधनम् ॥ ६ ॥
आचार्यस्तु पिता प्रोक्तः सावित्री जननी तथा ॥
ब्राह्मणक्षत्रियविशां मौजीबंधनजन्मनि ॥ ७ ॥
वृत्त्या शूद्रसमास्तावद्विज्ञेयास्ते विचक्षणैः ॥
यावद्वेदे न जायन्ते द्विजा ज्ञेयास्ततः परम् ॥ ८ ॥
इति श्रीशंखस्मृतौ प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

गर्भस्य स्फुटताज्ञानं निषेकः परिकीर्तितः ।
 पुरा तु स्यंदनात्कार्यं पुंसवनं विचक्षणैः ॥ १ ॥
 षष्ठेऽष्टमे वा सीमंतो जाते वै जातकर्म च ॥
 आशौचे च व्यतिक्रान्ते नामकर्म विधीयते ॥ २ ॥
 नामधेयं च कर्तव्यं वर्णानां च समाक्षरम् ॥
 मांगल्यं ब्राह्मणस्योक्तं क्षत्रियस्य बलान्वितम् ॥ ३ ॥
 वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥
 शर्मांतं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मांतं क्षत्रियस्य तु ॥ ४ ॥
 धनांतं चैव वैश्यस्य दासान्तं चांत्यजन्मनः ॥
 चतुर्थे मासि कर्तव्यं बालस्यादित्यदर्शनम् ॥ ५ ॥
 षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूडा कार्या यथाकुलम् ॥
 गर्भाष्टमेऽब्दे कर्तव्यं ब्राह्मणस्योपनायनम् ॥ ६ ॥
 गर्भादिकादशे राज्ञो गर्भाद्द्वादशमे विशः ॥
 षोडशाब्दानि विप्रस्य राज्ञ्यस्य द्विविंशतिः ॥ ७ ॥
 विंशतिः सचतुष्का तु वैश्यस्य परिकीर्तिता ॥
 नातिवर्तेत सावित्रीमत ऊर्ध्वं निवर्तते ॥ ८ ॥
 विज्ञातव्याम्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः ॥
 सावित्रीपतिता ब्राह्म्याः सर्वधर्मवहिष्कृताः ॥ ९ ॥

मौंजीज्याबंधनानां तु क्रमान्मौंज्यः प्रकीर्तिताः ॥
 मार्गवैयाघ्रवास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणाम् ॥ १० ॥
 पर्णपिप्पलबिल्वानां क्रमाहंडाः प्रकीर्तिताः ॥
 केशदेशललाटास्य तुल्याः प्रोक्ताः क्रमेण तु ॥ ११ ॥
 अवक्राः सत्त्वचः सर्वे अनग्न्येधास्तथैव च ॥
 वस्त्रोपवीते कार्पासक्षौमोर्णानां यथाक्रमम् ॥ १२ ॥
 आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षितम् ॥
 भैक्ष्यस्याचरणं प्रोक्तं वर्णानामनुपूर्वशः ॥ १३ ॥
 इति श्रीशंखस्मृतौ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः ॥
 आचारमग्निकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च ॥ १ ॥
 स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति ॥
 भृतकाध्यापको यस्तु उपाध्यायः स उच्यते ॥ २ ॥
 माता पिता गुरुश्चैव पूजनीयोः सदा नृणाम् ॥
 क्रियास्तस्याफलाः सर्वा यस्यैत नादृतास्त्रयः ॥ ३ ॥
 प्रपतः कल्य उत्थाय स्नातो द्रुतद्रुताशनः ॥
 कुर्वीत प्रणतो भक्त्या गुरुणामभिवादनम् ॥ ४ ॥
 अनुज्ञातस्तु गुरुणा ततोऽध्ययनमाचरेत् ॥

कृत्वा ब्रह्मांजलिं पश्यन्गुरोर्वदनमानतः ॥ ५ ॥
 ब्रह्मावसाने प्रारंभे प्रणवं च प्रकीर्तयेत् ॥
 अनभ्यायेष्वध्ययनं वर्जयेच्च प्रयत्नतः ॥ ६ ॥
 चतुर्दशीं पंचदशामष्टमीं राहुसूतकम् ॥
 उल्कापातं महीकंपमाशौचं ग्रामविप्लवम् ॥ ७ ॥
 इंद्रप्रयाणं श्वहतं सर्वसंघातनिस्वनम् ॥
 वाद्यकोलाहलं युद्धमनध्यायान्विवर्जयेत् ॥ ८ ॥
 नाधीयीताभियुक्तोऽपि यानगो न च नौगतः ॥
 देवायतनवल्मीकश्मशानशवसन्निधौ ॥ ९ ॥
 भैक्ष्यचर्या तथा कुर्याद्ब्राह्मणेषु यथाविधि ॥
 गुरुणा चाप्यनुज्ञातः प्राशनार्यात्प्राङ्मुखः शुचिः ॥ १० ॥
 हितं प्रियं गुरोः कुर्यादंहकारविवर्जितः ॥
 उपास्य पश्चिमां संध्यां पूजयित्वा हुताशनम् ॥ ११ ॥
 अभिवाद्य गुरुं पश्चाद्गुरोर्वचनकृद्भवेत् ॥
 गुरोः पूर्वं समुत्तिष्ठेच्छयीत चरमं तथा ॥ १२ ॥
 मधु मांसांजनं श्राद्धं गीतं नृत्यं च वर्जयेत् ॥
 हिंसां परापवादं च स्त्रीलीलां च विशेषतः ॥ १३ ॥
 मेखलामजिनं दंडं धारयेच्च विशेषतः ॥
 अधःशायी भवेन्नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः ॥ १४ ॥

एवं व्रतं तु कुर्वीत वेदस्वीकरणं बुधः ॥

गुरवे च धनं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया ॥ १५ ॥

इति शंखस्मृतौ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

विदेत विधिवद्भार्यामसमानार्षगोत्रजाम् ॥

मातृतः पंचमीं चापि पितृतस्त्वथ सप्तमीम् ॥ १ ॥

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ॥

गांधर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ २ ॥

एभ्यो धर्म्यास्तु चत्वारः पूर्व ये परिकीर्तिताः ॥

गांधर्वो राक्षसश्चैव क्षत्रियस्य तु शस्यते ॥ ३ ॥

संप्रार्थितः प्रयत्नेन ब्राह्मस्तु परिकीर्तितः ॥

यज्ञस्थायत्विजे दैव आदायार्षस्तु गोद्वयम् ॥ ४ ॥

प्रार्थितः संप्रदानेन प्राजापत्यः प्रकीर्तितः ॥

आसुरो द्रविणादानाद्गांधर्वः समयान्मिथः ॥ ५ ॥

राक्षसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्यकाच्छलात् ॥

तिस्रस्तु भार्या विप्रस्य द्वे भार्ये क्षत्रियस्य तु ॥ ६ ॥

एकैव भार्या वैश्यस्य तथा शूद्रस्य कीर्तिता ॥

ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या विप्रभार्याः प्रकीर्तिताः ॥ ७ ॥

क्षत्रिया चैव वैश्या च क्षत्रियस्य विधीयते ॥

वैश्या च भार्या वैश्यस्य शूद्रा शूद्रस्य कीर्तिता ॥ ८ ॥
 आपद्यपि न कर्तव्या शूद्रा भार्या द्विजन्मना ॥ ९ ॥
 तस्यां तस्य प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥ १० ॥
 तपस्वी यज्ञशीलस्तु सर्वधर्मभृतां वरः ॥ ११ ॥
 ध्रुवं शूद्रत्वमायाति शूद्रश्राद्धे त्रयोदशे ॥ १२ ॥
 नीयते तु सर्पिडत्वं येषां शूद्रः कुलोद्भवः ॥ १३ ॥
 सर्वे शूद्रत्वमायांति यदि स्वर्गजितश्च ते ॥ १४ ॥
 सर्पिडीकरणं कार्यं कुलजस्य तथा ध्रुवम् ॥ १५ ॥
 श्राद्धद्वादशकं कृत्वा श्राद्धे प्राप्ते त्रयोदशे ॥ १६ ॥
 सर्पिडीकरणं चार्हेन्न च शूद्रः कथंचन ॥ १७ ॥
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शूद्रां भार्या विवर्जयेत् ॥ १८ ॥
 पाणिर्ग्राह्यः सुवर्णासु गृह्णीयात्क्षत्रिया शरम् ॥ १९ ॥
 वश्या प्रतोदमादद्याद्धेदेन त्वग्रजन्मनः ॥ २० ॥
 सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या पतिव्रता ॥ २१ ॥
 सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या प्रजावती ॥ २२ ॥
 लालनीया सदा भार्या ताडनीया तथैव च ॥ २३ ॥
 ताडिता लालिता चैव स्त्री श्रीर्भवाति नान्यथा ॥ २४ ॥
 इति शंखस्मृतौ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

पंचसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ॥
 कंडनी चोदकुंभश्च तस्य पापस्य शांतये ॥ १ ॥
 पंचयज्ञविधानं तु गृही नित्यं न हापयेत् ॥
 पंचयज्ञविधानेन तत्पापं तस्य नश्यति ॥ २ ॥
 देवयज्ञो भूतयज्ञः पितृयज्ञस्तथैव च ॥
 ब्रह्मयज्ञो नृयज्ञश्च पंच यज्ञाः प्रकीर्तिताः ॥ ३ ॥
 होमो देवो बलिर्भौतः पित्र्यः पिंडाक्रिया स्मृतः ॥
 स्वाध्यायो ब्रह्मयज्ञश्च नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ ४ ॥
 वानप्रस्थो ब्रह्मचारी यतिश्चैव तथा द्विजः ॥
 गृहस्थस्य प्रसादेन जीवन्त्येते यथाविधि ॥ ५ ॥
 गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तपते तपः ॥
 ददाति च गृहस्थश्च तस्माच्छ्रेयान्गृहाश्रमी ॥ ६ ॥
 यथा भर्ता प्रभुः स्त्रीणां वर्णानां ब्राह्मणो यथा ॥
 अतिथिस्तद्वदेवास्य गृहस्थस्य प्रभुः स्मृतः ॥ ७ ॥
 न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च ॥
 नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पतिपूजनात् ॥ ८ ॥
 न व्रतैर्नोपवासैश्च न च यज्ञैः पृथाग्विधैः ॥
 राजा स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति परिपालनात् ॥ ९ ॥

न स्नानेन न जनेन नैवामिपरिचर्यया ॥

ब्रह्मचारी दिवं याति संयाति गुरुपूजनात् ॥ १० ॥

नामिशुश्रूषया क्षांत्या स्नानेन विविधेन च ॥

खानप्रस्थो दिवं याति याति भोजनवर्जनात् ॥ ११ ॥

न दंष्ट्रैर्न च मौनेन शून्यागाराश्रयेण च ॥

यतिः सिद्धिमवाप्नोति योगेनाप्नोत्यनुत्तमम् ॥ १२ ॥

न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्वह्निशुश्रूषया तथा ॥

गृही स्वर्गमवाप्नोति यथा चातिथिपूजनात् ॥ १३ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गृहस्थोऽतिथिमागतम् ॥

आहारशयनाद्येन विधिवत्प्रतिपूजयेत् ॥ १४ ॥

सायं प्रातश्च जुहुयादग्निहोत्रं यथाविधि ॥

दर्शं च पौर्णमासं च जुहुयाद्विधिवत्तथा ॥ १५ ॥

यजेत पशुबन्धैश्च चातुर्मास्यैस्तथैव च ॥

त्रैवीर्षकाधिकालस्तु पिबेत्सोममतंद्रितः ॥ १६ ॥

इष्टिं वैश्वानरीं कुर्यात्तथा चाल्पधनो द्विजः ॥

न भिक्षेत धनं शूद्रात्सर्वं दद्याच्च भिक्षितम् ॥ १७ ॥

व्रतं तु न त्यजेद्विद्वानृत्विजं पूर्वमेव च ॥

कर्मणा जन्मना शुद्धं विद्यया च वृणीत तम् ॥ १८ ॥

एतैरेव गुणैर्पुक्तं धर्मार्जितधनं तथा ॥

याजयेत सदा विप्रो ग्राह्यस्तस्मात्प्रतिग्रहः ॥ १९ ॥

इति शंखस्मृतौ पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ॥

अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ १ ॥

पुत्रेषु दारान्निक्षिप्य तथा वानुगतो वनम् ॥

अमीनुपचरेन्नित्यं वन्यमाहारमाहरेत् ॥ २ ॥

य आहारो भवेत्तेन पूजयेत्पितृदेवताः ॥

तेनैव पूजयेन्नित्यमतिथिं समुपागतम् ॥ ३ ॥

ग्रामादाहृत्य वाश्रीयादष्टौ ग्रासान्समाहितः ॥

स्वाध्यायं च तथा कुर्याज्जटाश्च विभृयात्तथा ॥ ४ ॥

तपसा शोषयेन्नित्यं स्वयं चैव कलेवरम् ॥

आर्द्रवासास्तु हेमंते ग्रीष्मे पश्चतपास्तथा ॥ ५ ॥

प्रावृष्याकाशशायी च नक्ताशी च सदा भवेत् ॥

चतुर्थकालिको वा स्यात्षष्ठकालिक एव वा ॥ ६ ॥

वृक्षैर्वापि नयेत्कालं ब्रह्मचर्यं च पालयेत् ॥

एवं नीत्वा वने कालं द्विजो ब्रह्माश्रमी भवेत् ॥ ७ ॥

इति शंखस्मृतौ षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

कृत्वेष्टिं विधिवत्पश्चात्सर्ववेदसदक्षिणाम् ॥
 आत्मन्यग्नीन्समारोप्य द्विजो ब्रह्माश्रमी भवेत् ॥ १ ॥
 विधूमे न्यस्तमुसले व्यंगारे भुक्तवज्जने ॥
 अतीते पात्रसंपाते नित्यं भिक्षां यतिश्चरेत्
 सप्तागारांश्चरेद्भैक्ष्यं भिक्षितं नानुभिक्षयेत् ॥ २ ॥
 न व्यथेच्च तथाऽलाभे यथालब्धेन वर्तयेत् ॥
 न स्वादयेत्तथैवान्नं नाश्नीयात्कस्यचिद्गृहे ॥ ३ ॥
 मृन्मयालाबुपात्राणि यतीनां च विनिर्दिशेत् ॥
 तेषां संमार्जनाच्छुद्धिराद्भिश्चैव प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥
 कौपीनाच्छादनं वासो विभृयादव्यथश्चरन् ॥
 शून्यागारनिकेतः स्याद्यत्र सायंगृहो मुनिः ॥ ५ ॥
 द्वाष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ॥
 सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ ६ ॥
 सर्वभूतसमो मेघः समलोष्टाश्मकांचनः ॥
 ध्यानयोगरतो भिक्षुः प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ७ ॥
 जन्मना यस्तु निर्मुक्तो मरणेन तथैव च ॥
 आधिभिव्याधिभिश्चैव तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ८ ॥
 अशुचित्वं शरीरस्य प्रियाप्रियविपर्ययः ॥
 गर्भवासे च वसते तस्मान्मुच्येत नान्यथा ॥ ९ ॥

जगदेतन्निराक्रंदं निःसारकमनर्थकम् ॥

भोक्तव्यामिति निर्दिष्टो मुच्यते नात्र संशयः ॥ १० ॥

प्राणायामदेहदोषान्धारणाभिश्च क्लिबिषम् ॥

प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ ११ ॥

सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ॥

त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥ १२ ॥

मनसः संयमस्तज्ज्ञैर्धारणोति निगद्यते ॥

संहारश्चेन्द्रियाणां च प्रत्याहारः प्रकीर्तितः ॥ १३ ॥

हृदिस्थध्यानयोगेन देवदेवस्य दर्शनम् ॥

ध्यानं प्रोक्तं प्रवक्ष्यामि ध्यानयोगमतः परम् ॥ १४ ॥

हृदिस्था देवताः सर्वा हृदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥

हृदि ज्योतींषि सूर्यश्च हृदि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

स्वदेहमराणि कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ॥

ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्विष्णुं पश्येद्भूदि स्थितम् ॥ १६ ॥

हृद्यर्कश्चंद्रमाः सूर्यः सोममध्ये हुताशनः ॥

तेजोमध्ये स्थितं सत्त्वं सत्त्वमध्ये स्थितोऽच्युतः ॥ १७ ॥

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जंतोर्निहितो गुहायाम् ॥

तेजोमयं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥ १८ ॥

वासुदेवस्तमोऽधानां पणैरपि विधीयते ॥

अज्ञानपटसंवीतैरिन्द्रियैर्विषयेच्छुभिः ॥ १९ ॥

एष वै पुरुषो विष्णुर्व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ॥

एष धाता विधाता च पुराणो निष्कलः शिवः ॥२०॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥

यं वै विदित्वा न बिभेति मृत्योर्नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥२१॥

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ॥

पंचैतानि विजानीयान्महाभूतानि पण्डितः ॥ २२ ॥

चक्षुः श्रोत्रं स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ॥

बुद्धीन्द्रियाणि जानीयात्पंचैमानि शरीरके ॥ २३ ॥

रूपं शब्दस्तथा स्पर्शो रसो गन्धस्तथैव च ॥

इन्द्रियार्थान्विजानीयात्पंचैव सततं बुधः ॥ २४ ॥

हस्तौ पादावुपस्थं च जिह्वा पायुस्तथैव च ॥

कर्मेन्द्रियाणि पंचैव नित्यमस्मिञ्छरीरके ॥ २५ ॥

मनो बुद्धिस्तथैवात्मा ह्यव्यक्तं च तथैव च ॥

इन्द्रियेभ्यः पराणीह चत्वारि कथितानि च ॥ २६ ॥

चतुर्विंशत्यथैतानि तत्त्वानि कथितानि च ॥

तथात्मानं तद्व्यतीतं पुरुषं पंचविशकम् ॥ २७ ॥

यं तु ज्ञात्वा विमुच्यन्ते ये जनाः साधुवृत्तयः ॥

तदिदं परमं गुह्यमेतदक्षरमुत्तमम् ॥ २८ ॥

अशब्दरसमस्पर्शमरूपं गन्धवर्जितम् ॥

निर्दुःखमसुखं शुद्धं तादृष्णोः परमं पदम् ॥ २९ ॥

अजं निरंजनं शांतमव्यक्तं ध्रुवमक्षरम् ॥

अनादिनिधनं ब्रह्म तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ३० ॥

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहबंधनः ॥

सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ३१ ॥

वालाग्रशतशो भागः कल्पितस्तु सहस्रधा ॥

तस्य शततमाद्वागाज्जीवः सूक्ष्म उदाहृतः ॥ ३२ ॥

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ॥

मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा तथा परः ॥ ३३ ॥

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ॥

पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ ३४ ॥

एष सर्वेषु भूतेषु तिष्ठत्यविकलः सदा ॥

दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मबुद्धिभिः ॥ ३५ ॥

इति शंखस्मृतौ सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियांग मलकर्षणम् ॥

क्रियास्नानं तथा षष्ठं षोढा स्नानं प्रकीर्तितम् ॥ १ ॥

अस्नातः पुरुषोऽनर्हो जप्याग्निहवनादिषु ॥

प्रातःस्नानं तदर्थं च नित्यस्नानं प्रकीर्तितम् ॥ २ ॥

चंडालशवभूषाद्यं स्पृष्ट्वा स्नानं रजस्वलाम् ॥

स्नानानर्हस्तु यः स्नाति स्नानं नैमित्तिकं च तत् ॥ ३ ॥
 पुष्यस्नानादिकं स्नानं दैवज्ञविधिचोदितम् ॥
 तद्धि काम्यं समुद्दिष्टं नाकामस्तत्प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥
 जप्तुकामः पार्वत्राणि अर्चिष्यन्देवतां पितॄन् ॥
 स्नानं समाचरेद्यस्तु क्रियांगं तत्प्रकीर्तितम् ॥ ५ ॥
 मलापकर्षणार्थाय स्नानमभ्यंगपूर्वकम् ॥
 मलापकर्षणार्थाय प्रवृत्तिस्तस्य नान्यथा ॥ ६ ॥
 सरित्सु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च ॥
 क्रियास्नानं समुद्दिष्टं स्नानं तत्र महाक्रिया ॥ ७ ॥
 तत्र काम्यं तु कर्तव्यं यथावद्विधिचोदितम् ॥
 नित्यं नैमित्तिकं चैव क्रियांगं मलकर्षणम् ॥ ८ ॥
 तीर्थाभावे तु कर्तव्यमुष्णादकपरोदकैः ॥
 स्नानं तु वह्नितप्तेन तथैव परवारिणा ॥ ९ ॥
 शरीरशुद्धिर्विज्ञाता न तु स्नानफलं भवेत् ॥
 अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति तीर्थस्नानात्फलं भवेत् ॥ १० ॥
 सरःसु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च ॥
 स्नानमेव क्रिया तस्मात्स्नानात्पुण्यफलं स्मृतम् ॥ ११ ॥
 तीर्थं प्राप्यानुषंगेण स्नानं तीर्थं समाचरेत् ॥

स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्राफलेन तु ॥ १२ ॥
 सर्वतीर्थानि पुण्यानि पापघ्नानि सदा नृणाम् ॥
 परास्परानपेक्षाणि कथितानि मनीषिभिः ॥ १३ ॥
 सर्वे प्रस्रवणाः पुण्याः सरांसि च शिलोच्चयाः ॥
 नद्यः पुण्यास्तथा सर्वा जाह्नवी तु विशेषतः ॥ १४ ॥
 यस्य पादौ च हस्तौ च मनश्चैव सुसंयतम् ॥
 विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥ १५ ॥
 नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत् ॥
 यथोक्तफलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम् ॥ १६ ॥
 इति श्रीशंखस्मृतौ नवमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

क्रियास्नानं तु वक्ष्यामि यथावद्विधिपूर्वकम् ॥
 मृद्भिरद्विश्च कर्तव्यं शौचमादौ यथाविधि ॥ १ ॥
 जले निमग्न उन्मज्ज्य उपस्पृश्य यथाविधि ॥
 जलस्यावाहनं कुर्यात्तत्प्रवक्ष्याम्यतः परम् ॥ २ ॥
 प्रपद्ये वरुणं देवमंभसां पतिमूर्जितम् ॥
 याचितं देहि मे तीर्थं सर्वपापापनुत्तये ॥ ३ ॥
 तीर्थमावाहयिष्यामि सर्वाधविनिषूदनम् ॥
 सान्निध्यमस्मिन्सत्तोये भज त्वं मदनुग्रहात् ॥ ४ ॥

रुद्रान्प्रपद्ये वरदान्सर्वानप्सुसदस्तथा ॥

सर्वानप्सुसदश्चैव प्रपद्ये प्रणतः स्थितः ॥ ५ ॥

देवमप्सुसदं वह्निं प्रपद्येऽघानिषूदनम् ॥

अपः पुण्याः पवित्राश्च प्रपद्ये शरणं तथा ॥ ६ ॥

रुद्रश्चान्निश्च सर्पाश्च वरुणश्चाप एव च ॥

शमयंत्वाशु मे पापं मां रक्षंतु च सर्वशः ॥ ७ ॥

इत्येवमुक्त्वा कर्तव्यं ततः संमार्जनं जले ॥

आपोहिष्ठेति तिसृभिर्यथावदनुपूर्वशः ॥ ८ ॥

हिरण्यवर्णेति वदेदग्निश्च तिसृभिस्तथा ॥

शन्नोदेवीति च तथा शन्न आपस्तथैव च ॥ ९ ॥

इदमापः प्रवहत तथा मंत्रमुदीरयेत् ॥

एवं मंत्रान्समुच्चार्य छंदांसि ऋषिदेवताः ॥ १० ॥

अघमर्षणसूक्तस्य संस्मरन्प्रयतः सदा ॥

छंद आनुष्टुभं तस्य ऋषिश्चैवाघमर्षणः ॥ ११ ॥

देवता भाववृत्तन्तु पापघ्नस्य प्रकीर्तितः ॥

ततोऽभसि निमग्नस्तु त्रिः पठेदघमर्षणम् ॥ १२ ॥

यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापप्रणाशनः ॥

तथाघमर्षणं सूक्तं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १३ ॥

अनेन स्नात्वा अग्न्यध्वे स्नातवान्धौतवाससा ॥

परिवर्तितवासास्तु तीर्थतीरमुपस्पृशेत् ॥ १४ ॥

उदकस्याप्रदानाच्च स्नानशाटीं न पीडयेत् ॥

अनेन विधिना स्नातस्तर्थास्य फलमश्नुते ॥ १५ ॥

इति शंखस्मृतौ नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १० .

अतः परं प्रवक्ष्यामि शुभामाचमनक्रियाम् ॥

कायं कनिष्ठिकामूले तीर्थमुक्तं मनीषिभिः ॥ १ ॥

अंगुष्ठमूले च तथा प्राजापत्यं विचक्षणैः ॥

अंगुल्यग्रे स्मृतं दिव्यं पित्र्यं तर्जनिमूलकम् ॥ २ ॥

प्राजापत्येन तीर्थेन त्रिः प्राश्नोयाज्जलं द्विजः ॥

द्विः प्रमृज्य मुखं पश्चात्स्वान्याद्विः समुपस्पृशेत् ॥ ३ ॥

हृद्गाभिः पूयते विप्रः कंठगाभिश्च भूमिपः ॥

तालुगाभिस्तथा वैश्यः शूद्रः स्पृष्टाभिरंततः ॥ ४ ॥

अंतर्जानुः शुचौ देशे प्राङ्मुखः सुसमाहितः ॥

उदङ्मुखो वा प्रयतो दिशश्चानवलोकयन् ॥ ॥

अद्विः समुद्धृताभिस्तु हीनाभिः फेनबुद्बुदैः ॥

बहिना चाप्यतप्ताभिरक्षाराभिरुपस्पृशेत् ॥ ६ ॥

तर्जन्यंगुष्ठयोगेन स्पृशेन्नासापुटद्वयम् ॥

अंगुष्ठमध्ययोगेन स्पृशेन्नेत्रद्वयं ततः ॥ ७ ॥

अंगुष्ठानामिकायोगे श्रवणौ समुपस्पृशेत् ॥

कनिष्ठांगुष्ठयोगेन स्पृशेत्स्कंधद्वयं ततः ॥ ८ ॥

सर्वासामेव योगेन नाभिं च हृदयं तथा ॥

संस्पृशेच्च तथा मूर्ध्नि एष आचमने विधिः ॥ ९ ॥

त्रिः प्राशनीयाद्यदंभस्तु प्रीतास्तेनास्य देवताः ॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च भवन्तीत्यनुशुश्रुम ॥ १० ॥

गंगा च यमुना चैव प्रीयते परिमार्जनात् ॥

नासत्यदस्यौ प्रीयेते स्पृष्टे नासापुटद्वये ॥ ११ ॥

स्पृष्टे लोचनयुग्मे तु प्रीयेते शशिभास्करौ ॥

कर्णयुग्मे तथा स्पृष्टे प्रीयेते अनिलानलौ ॥ १२ ॥

स्कंधयोः स्पर्शनादस्य प्रीयन्ते सर्वदेवताः ॥

मूर्ध्नः संस्पर्शनादस्य प्रीतस्तु पुरुषो भवेत् ॥ १३ ॥

विना यज्ञोपवीतेन तथा मुक्ताशिखो द्विजः ॥

अप्रक्षालितपादस्तु आचांतोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥ १४ ॥

बहिर्जानुरूपस्पृश्य एकहस्तापितैर्जलैः ॥

सोपानत्कस्तथा तिष्ठन्नैव शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ १५ ॥

आचम्य च पुरा प्रोक्तं तीर्थसंमार्जनं तु यत् ॥

उपस्पृशेत्ततः पश्चान्मंत्रेणानेन धर्मतः ॥ १६ ॥

अंतश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः ॥

त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपोज्योती रसोऽमृतम् ॥ १७ ॥

आचम्य च ततः पश्चादादित्याभिमुखो जलम् ॥
 उदुत्यंजातवेदसामिति मंत्रेण निःक्षिपेत् ॥ १८ ॥
 एष एव विधिः प्रोक्तः संध्यायाश्च द्विजातिषु ॥
 पूर्वा संध्यां जपंस्तिष्ठेदासीनः पश्चिमां तथा ॥ १९ ॥
 ततो जपेत्पवित्राणि पवित्रं चाथ शक्तितः ॥
 ऋषयो दीर्घसंध्यत्वादीर्घमायुरवाप्नुयुः ॥ २० ॥
 सर्ववेदपवित्राणि वक्ष्याम्यहमतः परम् ॥
 येषां जपैश्च होमैश्च पूयंते मानवाः सदा ॥ २१ ॥
 इति शंखस्मृतौ दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

अथमर्षणं देववृत्तं शुद्धवत्पश्च तत्समाः ॥
 कष्मांड्यः पावमान्यश्च सावित्र्यश्च तथैव च ॥ १ ॥
 अभीष्टद्रुपदा चैव स्तोमानि व्याहृतीस्तथा ॥
 भारुंडानि च सामानि गायत्री चौशनं तथा ॥ २ ॥
 पुरुषवृत्तं च भावं च तथा सोमव्रतानि च ॥
 अबिलगं बार्हस्पत्यं च वाक्सूक्तममृतं तथा ॥ ३ ॥
 शतरुद्रियमथर्वशिरस्त्रिसुपर्णं महाव्रतम् ॥
 गोसूक्तमश्वसूक्तं च त्विंद्रसूक्तं च सामनी ॥ ४ ॥

त्रीण्याज्यदोहानि रथंतरं च ह्यमित्रतं वामदेवव्रतं च ॥
 एतानि गीतानि पुनन्ति जंतूञ्जातिस्मरत्वं लभते यदाच्छेत्
 इति शंखस्मृतावेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

इति वेदपवित्राण्यभिहितानि एभ्यः सावित्री विशिष्यते
 नास्त्यवमर्षणात्परमंतजलन सावित्र्या समं जप्यं न व्याहृति
 समं हुतम् ॥ कुशशय्यामासीनः कुशोत्तरीयो वा कुश
 वित्रपाणिः प्राङ्मुखः सूर्याभिमुखो वा अक्षमालामुपादा
 देवताध्यायी जपं कुर्यात् ॥ सुवर्णमणिमुक्तास्फटिकपद्मा
 रुद्राक्षपुत्रजीवकानामन्यतमानादाय मालां कुर्यात् ॥ कुशग्रं
 कृत्वा वामहस्तोपायनैर्वा गणयेत् आदौ देवतामार्घ्यं छं
 स्मरेत् ततः सप्रणवसव्याहृतिकामादावन्ते च शिरसा गायत्रीं
 मावर्तयेत् ॥ अथास्याः सविता देवता ऋषिर्विश्वामित्रो गाय
 छंदः ॐकार प्रणवाद्याः ॐभूः ॐभुवः ॐस्वः ॐम
 ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यामिति व्याहृतयः ॐ आपो ज्यो
 रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोमिति शिरः ॥ भवंति च
 श्लोकाः ॥

सव्याहृतिकां सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ॥

ये जपन्ति सदा तेषां न भयं विद्यते क्वचित् ॥ १ ॥

शतजप्ता तु सा देवी दिनपापप्रणाशिनी ॥
 सहस्रजप्ता तु तथा पातकेभ्यः समुद्धरेत् ॥ २ ॥
 दशसाहस्रजप्ता तु सर्वकल्मषनाशिनी ॥
 सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥
 सुरापश्च विशुद्ध्येत लक्षजप्यान्त्र संशयः ॥ ३ ॥
 प्राणायामत्रयं कृत्वा स्नानकाले समाहितः ॥
 अहोरात्रकृतात्पापात्तत्क्षणादेव मुच्यते ॥ ४ ॥
 सव्याहृतिकाः सप्रणवाः प्राणायामास्तु षोडश ॥
 अपि भ्रूणहनं माप्नात्पुनस्त्यहरहः कृताः ॥ ५ ॥
 हुता देवी विशेषेण सर्वकामप्रदायिनी ॥
 सर्वपापक्षयकरी वरदा भक्तवत्सला ॥ ६ ॥
 शान्तिकामस्तु जुहुयात्सावित्रीमक्षतैः शुचिः ॥
 हंतुकामोऽपमृत्युं च घृतेन जुहुयात्तथा ॥ ७ ॥
 श्रीकामस्तु तथा पद्मैर्विल्वैः कांचनकामुकः ॥
 ब्रह्मवर्चसकामस्तु पयसा जुहुयात्तथा ॥ ८ ॥
 घृतप्लुतैस्तिलैर्वाह्निं जुहुयात्सुसमाहितः ॥
 गायत्र्ययुतहोमाच्च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ९ ॥
 पापात्मा लक्षहोमेन पातकेभ्यः प्रमुच्यते ॥
 अभीष्टं लोकमाप्नोति प्राप्नुयात्काममीप्सितम् ॥ १० ॥
 गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी ॥

गायत्र्याः परमं नास्ति दिवि चेह च पावनम् ॥ ११
 हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे ॥
 तस्मात्तामभ्यसेन्निर्यं ब्राह्मणो नियतः शुचिः ॥ १२
 गायत्रीजप्यनिरतं हव्यकव्येषु भोजयेत् ॥
 तस्मिन्न तिष्ठते पापमब्धिरिव पुष्करे ॥ १३ ॥
 जप्येनैव तु संसिद्धयेद्ब्राह्मणो नात्र संशयः ॥
 कुर्यादन्यत्र वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ॥ १४ ॥
 उपांशु स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः ॥
 नोच्चैर्जाप्यं बुधः कुर्यात्सावित्र्यास्तु विशेषतः ॥ १५
 सावित्रीजाप्यनिरतः स्वर्गमाप्नोति मानवः ॥
 गायत्रीजाप्यनिरतो मोक्षोपायं च विंदति ॥ १६ ॥
 तास्मात्सर्वप्रयत्नेन स्नातः प्रयतमानसः ॥
 गायत्रीं तु जपेद्भक्त्या सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ १७ ॥
 इति शंखस्मृतौ द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

स्नातः कृतजप्यस्तदनु प्राङ्मुखो दिव्येन तीर्थेन देवानुदवे
 तर्पयेत् ॥ अथ तर्पणाविधिः ॥ ॐ भगवंतं शेषं तर्पयामि
 कालामिरुद्रं तु ततो रुक्मभौमं तथैव च ॥ श्वेतभौमं त
 प्रोक्तं पातालानां च सप्तमम् ॥ १ ॥ जंबूद्वीपं ततः प्रो

॥ कद्वीपं ततः परम् ॥ गोमेदपुष्करे तद्वच्छाकारूपं च ततः
 परम् ॥ २ ॥ शार्वरं ततः स्वधामानं ततः हिरण्यरोमाणं ततः
 त्वस्थापिनो लोकांस्तर्पयेत् ॥ लवणोदं ततः दधिमण्डोदं
 ततः सुरोदं ततः घृतोदं ततः क्षीरोदं ततः इक्षूदं ततः
 स्वादूदं ततः इति सप्तसमुद्रकम् मत्पृच्छं पुरुषसूक्तेनोदकांज-
 लीनं दद्यात् पुष्पाणि च तथा भक्त्या ॥ अथ कृतापसव्यो
 दक्षिणामुखोऽतर्जानुः पित्र्येण पितॄणां यथाश्राद्धं प्रकाममुदकं
 दद्यात् ॥ सौवर्णेन पात्रेण राजतेनौदुम्बरेण खड्गपात्रेणान्य-
 पात्रेण वोदकं पितृतीर्थं स्पृशन्दद्यात् ॥ पित्रे पितामहाय प्रपि-
 तामहाय मात्रे मातामहाय प्रमातामहाय मात्रे मातामह्यै
 प्रमातामह्यै सप्तमान्पुरुषान् पितृपक्षे यावतां नाम जानीयात्
 पितृपक्षाणां तर्पणं कृत्वा गुरुणां मातृपक्षाणां तर्पणं कुर्यात् ॥
 मातृपक्षाणां तर्पणं कृत्वा संबन्धिनां श्वानां कुर्यात् ॥
 तेषां कृत्वा सुहृदां कुर्यात् ॥ भवंति चात्र श्लोकाः ॥

विना रौप्यसुवर्णेन विना ताम्रतिलेन च ॥

विना दर्भैश्च मंत्रैश्च पितॄणां नोपतिष्ठते ॥ १ ॥

सौवर्णरजताभ्यां च खड्गेनौदुम्बरेण च ॥

दत्तमक्षयतां याति पितॄणां तु तिलोदकम् ॥ २ ॥

हेम्ना तु सह यदत्तं क्षीरेण मधुना सह ॥

तदप्यक्षयतां याति पितॄणां तु तिलोदकम् ॥ ३ ॥

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ॥

पयौमूलफलैर्वापि पितॄणां प्रीतिमावहन् ॥ ४ ॥

स्नातः संतर्पणं कृत्वा पितॄणां तु तिलांभसा ॥

पितृयज्ञमवाप्नोति प्रीणाति च पितॄस्तथा ॥ ५ ॥

इति शंखस्मृतौ त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

ब्राह्मणान्न परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् ॥

पित्र्ये कर्मणि संप्राप्ते युक्तमाहुः परीक्षणम् ॥ १ ॥

ब्राह्मणा ये विकर्मस्था बैडालव्रतिकास्तथा ॥

उन्नांगा अतिरिक्तांगा ब्राह्मणाः पंक्तिदूषकाः ॥ २ ॥

गुरूणां प्रतिकूलाश्च वेदाग्न्युत्सादिनश्च ये ॥

गुरूणां त्यागिनश्चैव ब्राह्मणाः पंक्तिदूषकाः ॥ ३ ॥

अनध्यायेष्वधीयानाः शौचाचारविर्वर्जिताः ॥

शूद्रान्नरससंपुष्टा ब्राह्मणाः पंक्तिदूषकाः ॥ ४ ॥

षडंगवित्रिसुपर्णो बह्वृचो ज्येष्ठसामगः ॥

त्रिणाचिकेतः पंचामिर्ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥ ५ ॥

ब्रह्मदेयानुसंतानो ब्रह्मदेयाप्रदायकः ॥

ब्रह्मदेयापतिर्षश्च ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥ ६ ॥

ऋग्यजुःपारगो यश्च साम्नां यश्चापि पारगः ॥

अथर्वागिरसोऽध्येता ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥ ७ ॥
 नित्यं योगरतो विद्वान्समलोष्टाश्मकांचनः ॥
 ध्यानशीलो हि यो विद्वान्ब्राह्मणः पंक्तिपावनः ॥ ८ ॥
 द्वौ देवे प्राङ्मुखौ त्रींश्च पित्र्ये वा दङ्मुखौस्तथा ॥
 भोजयोद्विविधान्विप्रानेकैकमुभयत्र वा ॥ ९ ॥
 भोजयेदथवाऽप्येकं ब्राह्मणं पंक्तिपावनम् ॥
 देवे कृत्वा तु नैवेद्यं पश्चाद्ब्रह्मौ तु तत्क्षिपेत् ॥ १० ॥
 उच्छिष्टसान्निध्यौ कार्यं पिंडनिर्वपणं बुधैः ॥
 अमावे च तथा कार्यमग्निकार्यं यथाविधि ॥ ११ ॥
 श्राद्धं कृत्वा प्रयत्नेन त्वराक्रोधविवर्जितः ॥
 दृच्छमन्नं द्विजातिभ्यः श्रद्धया विनिवेदयेत् ॥ १२ ॥
 अन्यत्र पुष्पमूलेभ्यः पीठकेभ्यश्च पंडितः ॥
 भोजयेद्विविधान्विप्रान्गंधमाल्यसमुज्ज्वलान् ॥ १३ ॥
 यत्किंचित्पच्यते गेहे भक्ष्यं वा भोज्यमेव वा ॥
 अनिवेद्य न भोक्तव्यं पिंडमूले कदाचन ॥ १४ ॥
 उग्रगंधान्यगंधानि चैत्यवृक्षभवानि च ॥
 पुष्पाणि वर्जनीयानि रक्तवर्णानि यानि च ॥ १५ ॥
 तोयोद्भवानि देयानि रक्तान्यपि विशेषतः ॥
 ऊर्णासूत्रं प्रदातव्यं कार्पासमथवा नवम् ॥ १६ ॥
 दशां विवर्तयेत्प्राज्ञो यद्यनाहतवस्त्रजा ॥

घृतेन दीपो दातव्यस्तिलतैलेन वा पुनः ॥ १७ ॥

धूपार्थं गुग्गुलं दद्याद् घृतयुक्तं मधूत्कटम् ॥

चंदनं च तथा दद्यात्पिष्ट्वा च कुंकुमं शुभम् ॥ १८ ॥

भूतृणं सुरसं शिशुं पालकं सिंधुकं तथा ॥

कूष्मांडालानुवार्ताककोविदारांश्च वर्जयेत् ॥ १९ ॥

पिप्पलीमरिचं चैव तथा वै पिंडमूलकम् ॥

कृतं च लवणं सर्वं वंशाग्रं तु विवर्जयेत् ॥ २० ॥

राजमाषान्मसूरांश्च चणकान्कोरदूषकान् ॥

लोहितान्वृक्षनिर्यासाञ्छ्राद्धकर्मणि वर्जयेत् ॥ २१ ॥

आम्रमामलकीमिक्षुं मृद्रीकादधिदाडिमान् ॥

विदारीश्चैव रंभाद्या दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नतः ॥ २२ ॥

धानालाजान्मधुयुतान्सक्तूञ्छर्करया तथा ॥

दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन शृंगाटकविसेतकान् ॥ २३ ॥

भोजयित्वा द्विजान्भक्त्या स्वाचान्तान्दत्तदक्षिणान् ॥

अभिवाद्य पुनर्विप्राननुव्रज्य विसर्जयेत् ॥ २४ ॥

निमंत्रितस्तु यः श्राद्धे मैथुनं सेवते द्विजः ॥

श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च युक्तः स्यान्महतैनसा ॥ २५ ॥

कालशाकं सशल्कं च मांसं वाध्रर्णिसस्य च ॥

खड्गमांसं तथानंतं यमः प्रोवाच धर्मवित् ॥ २६ ॥

यद्ददाति गयास्थश्च प्रभासे पुष्करे तथा ॥

प्रयागे नैमिषारण्ये सर्वमानंत्यमश्नुते ॥ २७ ॥
 गंगायमुनयोस्तीर अयोध्यामरकंडके ॥
 नर्मदायां गयातीर्थे सर्वमानंत्यमश्नुते ॥ २८ ॥
 वाराणस्यां कुरुक्षेत्रे भृगुतुंगे हिमालये ॥
 सप्तवेण्वृषिकूपे च तदप्यक्षयमुच्यते ॥ २९ ॥
 म्लेच्छदेशे तथा रात्रौ संध्यायां च विशेषतः ॥
 न श्राद्धमाचरेत्प्राज्ञो म्लेच्छदेशे न च व्रजेत् ॥ ३० ॥
 हस्तिच्छायासु यदत्तं यदत्तं राट्टुदर्शने ॥
 विषुवत्ययने चैव सर्वमानंत्यमश्नुते ॥ ३१ ॥
 प्रौष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम् ॥
 प्राप्य श्राद्धं प्रकर्तव्यं मधुना पायसेन वा ॥ ३२ ॥
 प्रजां पुष्टिं यशः स्वर्गमारोग्यं च धनं तथा ॥
 नृणां श्राद्धैः सदा प्रीताः प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥ ३३ ॥
 इति श्रीशंखस्मृतौ चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पंचदशोऽध्यायः १५.

जनने मरणे चैव सर्पिडानां द्विजोत्तमः ॥
 व्यहाच्छुद्धिमवाप्नोति योऽग्निवेदसमन्वितः ॥ १ ॥
 सर्पिडता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते ॥
 नामधारकविप्रस्तु दशाहेन विशुद्ध्यति ॥ २ ॥

क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पक्षेण शुद्ध्यति ॥
 मासेन तु तथा शूद्रः शुद्धिमाप्नोति नान्तरा ॥ ३ ॥
 रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्त्रावे विशुद्ध्यति ॥
 अजातदंतबाले तु सद्यः शौचं विधीयते ॥ ४ ॥
 अहोरात्रात्तथा शुद्धिर्बाले त्वकृतचूडके ॥
 तथैवानुपनीते तु त्र्यहाच्छुध्यति बांधवाः ॥ ५ ॥
 अनुष्ठानां तु कन्यानां तथैव शूद्रजन्मनाम् ।
 अनुष्ठभार्यः शूद्रस्तु षोडशाद्वत्सरात्पराम् ॥ ६ ॥
 मृत्युं समधिगच्छेच्चेन्मासात्तस्यापि बांधवाः ॥
 शुद्धिं समधिगच्छेद्युर्नात्र कार्या विचारणा ॥ ७ ॥
 पितृवेश्मनि या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता ॥
 तस्यां मृतायां नाशौचं कदाचिदपि शाम्यति ॥ ८ ॥
 हीनवर्णा तु या नारी प्रमादात्प्रसवं व्रजेत् ॥
 प्रसवे मरणे तज्जमाशौचं नोपशाम्यति ॥ ९ ॥
 समानं खल्वशौचं तु प्रथमेन समापयेत् ॥
 असमानं द्वितीयेन धर्मराजवचो यथा ॥ १० ॥
 देशान्तरगतः श्रुत्वा कुल्यानां मरणोद्भवौ ॥
 यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ॥ ११ ॥
 अतीते दशरात्रे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥
 तथा संवत्सरेऽतीते स्नात एव विशुद्ध्यति ॥ १२ ॥

अनौरसेषु पुत्रेषु भार्यास्वन्यगतासु च ॥
 परपूर्वासु च स्त्रीषु व्यहाच्छुद्धिरिहेष्यते ॥ १३ ॥
 मातामहे व्यतीते तु चाचार्ये च तथा मृते ॥
 गृहे दत्तासु कन्यासु मृतासु तु व्यहस्तथा ॥ १४ ॥
 निवासराजनि प्रेते जाते दौहित्रके गृहे ॥
 आचार्यपत्नीपुत्रेषु प्रेतेषु दिवसेन च ॥ १५ ॥
 मातुले पक्षिणीं रात्रिं शिष्यत्विग्वांधवेषु च ॥
 स्रब्रह्मचारिण्येकाहमनूचाने तथा मृते ॥ १६ ॥
 एकरात्रिं त्रिरात्रं च षड्रात्रं मासमेव च ॥
 शूद्रे सपिंडे वर्णानामाशौचं क्रमशः स्मृतम् ॥ १७ ॥
 त्रिरात्रमथ षड्रात्रं पक्षं मासं तथैव च ॥
 वैश्ये सपिंडे वर्णानामाशौचं क्रमशः स्मृतम् ॥ १८ ॥
 सपिंडे क्षत्रिये शुद्धिः षड्रात्रं ब्राह्मणस्य तु ॥
 वर्णानां परिशिष्टानां द्वादशाहं विनिर्दिशेत् ॥ १९ ॥
 सपिंडे ब्राह्मणे वर्णाः सर्व एवाविशेषतः ॥
 दशरात्रेण शुध्येयुरित्याह भगवान्यमः ॥ २० ॥
 भृग्वभ्यनशनांभोभिर्मृतानामात्मघातिनाम् ॥
 पतितानां च नाशौचं शस्त्रविद्युद्धताश्च ये ॥ २१ ॥
 यतिव्रतिब्रह्मचारिनृपकारुक्दीक्षिणः ॥
 नाशौचभाजः कथिता राजाज्ञाकारिणश्च ये ॥ २२ ॥

यस्तु भुक्तं पराशौचे वर्णा सोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥
 अशौचशुद्धौ शुद्धिश्च तस्याप्युक्ता मनीषिभिः ॥ २३ ॥
 पराशौचे नरो भुक्त्वा कृमियोनौ प्रजायते ॥
 भुक्त्वा न्नं म्रियते यस्य तस्य योनौ प्रजायते ॥ २४ ॥
 दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायः पितृकर्म च ॥
 प्रेतापिण्डे क्रियावर्जमाशौचे विनिवर्तते ॥ २५ ॥
 इति शङ्खस्मृतौ भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.

मृन्मयं भाजनं सर्वं पुनः पाकेन शुद्ध्यति ॥
 मद्यैर्मूत्रैः पुराणैर्वा घृबनैः पूयशोणितैः ॥ १ ॥
 सस्पृष्टं नैव शुद्ध्यति पुनः पाकेन मृन्मयम् ॥
 एतैरेव तथा स्पृष्टं ताम्रसौवर्णराजतम् ॥ २ ॥
 शुद्ध्यत्यावर्तितं पश्चादप्यथा केवलाभसम् ॥
 अम्लोदकेन ताम्रस्य सीसरस्य त्रपुणस्तथा ॥ ३ ॥
 क्षारेण शुद्धिः कांस्यस्य लोहस्य च विनिर्दिशेत् ॥
 मुक्तामणिप्रवालानां शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ॥ ४ ॥
 अञ्जानां चैव भांडानां सर्वस्याश्ममयस्य च ॥
 शाकवर्जं मूलफलद्विदलानां तथैव च ॥ ५ ॥
 मार्जनाद्यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ॥
 उष्णाभसा तथा शुद्धिं सस्नेहानां विनिर्दिशेत् ॥ ६ ॥

शयनासनयानानां सशूर्पशकटस्य च ॥
 शुद्धिः संप्रोक्षणाद्यज्ञे करकंधनयोस्तथा ॥ ७ ॥
 मार्जनाद्वेश्मनां शुद्धिः क्षितेः शोधस्तु तक्षणात् ॥
 संमार्जितेन तोयेन वाससां शुद्धिरिष्यते ॥ ८ ॥
 बहूनां प्रोक्षणाच्छुद्धिर्धान्यादीनां विनिर्दिशेत् ॥
 प्रोक्षणात्संहतानां च दारवाणाञ्च तक्षणात् ॥ ९ ॥
 सिद्धार्थकानां कल्केन शृंगदंतमयस्य च ॥
 गोवालैः फलपात्राणामस्थ्रां शृंगवतां तथा ॥ १० ॥
 निर्यासानां गुडानां च लवणानां तथैव च ॥
 कुसुंभकुंकुमानां च ऊर्णाकार्पासयोस्तथा ॥ ११ ॥
 प्रोक्षणात्कथिता शुद्धिरित्याह भगवान्यमः ॥
 भूमिस्थमुदकं शुद्धं शुचि तोयं शिलागतम् ॥ १२ ॥
 वर्णगंधरसैर्दुष्टैर्वर्जितं यदि तद्भवेत् ॥
 शुद्धं नदीगतं तोयं सर्वदैव सुखाकरम् ॥ १३ ॥
 शुद्धं प्रसारितं पण्यं शुद्धे चाजाश्वयोर्मुखे ॥
 मुखवर्जं तु गौः शुद्धा मार्जारश्वाश्रमे शुचिः ॥ १४ ॥
 शय्या भार्या शिशुर्वस्त्रमुपवीतं कमंडलुः ॥
 आत्मनः कथितं शुद्धं न शुद्धं हि परस्य च ॥ १५ ॥
 नारीणां चैव वत्सानां शकुनीनां शुभं मुखम् ॥
 रात्रौ प्रस्रवणे वृक्षे मृगयायां सदा शुचि ॥ १६ ॥

शुद्धा भर्तुश्चतुर्थऽह्नि स्नानेन स्त्रीरजस्वला ॥

देवे कर्मणि पित्र्ये च पंचमेऽहनि शुद्ध्यति ॥ १७ ॥

रथ्याकर्दमतोयेन ष्ठीवनाद्येन वाप्यथ ॥

नाभेरूर्ध्वं नरः स्पृष्टः सद्यः स्नानेन शुद्ध्यति ॥ १८ ॥

कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा स्नात्वा भोक्तुमन्यतथा ॥

भुक्त्वा क्षुत्वा तथा सुप्त्वा पीत्वा चांभोऽवगाह्य च ॥ १९ ॥

रथ्यामाक्रम्य वाचामेद्वासो विपरिधाय च ॥

कृत्वा मूत्रं पुरीषं च लेपगंधापहं द्विजः ॥ २० ॥

उद्धृतैर्नाभसा शौचं मृदा चैव समाचरेत् ॥

पायौ च मृत्तिकाः सप्त लिंगे द्वे परिकीर्तिते ॥ २१ ॥

एकस्मिन्विंशतिर्हस्ते द्वयोर्देयाश्चतुर्दश ॥

तिस्रस्तु मृत्तिका ज्ञेयाः कृत्वा नखविशोधनम् ॥ २२ ॥

तिस्रस्तु पादयोर्ज्ञेयाः शौचकामस्य सर्वदा ॥

शौचमेतद्गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥ २३ ॥

त्रिगुणं तु वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥

मृत्तिका च विनिर्दिष्टा त्रिपर्व पूर्यते यया ॥ २४ ॥

इति शंखस्मृतौ षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

नित्यं त्रिषवणस्नार्या कृत्वा पर्णकुटीं वने ॥
 अधःशायी जटाधारी पर्णमूलफलाशनः ॥ १ ॥
 ग्रामं विशेषं भिक्षार्थं स्वकर्म परिकीर्तयन् ॥
 एककालं समश्नीयाद्वर्षे तु द्वादशे गते ॥ २ ॥
 हेमस्तेयी सुरापश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥
 व्रतेनैतेन शुद्ध्यन्ते महापातकिनस्त्वमे ॥ ३ ॥
 यागस्थं क्षत्रियं हत्वा वैश्यं हत्वा च याजकम् ॥
 एतदेव व्रतं कुर्यादात्रेयीविनिषूदकः ॥ ४ ॥
 कूटसाक्ष्यं तथैवोक्त्वा निक्षेपमपहत्य च ॥
 एतदेव व्रतं कुर्यात्त्यक्त्वा च शरणागतम् ॥ ५ ॥
 आहिताग्नेः स्त्रियं हत्वा मित्रं हत्वा तथैव च ॥
 हत्वा गर्भमविज्ञातमेतदेव व्रतं चरेत् ॥ ६ ॥
 वनस्थं च द्विजं हत्वा पार्थिवं च कृतागसम् ॥
 एतदेव व्रतं कुर्याद्विगुणं च विशुद्ध्ये ॥ ७ ॥
 क्षत्रियस्य च पादोनं वधेऽर्द्धं वैश्यघातने ॥
 अर्द्धमेव सदा कुर्यात्स्त्रीवधे पुरुषस्तथा ॥ ८ ॥
 पादं तु शूद्रहत्यायामुदकयागमने तथा ॥

गोवधे च तथा कुर्यात्परदारगतस्तथा ॥ ९ ॥
 पशून्हत्वा तथा ग्राम्यान्मांसं कृत्वा विचक्षणः ॥
 आरण्यानां वधे तद्वत्तदर्थं तु विधीयते ॥ १० ॥
 हत्वा द्विजं तथा सर्पजलेशयविलेशयान् ॥
 सप्तरात्रं तथा कुर्याद्रतं ब्रह्महणस्तथा ॥ ११ ॥
 अनस्त्रां तु शतं हत्वा सास्त्रां दशशतं तथा ॥
 ब्रह्महत्याव्रतं कुर्यात्पूर्णं संवत्सरं नरः ॥ १२ ॥
 यस्य यस्य च वर्णस्य वृत्तिच्छेदं समाचरेत् ॥
 तस्य तस्य वधे प्रोक्तं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ १३ ॥
 अपहृत्य तु वर्णानां भुवं प्राप्य प्रमादतः ॥
 प्रायश्चित्तं वधप्रोक्तं ब्राह्मणानुमतं चरेत् ॥ १४ ॥
 गोजाश्वस्यापहरणे मृणीनां रजतस्य च ॥
 जलापहरणे चैव कुर्यात्संवत्सरं व्रतम् ॥ १५ ॥
 तिलानां धान्यवस्त्राणां मद्यानामामिषस्य च ॥
 संवत्सरार्द्धं कुर्वीत व्रतमेतत्समाहितः ॥ १६ ॥
 लृणेषुकाष्ठतक्राणां रसानामपहारकः ॥
 मासमेकं व्रतं कुर्यादंतानां सर्पिषां तथा ॥ १७ ॥
 लवणानां गुडानां च मूलानां कुसुमस्य च ॥

मासाद्धं तु व्रतं कुर्यादेतदेव समाहितः ॥ १८ ॥
 लोहानां वैदलानां च सूत्राणां चर्मणां तथा ॥
 एकरात्रं व्रतं कुर्यादेतदेव समाहितः ॥ १९ ॥
 भुक्त्वा पलांडुं लशुनं मद्यं च करकाणि च ॥
 नारं मलं तथा मांसं विड्वराहं खरं तथा ॥ २० ॥
 गोधियकुंजरोष्ठं च सर्वं पांचनखं तथा ॥
 क्रव्यादं कुक्कुटं ग्राम्यं कुर्यात्संवत्सरं व्रतम् ॥ २१ ॥
 भक्ष्याः पंचनखास्त्वेते गोधाकच्छपशल्लकाः ॥
 खड्गश्च कशकश्चैव तान्हत्वा च चरेद्व्रतम् ॥ २२ ॥
 हंसं मद्गुरकं काकं काकोलं खंजरीटकम् ॥
 मत्स्यादांश्च तथा मत्स्यान्धलाकं शुकसारिके ॥ २३ ॥
 चक्रवाकं प्लवं कोकं मंडूकं भुजगं तथा ॥
 मासमेकं व्रतं कुर्यादेतच्चैव न भक्षयेत् ॥ २४ ॥
 राजीवान्सिहतुंडांश्च शकुलांश्च तथैव च ॥
 पाठीनरोहितौ भक्ष्यौ मत्स्येषु परिकीर्तितौ ॥ २५ ॥
 जलेचरांश्च जलजान्मुखाग्रनखषिष्किरान् ॥
 रक्तपादाञ्जालपादान्सप्ताहं व्रतमाचरेत् ॥ २६ ॥
 तित्तिरं च मयूरं च लावकं च कर्पिजलम् ॥
 वार्ध्निंसं वर्तकं च भक्ष्यानाह यमस्तथा ॥ २७ ॥

भुक्त्वा चोभयतोदंतांस्तथैकशफदंष्ट्रिणः ॥

तथा भुक्त्वा तु मांसं वै मासार्धं व्रतमाचरेत् ॥ २८ ॥

स्वयं मृतं तथा मांसं माहिषं त्वाजमेव च ॥

गोश्च क्षीरं विवत्सायाः संधिन्याश्च तथा पयः ॥

संधिन्यमेध्यं भक्षित्वा पक्षं तु व्रतमाचरेत् ॥ २९ ॥

क्षीराणि यान्यभक्ष्याणि तद्विकाराशने बुधः ॥

सप्तरात्रं व्रतं कुर्याद्यदेतत्परिकीर्तितम् ॥ ३० ॥

लोहितान्वृक्षनिर्यासान्ब्रश्चनप्रभवांस्तथा ॥

केवलानि च शुक्तानि तथा पर्युषितं च यत् ॥

गुडशुक्तं तथा भुक्त्वा त्रिरात्रं च व्रती भवेत् ॥ ३१ ॥

दधि भक्ष्यं च शुक्तेषु यश्चान्यद्दधिसंभवम् ॥

गुडशुक्तं तु भक्ष्यं स्यात्ससर्पिष्कमिति स्थितिः ॥ ३२ ॥

यवगोधूमजाः सर्वे विकाराः पयसश्च ये ॥

राजवाडवकुल्यं च भक्ष्यं पर्युषितं भवेत् ॥ ३३ ॥

राजीवपक्षं मांसं च सर्वयत्नेन वर्जयेत् ॥

संवत्सरं व्रतं कुर्यात्प्राश्यैताञ्ज्ञानतस्तु तान् ॥ ३४ ॥

शूद्रान्नं ब्राह्मणो भुक्त्वा तथा रंगावतारिणः ॥

चिकित्सकस्य क्षुद्रस्य तथा स्त्रीमृगजीविनः ॥ ३५ ॥

पंढस्य कुलटायाश्च तथा बंधनचारिणः ॥

बद्धस्य चैव चोरस्य अवीरायाः स्त्रियस्तथा ॥ ३६ ॥

चर्मकारस्य वेनस्य क्लीबस्य पतितस्य च ॥
 रुक्मकारस्य धूर्तस्य तथा वार्धुषिकस्य च ॥ ३७ ॥
 कदर्यस्य नृशंसस्य वेश्यायाः कितवस्य च ॥
 गणान्नं भूमिपालान्नमन्नं चैव श्वजीविनाम् ॥ ३८ ॥
 मौजिकान्नं सूतिकान्नं भुक्त्वा मासं व्रतं चरेत् ॥
 शूद्रस्य सततं भुक्त्वा षण्मासान्व्रतमाचरेत् ॥ ३९ ॥
 वैश्यस्य तु तथाभुक्त्वा त्रीन्मासान्व्रतमाचरेत् ॥
 क्षत्रियस्य तथा भुक्त्वा द्वौ मासौ व्रतमाचरेत् ॥ ४० ॥
 ब्राह्मणस्य तथा भुक्त्वा मासमेकं व्रतं चरेत् ॥
 अपः सुराभाजनस्थाः पीत्वा पक्षं व्रतं चरेत् ॥ ४१ ॥
 मद्यभाण्डगताः पीत्वा सप्तरात्रं व्रतं चरेत् ॥
 शूद्रोच्छिष्टाशने मासं पक्षमेकं तथा विशः ॥ ४२ ॥
 क्षत्रियस्य तु सप्ताहं ब्राह्मणस्य तथा दिनम् ॥
 अथ श्राद्धाशने विद्वान्मासमेकं व्रती भवेत् ॥ ४३ ॥
 परिव्रित्तिः परिवेत्ता यया च परिविंदति ॥
 व्रतं संवत्सरं कुर्युर्दातृयाजकपंचमाः ॥ ४४ ॥
 काकोच्छिष्टं गवाघ्रातं भुक्त्वा पक्षं व्रती भवेत् ॥ ४५ ॥
 दूषितं केशकीटैश्च मूषिकालांगलेन च ॥
 मक्षिकामशकेनापि त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ॥ ४६ ॥
 वृथाकृसरसंयावपायसापूपशङ्कुलीः ॥

भुक्त्वा त्रिरात्रं कुर्वीत व्रतमेतत्समाहितः ॥ ४७ ॥
 नील्या चैव क्षतो विप्रः शुना दष्टस्तथैव च ॥
 त्रिरात्रं तु व्रतं कुर्यात्पुंश्चलीदशनक्षतः ॥ ४८ ॥
 पादप्रतापनं कृत्वा वह्निं कृत्वा तथाप्यधः ॥
 कुशैः प्रमृज्य पादौ च दिनमेकं व्रती भवेत् ॥ ४९ ॥
 नीलीवस्त्रं परीधाय भुक्त्वा स्नानार्हणस्तथा ॥
 त्रिरात्रं च व्रतं कुर्याच्छिच्छत्वा गुल्मलतास्तथा ॥ ५० ॥
 अध्यास्य शयनं यानमासनं पादुके तथा ॥
 पलाशस्य द्विजश्रेष्ठास्त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ॥ ५१ ॥
 वाग्दुष्टं भावदुष्टं च भाजने भावदूषिते ॥
 भुक्त्वात्रं ब्राह्मणः पश्चात्त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ॥ ५२ ॥
 क्षत्रियस्तु रणे दत्त्वा पृष्ठं प्राणपरायणः ॥
 संवत्सरं व्रतं कुर्याच्छिच्छत्वा पिप्पलपादपम् ॥ ५३ ॥
 दिवा च मैथुनं कृत्वा स्नात्वा नमस्तथांभसि ॥
 नम्रां परस्त्रियं दृष्ट्वा दिनमेकं व्रती भवेत् ॥ ५४ ॥
 क्षिप्त्वाग्नावशुचि द्रव्यं तदेवांभसि मानवः ॥
 मासमेकं व्रतं कुर्यादुपकुध्य तथा गुरुम् ॥ ५५ ॥
 पीतावशेषं पानीयं पीत्वा च ब्राह्मणः क्वचित् ॥
 त्रिरात्रं तु व्रतं कुर्याद्भामहस्तेन वा पुनः ॥ ५६ ॥

एकपेक्ष्युपविष्टेषु विषमं यः प्रयच्छति ॥
 यश्च यावदसौ पक्वं कुर्यात्तु ब्राह्मणो व्रतम् ॥ ५७ ॥
 धारयित्वा तुलां चैव विषमं कारयेद्बुधः ॥
 सुरालवणमद्यानां दिनमेकं व्रती भवेत् ॥ ५८ ॥
 मांसस्य विक्रयं कृत्वा कुर्याच्चैव महाव्रतम् ॥
 विक्रीय पाणिना मद्यं तिलानि च तथाचरेत् ॥ ५९ ॥
 हुंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारं च गरीयसः ॥
 दिनमेकं व्रतं कुर्यात्प्रयतः सुसमाहितः ॥ ६० ॥
 प्रेतस्य प्रेतकार्याणि कृत्वा च धनहारकः ॥
 वर्णानां यद्व्रतं प्रोक्तं तद्व्रतं प्रयतश्चरेत् ॥ ६१ ॥
 कृत्वा पापं न गूहेत गूहमानं विवर्द्धते ॥
 कृत्वा पापं बुधः कुर्यात्पर्षदानुमतं व्रतम् ॥ ६२ ॥
 तस्करश्चापदाकीर्णं बहुव्याधमृगे वने ॥
 न व्रतं ब्राह्मणः कुर्यात्प्राणबाधभयात्सदा ॥ ६३ ॥
 सर्वत्र जीवनं रक्षेज्जीवन्पापमपोहति ॥
 व्रतैः कृच्छ्रैश्च दानैश्च इत्याह भगवान्यमः ॥ ६४ ॥
 शरीरं धर्मसर्वस्वं रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥
 शरीरात्स्रवते धमः पर्वतात्सलिलं यथा ॥ ६५ ॥

आलोच्य धर्मशास्त्राणि समेत्य ब्राह्मणैः सह ॥

प्रायश्चित्तं द्विजो दद्यात्स्वेच्छया न कदाचन ॥ ६६ ॥

इति शंखस्मृतौ सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.

अयं त्रिषवणस्नायी स्नाने स्नानेऽधमर्षणम् ॥

निमग्नस्त्रिः पठेदप्सु न भुंजीत दिनत्रयम् ॥ १ ॥

वीरासनं च तिष्ठेत गां दद्याच्च पयस्विनीम् ॥

अधमर्षणमित्येतद्व्रतं सर्वाधनाशनम् ॥ २ ॥

अयं सायं अयं प्रातस्त्पहमद्यादयाचितम् ॥

अयं परं च नाशनीयात्प्राजापत्यं चरन्व्रतम् ॥ ३ ॥

अयमुष्णं पिबेत्तोयं अयमुष्णं घृतं पिबेत् ॥

अयमुष्णं पयः पीत्वा वायुभक्षस्तयं भवेत् ॥ ४ ॥

तप्तकृच्छ्रं विजानीयाच्छीतैः शीतमुदाहृतम् ॥

द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः ॥ ५ ॥

विधिनोदकसिद्धान्नं समश्नीयात्प्रयत्नतः ॥

सक्तून्हि सोदकान्मांसं कृच्छ्रं वारुणमुच्यते ॥ ६ ॥

विल्वैरामलकैर्वापि पद्माक्षैरथवा शुभैः ॥

मासेन लोकैस्त्रीन्कृच्छ्रः कथ्यते बुधिसत्तमैः ॥ ७ ॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥

एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सांतपनं स्मृतम् ॥ ८ ॥

एतैस्तु व्यहमभ्यस्तैर्महासांतपनं स्मृतम् ॥ ९ ॥

पिण्याकं वामतक्रां बुसक्तूनां प्रतिवासरम् ॥

उपवासांतराभ्यासात्तुलापुरुष उच्यते ॥ १० ॥

गोपुरीषाशनो भूत्वा मासं नित्यं समाहितः ॥

व्रतं तु वार्द्धिकं कुर्यात्सर्वपापापनुत्तये ॥ ११ ॥

ग्रासं चंद्रकलावृद्ध्या प्राशनीयाद्वर्द्धयन्सदा ॥

ह्रासयेच्च कलाहानौ व्रतं चांद्रायणं स्मृतम् ॥ १२ ॥

मुंडस्त्रिषवणस्त्रायी अधःशायी जितेन्द्रियः ॥

स्त्रीशूद्रपतितानां च वर्जयेत्सारभाषणम् ॥ १३ ॥

पवित्राणि जपेच्छक्त्या जुहुयाच्चैव शक्तितः ॥

अयं विधिः स विज्ञेयः सर्वकृच्छ्रेषु सर्वदा ॥ १४ ॥

पापात्मानस्तु पापेभ्यः कृच्छ्रैः संतारिता नराः ॥

गतपापा दिवं यांति नात्र कार्या विचारणा ॥ १५ ॥

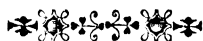
शंखप्रोक्तमिदं शास्त्रं योऽधीते बुद्धिमान्नरः ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तस्स्वर्गलोके महीयते ॥ १६ ॥

इति शंखस्मृतौ अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इति शंखस्मृतिः समाप्ता ॥ १३ ॥

अथ लिखितस्मृतिः १४,



इष्टापूर्ते तु कर्तव्ये ब्राह्मणेन प्रयत्नतः ॥
 इष्टेन लभते स्वर्गं पूर्ते मांक्षमवाप्नुयात् ॥ १ ॥
 एकाहमपि कर्तव्यं भूमिष्ठमुदकं शुभम् ॥
 कुलानि तारयेत्सप्त यत्र गौर्वितृषीभवेत् ॥ २ ॥
 भूमिदानेन ये लोका गोदानेन च कीर्तिताः ॥
 ताल्लोकान्प्राप्नुयान्मर्त्यः पादपानां प्ररोपणे ॥ ३ ॥
 वापीकूपतडागानि देवतापतनानि च ॥
 पतितान्युद्धरेद्यस्तु स पूर्वफलमश्नुते ॥ ४ ॥
 अग्निहोत्रं तपः संत्यं वेदानां चैव पालनम् ॥
 आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते ॥ ५ ॥
 इष्टापूर्ते द्विजातीनां सामान्यो धर्म उच्यते ॥
 अधिकारी भवेच्छूद्रः पूर्ते धर्मे न वैदिके ॥ ६ ॥
 यावदस्थि मनुष्यस्य गंगातोयेषु तिष्ठति ॥
 तावद्दर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ७ ॥

देवतानां पितॄणां च जले दद्याज्जलांजलिम् ॥
 असंस्कृतमृतानां च स्थले दद्याज्जलांजलिम् ॥ ८ ॥
 एकादशाहे प्रेतस्य यस्य चोत्सृज्यते वृषः ॥
 मुच्यते प्रेतलोकात्तु पितृलोकं स गच्छति ॥ ९ ॥
 एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्यप्येको गयां व्रजेत् ॥
 यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ १० ॥
 वाराणस्यां प्रविष्टस्तु कदाचिन्निष्क्रमेद्यदि ॥
 हसन्ति तस्य भूतानि अन्योऽयं करताडनैः ॥ ११ ॥ ॥
 गयाशिरसि यत्किञ्चिन्नाम्ना पिंडं तु निर्वपेत् ॥
 नरकस्थो दिवं याति स्वर्गस्थो मोक्षमाप्नुयात् ॥ १२ ॥
 आत्मनो वा परस्यापि गयाक्षेत्रे यतस्ततः ॥
 यन्नाम्ना पातयेत्पिंडं तं नयेद्ब्रह्म शाश्वतम् ॥ १३ ॥
 लोहितो यस्तु वर्णेन शंखवर्णखुरस्तथा ॥
 लांगूलशिरसा चैव स वै नीलवृषः स्मृतः ॥ १४ ॥
 नवश्राद्धं त्रिपक्षे च द्वादशस्वेव मासिकम् ॥
 षण्मासौ चाब्दिकं चैव श्राद्धान्येतानि षोडश ॥ १५ ॥
 यस्येतानि न कुर्वीत एकोद्दिष्टानि षोडश ॥
 पिशाचत्वं स्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥ १६ ॥
 सर्पिण्डाकरणादूर्ध्वं प्रतिसंवत्सरं द्विजः ॥
 मातापित्रोः पृथक्कुर्यादेकोद्दिष्टं मृतेऽहनि ॥ १७ ॥

वर्षे वर्षे तु कर्तव्यं मातापित्रोस्तु सन्ततम् ॥

सदैवं भोजयेच्छ्राद्धं पिंडमेकं तु निर्वपेत् ॥ १८ ॥

संक्रातावुपरागे च पर्वण्यपि महालये ॥

निर्वाप्यास्तु त्रयः पिंडा एकस्तु क्षयेऽहनि ॥ १९ ॥

एकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्वणं कुरुते द्विजः ॥

अकृतं तद्विजानीयात्स मातापितृघातकः ॥ २० ॥

अमायां वैक्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा यदि ॥

सपिंडीकरणादूर्ध्वं तस्योक्तः पार्वणो विधिः ॥ २१ ॥

त्रिदंडग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते ॥

अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणन्तु विधीयते ॥ २२ ॥

यस्य संवत्सरादर्वासपिंडीकरणं स्मृतम् ॥

प्रत्यहं तत्सोदकुंभं दद्यात्संवत्सरं द्विजः ॥ २३ ॥

पत्या चैकेन कर्तव्यं सपिंडीकरणं स्त्रियः ॥

पितामह्यापि तत्तस्मिन्सत्येवन्तु क्षयेऽहनि ॥

तस्यां सत्यां प्रकर्तव्यं तस्याः श्वश्र्वेति निश्चितम् ॥ २४ ॥

विवाहे चैव निर्वृते चतुर्थेऽहनि रात्रिषु ॥

एकत्वं सा गता भर्तुः पिंडे गोत्रे च सूतके ॥ २५ ॥

स्वगोत्राद् भ्रश्यते नारी उद्वाहात्सप्तमे पदे ॥

भर्तृगोत्रेण कर्तव्या दानपिंडोदकक्रिया ॥ २६ ॥

द्विमातुः पिंडदानं तु पिंडे पिंडे द्विनामतः ॥

षण्णां देयास्त्रयः पिडा एवं दाता न मुह्यति ॥ २७ ॥

अथ चेन्मन्त्रविद्युक्तः शरीरैः पांक्तिदूषणैः ॥

अदोषं तं यमः प्राह पांक्तिपावन एव सः ॥ २८ ॥

अमौकरणशेषन्तु पितृपात्रे प्रदापयेत् ॥

प्रतिपाद्य पितॄणां च न दद्याद्वैश्वदैविके ॥ २९ ॥

अनमिको यदा विप्रः श्राद्धं करोति पार्वणम् ॥

तत्र मातामहानां च कर्तव्यमुभयं सदा ॥ ३० ॥

अपुत्रा ये मृताः केचित्पुरुषा वा स्त्रियोऽपि वा ॥

तेभ्य एव प्रदातव्यमेकोदिष्टं न पार्वणम् ॥ ३१ ॥

यस्मिन्नाशौ गते सूर्ये विपत्तिः स्याद्द्विजन्मनः ॥

तस्मिन्नहनि कर्तव्या दानपिंडोदकक्रियाः ॥ ३२ ॥

वर्षवृद्ध्यभिषेकादि कर्तव्यमधिकं न तु ॥

अधिमासे तु पूर्वं स्याच्छ्राद्धं संवत्सरादपि ॥ ३३ ॥

स एव हेयो दिष्टस्य येन केन तु कर्मणा ॥

अभिघातान्तरं कार्य्यं तत्रैवाहः कृतं भवेत् ॥ ३४ ॥

शालामौ पचते अन्नं लौकिकेनापि नित्यशः ॥

यस्मिन्नेव पचेदन्नं तस्मिन्होमो विधीयते ॥ ३५ ॥

वैदिके लौकिके वापि नित्यं हुत्वा ह्यतंद्रितः ॥

वैदिके स्वर्गमाप्नोति लौकिके हंति किल्बिषम् ॥ ३६ ॥

अमौ व्याहृतिभिः पूर्वं हुत्वा मंत्रैस्तु शाकलैः ॥

संविभागं तु भूतेभ्यस्ततोऽश्रीयादनभिमान् ॥ ३७ ॥
 उच्छेषणं तु नोत्तिष्ठेद्यावद्विप्रविसर्जनम् ॥
 ततो गृहबलिं कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः ॥ ३८ ॥
 दर्भाः कृष्णाजिनं मंत्रा ब्राह्मणाश्च विशेषतः ॥
 नैते निर्माल्यतां यान्ति योक्तव्यास्ते पुनः पुनः ॥ ३९ ॥
 पानमाचमनं कुर्यात्कुशपाणिः सदा द्विजः ॥
 भुक्त्वानोच्छिष्टतां याति एष एव विधिः सदा ॥ ४० ॥
 पान आचमने चैव तर्पणे दैविके सदा ॥
 कुशहस्तो न दुष्येत यथा पाणिस्तथा कुशः ॥ ४१ ॥
 वामपाणौ कुशान्कृत्वा दक्षिणेन उपस्पृशेत् ॥
 बिनाचामन्ति ये मूढा रुधिरेणाचमन्ति ते ॥ ४२ ॥
 नीवीमध्येषु ये दर्भा ब्रह्मसूत्रेषु ये कृताः ॥
 पवित्रांस्तान्विजानीयाद्यथा कायस्तथा कुशाः ॥ ४३ ॥
 पिंडे कृतास्तु ये दर्भा यैः कृतं पितृतर्पणम् ॥
 मूत्रोच्छिष्टपुरीषं च तेषां त्यागो विधीयते ॥ ४४ ॥
 दैवपूर्वं तु यच्छ्राद्धमदैवं चापि यद्भवेत् ॥
 ब्रह्मचारी भवेत्तत्र कुर्याच्छ्राद्धं तु पैतृकम् ॥ ४५ ॥
 मातुः श्राद्धं तु पूर्वं स्यात्पितॄणां तदनंतरम् ॥
 ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम् ॥ ४६ ॥
 क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यः कालकामौ धूरिलोचनौ ॥

पुरुरवाआर्द्रवाश्च विश्वेदेवाः प्रकीर्तिताः ॥ ४७ ॥
 आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः ॥
 ये चात्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवंतु ते ॥ ४८ ॥
 द्वाष्टिश्राद्धे क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यश्च दैविके ॥ ४९ ॥
 कालः कामोऽग्निकाय्येषु अग्रे धूरिलोचनौ ॥
 पुरुरवा आर्द्रवाश्च पार्व्वणेषु नियोजयेत् ॥ ५० ॥
 यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वा पिता ॥
 नोपयच्छेत तां प्राज्ञः पुत्रिकाधर्मशंकया ॥ ५१ ॥
 अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम् ॥
 अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भविष्यति ॥ ५२ ॥
 मातुः प्रथमतः पिण्डं निर्व्वपेत्पुत्रिकासुतः ॥
 द्वितीये तु पितुस्तस्यास्तृतीयं तत्पितुः पितुः ॥ ५३ ॥
 मृन्मयेषु च पात्रेषु श्राद्धे यो भोजयेत्पितृन् ॥
 अन्नदाता पुरोधश्च भोक्ता च नरकं व्रजेत् ॥ ५४ ॥
 अलाभे मृन्मयं दद्यादबुद्धातस्तु तैर्द्विजैः ॥
 घृतेन प्रोक्षणं कार्य्यं मृदः पात्रं पवित्रकम् ॥ ५५ ॥
 श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे यस्तु भुंजीत विह्वलः ॥
 पतान्ति पितरस्तस्य लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ ५६ ॥
 श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च अध्वानं योऽधिगच्छति ॥
 भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं पांसुभोजनः ॥ ५७ ॥

पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनमैथुनम् ॥

दानं प्रतिग्रहं होमं श्राद्धं कृत्वाष्ट वर्जयेत् ॥ ५८ ॥

अध्वगामी भवेदश्वः पुनर्भोक्ता च वायसः ॥

कर्मकृज्जायते दासः स्त्रीगमेन च सूकरः ॥ ५९ ॥

दशकृत्वः पिबेदापः सावित्र्या चाभिमंत्रिताः ॥

ततः सन्ध्यामुपासीत शुद्धयेत तदनन्तरम् ॥ ६० ॥

आर्द्रवासास्तु यत्कुर्याद्वहिर्जातु च यत्कृतम् ॥

सर्वं तन्निष्फलं कुर्याज्जपं होमं प्रतिग्रहम् ॥ ६१ ॥

चान्द्रायणं नवश्राद्धे पराको मासिके तथा ॥

पक्षत्रये तु कृच्छ्रं स्यात्षण्मासे कृच्छ्रमेव च ॥ ६२ ॥

ऊनाब्दिके द्विरात्रं स्यादेकाहः पुनराब्दिके ॥

शवे मासं तु भुक्त्वा वा पादकृच्छ्रं विधीयते ॥ ६३ ॥

सर्पविप्रहतानां च शृंगिदंष्ट्रिसरीसृपैः ॥

आत्मनस्त्यागिनां चैव श्राद्धमेषां न कारयेत् ॥ ६४ ॥

गोभिर्हतं तथोद्वहं ब्राह्मणेन तु घातितम् ॥

तं स्पृशन्ति च ये विप्रा गोजाश्वाश्च भवंति ते ॥ ६५ ॥

अमिदाता तथा चान्ये पाशच्छेदकराश्च ये ॥

तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्ति मनुराह प्रजापतिः ॥ ६६ ॥

व्यहमुष्णं पिबेदापह्वयहमुष्णं पयः पिबेत् ॥

व्यहमुष्णं घृतं पीत्वा वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥ ६७ ॥

गोभूहिरण्यहरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य च ॥
 यमुद्दिश्य त्यजेत्प्राणांस्तमाहुर्ब्रह्मवातकम् ॥ ६८ ॥
 उद्यताः सह धावन्ते यद्येको धर्मधातकः ॥
 सर्वे ते शुद्धिमृच्छन्ति स एको ब्रह्मवातकः ॥ ६९ ॥
 पतितान्नं यदा भुंक्ते भुंक्ते चंडालवेश्मनि ॥
 स मासार्द्धं चरेद्द्वारि मांसं कामकृतेन तु ॥ ७० ॥
 यो धेनु पतितेनैव स्पर्शं स्नानं विधीयते ॥
 तेनैवोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ७१ ॥
 ब्रह्महा च सुरापायी स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥
 महान्ति पातकान्पादुस्नत्संसर्गी च पंचमः ॥ ७२ ॥
 स्नेहाद्वा यदि वा लोभाद्भयादज्ञानतोऽपि वा ॥
 कुर्वन्त्यनुग्रहं ये च तत्प्रापं तेषु गच्छति ॥ ७३ ॥
 उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टो ब्राह्मणस्तु कदाचन ॥
 तत्क्षणात्कुहते स्नानमाचामेन शुचिर्भवेत् ॥ ७४ ॥
 कुब्जवाग्रनखेष्ठेषु गद्गदेषु जडेषु च ॥
 जात्यन्धे बध्निरे मूके न दोषः परिवेदने ॥ ७५ ॥
 क्लीबे देशान्तरस्थे च पतिते व्रजितेऽपि वा ॥
 योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदने ॥ ७६ ॥
 पूरणे कूपवापीनां वृक्षच्छेदनपातने ॥
 विक्रीणीते गजं चार्धं गोवधं तस्य निर्दिशेत् ॥ ७७ ॥

पादोऽङ्गरोमवपनं द्विपादे श्मश्रु केवलम् ॥
 तृतीये तु शिखावर्जं चतुर्थे तु शिखावपः ॥ ७८ ॥
 चण्डालोदकसंस्पर्शं स्नानं येन विधीयते ॥
 तेनैवेच्छिष्टसंस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ७९ ॥
 चण्डालस्पृष्टभाण्डस्थं यत्तोयं पिबति द्विजः ॥
 तत्क्षणात्क्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ ८० ॥
 यदि नोत्क्षिप्यते तोयं शरीरे तस्य जीर्यति ॥
 प्राजापत्यं न दातव्यं कृच्छ्रं स्नातपनं चरेत् ॥ ८१ ॥
 चरेत्स्नान्तपनं विप्रः प्राजापत्यं तु क्षत्रियः ॥
 तदर्धं तु चरद्वैश्यः पादं शूद्रे तु दापयेत् ॥ ८२ ॥
 रजस्वला यदा स्पृष्टा शुना सूकरवायसैः ॥
 उपोष्य रजनीमेकां पंचगव्येन शुद्ध्यति ॥ ८३ ॥
 अज्ञानतः स्नानमात्रमा नाभेस्तु विशेषतः ॥
 अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं स्यात्तदीयस्पर्शने मतम् ॥ ८४ ॥
 बालश्चैव दशाहे तु पंचत्वं यदि गच्छति ॥
 सद्य एव विशुद्ध्येत नाशौचं नोदकक्रिया ॥ ८५ ॥
 शावसूतक उत्पन्ने सूतकं तु यदा भवेत् ॥
 शावेन शुध्यते सूतिर्न सूतिः शावशोधिनी ॥ ८६ ॥
 षष्ठेन शुद्ध्येतैकाहं पंचमे द्व्यहमेव तु ॥
 चतुर्थ सप्तरात्रं स्यात्त्रिपुरुषे दशमेऽहनि ॥ ८७ ॥

मरणारब्धमाशौचं संयोगो यस्य नाग्निभिः ॥
 आ दाहात्तस्य विज्ञेयं यस्य वैतानिको विधिः ॥ ८८ ॥
 आमं मांसं घृतं क्षौद्रं स्नेहाश्च फलसभवाः ॥
 अन्यभाण्डास्थिता ह्येते निष्क्रान्ताः शुचयः स्मृताः ॥ ८९ ॥
 मार्जनीरजसा सक्ते स्नानवस्त्रघटोदके ॥
 नवांभसि तथा चैव हन्ति पुण्यं दिवाकृतम् ॥ ९० ॥
 दिवा कपित्थच्छायायां रात्रौ दधिषु सक्तुषु ॥
 धात्रीफलेषु सर्वत्र अलक्ष्मीर्वसते सदा ॥ ९१ ॥
 यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः ॥
 तत्र तत्र तिलैर्होमं गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥ ९२ ॥
 इति श्रीमहर्षिलिखितप्रोक्ते धर्मशास्त्रेभाषाटीका सम्पूर्णा ॥ १४ ॥
 इति लिखितस्मृतिः समाप्ता ॥ ४१ ॥

अथ दक्षस्मृतिः १५.



प्रथमोऽध्यायः १.

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ दक्षस्मृतिप्रारंभः ॥
 सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः सर्ववेदविदां वरः ॥
 पारगः सर्वविद्यानां दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ १ ॥

उत्पत्तिः प्रलयश्चैव स्थितिः संहार एव च ॥
 आत्मा चात्मनि तिष्ठेत आत्मा ब्रह्मण्यवस्थितः ॥ २ ॥
 ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ॥
 एतेषां तु हितार्थाय दक्षः शास्त्रमकल्पयत् ॥ ३ ॥
 जातमात्रः शिशुस्ताविद्यावदष्टौ समा वयः ॥
 स हि गर्भसमो ज्ञेयो व्यक्तिमात्रप्रदर्शितः ॥ ४ ॥
 भक्ष्याभक्ष्ये तथा पेये वाच्यावाच्ये ऋतानृते ॥
 अस्मिन्चाले न दोषः स्यात्स यावन्नेोपनीयते ॥ ५ ॥
 उपनीते तु दोषोऽस्ति क्रियमाणैर्विगर्हितैः ॥
 अप्राप्तव्यवहारोऽसौ बालः षोडशवार्षिकः ॥ ६ ॥
 स्वीकरोति यदा वेदं चरेद्वेदव्रतानि च ॥
 ब्रह्मचारी भवेत्तावदूर्ध्वं स्नातो भवेद् गृही ॥ ७ ॥
 द्विविधो ब्रह्मचारी स्यादुपकुर्वाणको ह्यथ ॥
 द्वितीयो नैष्ठिकश्चैव तस्मिन्नेव व्रते स्थितः ॥ ८ ॥
 यो गृहाभममास्थाय ब्रह्मचारी भवेत्पुनः ॥
 न यतिर्न वनस्थश्च स सर्वाश्रमवर्जितः ॥ ९ ॥
 अनाश्रमी न तिष्ठेत दिनमेकमपि द्विजः ॥
 आश्रमेण विना तिष्ठन्प्रायश्चित्तीयते हि सः ॥ १० ॥
 जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये च रतः सदा ॥
 नासौ फलमवाप्नोति कुर्वाणोऽप्याश्रमाच्च्युतः ॥ ११ ॥

त्रयाणामानुलोम्यं हि प्रातिलोम्यं न विद्यते ॥

प्रातिलोम्येन यो याति न तस्मात्पापकृत्तमः ॥१२॥

मेखलाजिनदंडैश्च ब्रह्मचारीति लक्ष्यते ॥

गृहस्थो दानवेदाद्यैर्नखलोर्मेर्वनाश्रमी ॥ १३ ॥

त्रिदंडेन यातिश्चैव लक्षणानि पृथक्पृथक् ॥

यस्यैतल्लक्षणं नास्ति प्रायश्चित्ती वनाश्रमी ॥ १४ ॥

उक्तं कर्म क्रमो नोक्तो न काल ऋषिभिः स्मृतः ॥

द्विजानां च द्वितार्थाय दक्षस्तु स्वयमब्रवीत् ॥ १५ ॥

इति दक्षस्मृतौ प्रथमोऽध्यायः ॥॥ १

द्वितीयोऽध्यायः २.

प्रातरुत्थाय कर्तव्यं यद्विजेन दिने दिने ॥

तत्सर्वं संप्रवक्ष्यामि द्विजानामुपकारकम् ॥ १ ॥

उदयास्तमितं यावन्न विप्रः क्षणिको भवेत् ॥

नित्यनैमित्तिकैर्युक्तः काम्यैश्चान्यैरगर्हितैः ॥ २ ॥

संध्याद्यं वैश्वदेवांतं स्वकं कर्म समाचरेत् ॥

स्वकं कर्म परित्यज्य यदन्यत्कुरुते द्विजः ॥ ३ ॥

अज्ञानादथवा लोभात्स तेन पतितो भवेत् ॥

दिवसस्याद्यभागे तु कर्म तस्योपदिश्यते ॥ ४ ॥

द्वितीये च तृतीये च चतुर्थे पंचमे तथा ॥

षष्ठे च सप्तमे चैव ह्यष्टमे च पृथक्पृथक् ॥ ५ ॥

विभागेष्वेषु यत्कर्म तत्प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥

उषःकाले च सम्प्राप्ते शौचं कृत्वा यथार्थवत् ॥ ६ ॥

ततः स्नानं प्रकुर्वीत दन्तधावनपूर्वकम् ॥

अत्यन्तमलिनः कायो नवाच्छिद्रसमन्वितः ॥ ७ ॥

स्नवत्येष दिवा रात्रौ प्रातः स्नानं विशोधनम् ॥

क्लिद्यन्ति हि प्रसुप्तस्य इन्द्रियाणि स्नवन्ति च ॥ ८ ॥

अंगानि समतां यांति उत्तमान्यधमैः सह ॥

नानास्वेदसमाकीर्णः शयनादुत्थितः पुमान् ॥ ९ ॥

अस्नात्वा नाचरोत्किंचिज्जपहोमादिकं द्विजः ॥

नातरुत्याय यो विप्रः प्रातःस्नायी भवेत्सदा ॥ १० ॥

सप्तजन्मकृतं पापं त्रिभिर्वर्षैर्व्यरोहति ॥

उषस्युषसि यत्स्नानं सन्ध्यायामुदिते रवौ ॥ ११ ॥

प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनम् ॥

प्रातःस्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं हितत् ॥ १२ ॥

सर्वमर्हति पूतात्मा प्रातःस्नायी जपादिकम् ॥ १३ ॥

गुणा दश स्नानपरस्य साधो रूपं च पुष्टिश्च बलं च तेऽ

आरोग्यमायुश्च मनोऽनुरुद्धदुःस्वप्नघातश्च तपश्चमेव ॥ १४ ॥

स्नानादनन्तरं तावदुपस्पर्शनमुच्यते ॥

अनेन तु विधानेन स्वाचांतः शुचितामियात् ॥ १५ ॥
 प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च त्रिः पिबेदंबु वीक्षितम् ॥
 संवृत्पांगुष्ठमूलेन द्विःप्रमृज्यात्ततो मुखम् ॥ १६ ॥
 संहत्य तिसृभिः पूर्वमास्यमेवमुपस्पृशेत् ॥
 ततः पादौ समभ्युक्ष्य अंगानि समुपस्पृशेत् ॥ १७ ॥
 अंगुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं पश्चादुपस्पृशेत् ॥
 अंगुष्ठानामिकाभ्यां च चक्षुःश्रोत्रे पुनः पुनः ॥ १८ ॥
 कनिष्ठांगुष्ठयोर्नाभिं हृदयं तु तलेन चै ॥
 सर्वाभिश्च शिरः पश्चाद्बाहू चाग्नेन संस्पृशेत् ॥ १९ ॥
 संध्यायां च प्रभाते च मध्याह्ने च ततः पुनः ॥ २० ॥
 हृद्गाभिः पूयते विप्रः कंठगाभिश्च भूमिपः ॥
 वैश्यः प्राशितमात्राभिर्जिह्वागाभिः क्षत्रियोऽत्रिजाः ॥ २१ ॥
 संध्यां नोपासते यस्तु ब्राह्मणो हि विशेषतः ॥
 स जीवन्नेव शूद्रः स्यान्मृतः श्वा चैव जायते ॥ २२ ॥
 संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु ॥
 यदन्यत्कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥ २३ ॥
 संध्याकर्मावसाने तु स्वयं होमो विधीयते ॥
 स्वयं होमे फलं यत्तु तदन्येन न जायते ॥ २४ ॥
 ऋत्विक्पुत्रो गुरुर्भ्राता भागिनेयोऽथ विद्वपतिः ॥
 एभिरेव द्रुतं यत्तु तद्द्रुतं स्वयमेव तु ॥ २५ ॥

देवकार्यं ततः कृत्वा गुरुमंगलमीक्षणम् ॥

देवकार्यस्य सर्वस्य पूर्वाह्ने तु विधीयते ॥ २६ ॥

देवकार्याणि पूर्वाह्ने मनुष्याणां तु मध्यमे ॥

पितॄणामपराह्ने तु कार्यार्ण्येतानि यत्नतः ॥ २७ ॥

पौर्वाह्निकं तु यत्कर्म यदि तत्सायमाचरेत् ॥

न तस्य फलमाप्नोति वंध्यास्त्रीभैथुनं यथा ॥ २८ ॥

दिवसस्याद्यभागे तु सर्वमेतद्विधीयते ॥

द्वितीये चैव भागे तु वेदाभ्यासो विधीयते ॥ २९ ॥

वेदाभ्यासो हि विप्राणां परमं तप उच्यते ॥

ब्रह्मयज्ञः स विज्ञेयः षडंगसहितस्तु यः ॥ ३० ॥

वेदस्वीकरणं पूर्वं विचारोऽभ्यसनं जपः ॥

प्रदानं चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पंचधा ॥ ३१ ॥

समित्पुष्पकुशादीनां स कालः समुदाहृतः ॥

तृतीये चैव भागे तु पोष्यवर्गार्थसाधनम् ॥ ३२ ॥

माता पिता गुरुभार्या प्रजा दीनः समाश्रितः ॥

अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निः पोष्यवर्ग उदाहृतः ॥ ३३ ॥

ज्ञातिर्विधुजनः क्षीणस्तथाऽनाथः समाश्रितः ॥

अन्योऽप्यधनयुक्तश्च पोष्यवर्ग उदाहृतः ॥ ३४ ॥

सार्वभौतिकमन्नाद्यं कर्तव्यं तु विशेषतः ॥

ज्ञानविद्भ्यः प्रदातव्यमन्यथा नरकं व्रजेत् ॥ ३५ ॥

भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम् ॥
 नरकः पीडने तस्य तस्माद्यत्नेन तं भरेत् ॥ ३६ ॥
 स जीवति य एवैको बहुभिश्चोपजीव्यते ॥
 जीवन्तो मृतकास्त्वन्ये पुरुषाः स्वोदरंभराः ॥ ३७ ॥
 बह्वर्थं जीव्यते कैश्चित्कुटुंबार्थं तथा परैः ॥
 आत्मार्थान्यो न शक्नोति स्वोदरेणापि दुःखितः ॥ ३८ ॥
 दीनानाथविशिष्टेभ्यो दातव्यं भूतिमिच्छता ॥
 अदत्तदाना जायन्ते परभाग्योपजीविनः ॥ ३९ ॥
 यद्ददासि विशिष्टेभ्यो यज्जुहोषि दिने दिने ॥
 तत्ते वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षसि ॥ ४० ॥
 चतुर्थे तु तथा भागेस्नानार्थं मृदमाहरेत् ॥
 तिलपुष्पकुशादीनि स्नानं चाकृत्रिमे जले ॥ ४१ ॥
 नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं स्नानमुच्यते ॥
 तेषां मध्ये तु यन्नित्यं तत्पुनर्विद्यते त्रिधा ॥ ४२ ॥
 मलापकर्षणं पश्चान्मंत्रवत्तु जले स्मृतम् ॥
 संध्यास्नानमुभाभ्यां तु स्नानभेदाः प्रकीर्तिताः ॥ ४३ ॥
 मार्जनं जलमध्ये तु प्राणायामो यतस्ततः ॥
 उपस्थानं ततः पश्चाद्वायव्रीजप उच्यते ॥ ४४ ॥
 सविता देवता यस्य मुखमभिस्त्रिपात्स्थिता ॥
 विश्वामित्र ऋषिश्छंदो गायत्री सा विशिष्यते ॥ ४५ ॥

पंचमे तु तथा भागे संविभागो यथार्थतः ॥

पितृदेवमनुष्याणां कीटानां चोपदिश्यते ॥ ४६ ॥

देवैश्चैव मनुष्यैश्च तिर्यग्भिश्चोपजीव्यते ॥

गृहस्थः प्रत्यहं यस्मात्तस्माच्छ्रेष्ठाश्रमो गृही ॥ ४७

त्रयाणामाश्रमाणां तु गृहस्थो योनिरुच्यते ॥

सीदमानेन तेनैव सीदंतीहेतरे त्रयः ॥ ४८ ॥

मूलत्राणे भवेत्स्कंधः स्कन्धाच्छाखेति पल्लवाः ॥

मूलेनैव विनष्टेन सर्वमेतद्विनश्यति ॥ ४९ ॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रक्षणीयो गृहाश्रमी ॥

राज्ञा चान्यैस्त्रिभिः पूज्यो माननीयश्च सर्वदा ॥ ५०

गृहस्थोऽपि क्रियायुक्तो गृहेण न गृही भवेत् ॥

नचैव पुत्रदारेण स्वकर्मपरिवर्जितः ॥ ५१ ॥

अहुत्वा च तथाऽजप्त्वा अदत्त्वा यश्च भुंजते ॥

देवादीनामृणी भूत्वा दरिद्रश्च भवेन्नरः ॥ ५२ ॥

एक एव हि भुंक्तेऽन्नमपरोऽन्नेन भुज्यते ॥

न भुज्यते स एवैको यो भुंक्ते तु समांशकम् ॥ ५३

विभागशीलो यो नित्यं क्षमायुक्तो दयालुकः ॥

देवतातिथिभक्तश्च गृहस्थः स तु धार्मिकः ॥ ५४ ॥

दया लज्जा क्षमा श्रद्धा प्रज्ञा त्यागः कृतज्ञता ॥

गुणा यस्य भवंत्येते गृहस्थो मुख्य एव सः ॥ ५५

संविभागं ततः कृत्वा गृहस्थः शेषभुग्भवेत् ॥
 भुक्त्वा तु सुखमास्थाय तदन्नं परिणामयेत् ॥ ५६ ॥
 इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठं वा सप्तमं नयेत् ॥
 अष्टमे लोकयात्रा तु बहिःसंध्या ततः पुनः ॥ ५७ ॥
 होमं भोजनकृत्यं च यच्चान्यद्गृहकृत्यकम् ॥
 कृत्वा चैवं ततः पश्चात्स्वाध्यायं किञ्चिदाचरेत् ॥ ५८ ॥
 प्रदोषपश्चिमौ यामौ वेदाभ्यासेन तौ नयेत् ॥
 यामद्वयं शयानस्तु ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५९ ॥
 नैमित्तिकानि कर्माणि निपतांति यथा यथा ॥
 तथा तथा तु कार्याणि न कालस्तु विधीयते ॥ ६० ॥
 यस्मिन्नेव प्रयुञ्जानो यस्मिन्नेव प्रलीयते ॥
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्वाध्यायं च समभ्यसेत् ॥ ६१ ॥
 सर्वत्र मध्यमौ यामौ हुतशेषं हविश्च यत् ॥
 भुञ्जानश्च शयानश्च ब्राह्मणो नावसीदति ॥ ६२ ॥
 इति श्रीदाक्षे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

सुधा नव गृहस्थस्य ईषदानानि वै नव ॥
 नव कर्माणि च तथा विकर्माणि नवैव तु ॥ १ ॥

प्रच्छन्नानि नवान्यानि प्रकाश्यानि पुनर्नव ॥
 सफलानि नवान्यानि निष्फलानि तथा नव ॥ २ ॥
 अदेयानि नवान्यानि वसुजातानि सर्वदा ॥
 नवका नव निर्दिष्टा गृहस्थोन्नतिकारकाः ॥ ३ ॥
 सुधावस्तूनि वक्ष्यामि विशिष्टे गृहमागते ॥
 मनश्चक्षुर्मुखं वाचं सौम्यं दत्त्वा चतुष्टयम् ॥ ४ ॥
 अभ्युत्थानमिहागच्छ पृच्छालापः प्रियान्वितः ॥
 उपासनमनुव्रज्या कार्याण्येतानि नित्यशः ॥ ५ ॥
 ईषद्दानानि चान्यानि भूमिरापस्तृणानि च ॥
 पादशौचं तथाभ्यंगं आश्रयः शयनानि च ॥ ६ ॥
 किञ्चिद्दद्याद्यथाशक्ति नास्यानश्रन्गृहे वसेत् ॥
 मृज्जलं चार्थिने देयमेतान्यपि सदा गृहे ॥ ७ ॥
 संध्या स्नानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम् ॥
 वैश्वदेवं क्षमातिथ्यमुद्धृतं चापि शक्तितः ॥ ८ ॥
 पितृदेवमनुष्याणां दीनानाथतपस्विनाम् ॥
 गुरुमातृपितृणां च संविभागो यथार्हतः ॥ ९ ॥
 एतानि नव कर्माणि विकर्माणि तथा पुनः ॥ १० ॥
 अनृतं पारदार्यं च तथाऽभक्ष्यस्य भक्षणम् ॥
 अगम्यागमनापेयपानं स्तेयं च हिंसनम् ॥ ११ ॥
 अश्रौतकर्माचरणं मैत्रधर्मवहिष्कृतम् ॥

नवैतानि विकर्माणि तानि सर्वाणि वर्जयेत् ॥ १२ ॥

पैशुन्यमनृतं माया कामः क्रोधस्तथाऽप्रियम् ॥

द्वेषो दंभः परद्रोहः प्रच्छन्नानि तथा नव ॥ १३ ॥

आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मंत्रो मैथुनभेषजे ॥

तपो दानापमानौ च नव गोप्यानि सर्वदा ॥ १४ ॥

प्रायोग्यमृणशुद्धिश्च दानाध्ययनविक्रयाः ॥

कन्यादानं वृषोत्सर्गो रहःपापमकुत्सनम् ॥

“प्रकाश्यानि नवैतानि गृहस्थाश्रमिणस्तथा ॥ १५ ॥

मातापित्रोर्गुरौ मित्रे विनीते चोपकारिणि ॥

दीनानाथविशिष्टेषु दत्तं तत्सफलं भवेत् ॥ १६ ॥

धूर्ते बन्दिनि मल्ले च कुर्वेद्ये कितव शठे ॥

चाटुचारणचोरभ्यो दत्तं भवति निष्फलम् ॥ १७ ॥

सामान्यं याचितं न्यास आधिर्दाराश्च तद्धनम् ॥

अन्वाहितं च निक्षेपं सर्वस्वं चान्वये सति ॥ १८ ॥

आपत्स्वपि न देयानि नव वस्तूनि सर्वदा ॥

यो ददाति स मूर्खस्तु प्रायश्चित्तेन युज्यते ॥ १९ ॥

१ एतानि नव पैशुन्यादीन्यपि विकर्माण्येव—(इति—मिलित्वा—विकर्माण्यष्टादश) ‘प्रच्छन्नानि’ इत्येतस्याग्रिम--संख्येयैः सहाभिसंबंधात् ।

२ प्रायोग्यं नाम अधमर्णायोत्तमर्णेन ऋणदानम् ।

३ “रहस्येतानि वर्जयेत्” एतावानेव पाठः प्राकाश्यानीत्यर्थः

नवनवकवेत्तारमनुष्ठानपरं नरम् ॥

इह लोके परत्रापि नीतिस्तं नैव मुंचति ॥ २० ॥

यथैवात्मा परस्तद्वदद्रष्टव्यः सुखमिच्छता ॥

सुखदुःखानि तुल्यानि यथात्मनि तथा परे ॥ २१ ॥

सुखं वा यदि वा दुःखं यत्किञ्चित्क्रियते परे ॥

यत्कृतं तु पुनः पश्चात्सर्वमात्मनि तद्भवेत् ॥ २२ ॥

न क्लेशेन विना द्रव्यं विना द्रव्येण न क्रिया ॥

क्रियाहीने न धर्मः स्याद्धर्महीने कुतः सुखम् ॥ २३ ॥

सुखं वाञ्छन्ति सर्वे हि तच्च धर्मसमुद्भवम् ॥

तस्माद्धर्मः सदा कार्यः सर्ववर्णैः प्रयत्नतः ॥ २४ ॥

न्यायागतेन द्रव्येण कर्तव्यं पारलौकिकम् ॥

दानं हि विधिना देयं काल पात्रे गुणान्विते ॥ २५ ॥

समद्विगुणसाहस्रमानन्त्यं च यथाक्रमम् ॥

दाने फलविशेषः स्याद्विंशत्यां तावदेव तु ॥ २६ ॥

सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे ॥

सहस्रगुणमाचार्ये त्वनन्तं वेदपारगे ॥ २७ ॥

विधिहीने यथा पात्रे यो ददाति प्रतिग्रहम् ॥

न केवलं तद्विनश्येच्छेषमप्यस्य नश्यति ॥ २८ ॥

व्यसनप्रतिकारार्थं कुटुम्बार्थं च याचते ॥

एवमन्विष्य दातव्यमन्यथा न फलं भवेत् ॥ २९ ॥
 मातापितृविहीनं तु संस्कारोद्वाहनादिभिः ॥
 यः स्थापयति तस्येह पुण्यसंख्या न विद्यते ॥ ३० ॥
 यच्छ्रेयो नामिहोत्रेण नामिष्टोमेन लभ्यते ॥
 तच्छ्रेयः प्राप्नुयाद्विप्रो विप्रेण स्थापितेन वै ॥ ३१ ॥
 यद्यदिष्टतमं लोके यच्चात्मदयितं भवेत् ॥
 तत्तद्गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥ ३२ ॥
 इति दक्षस्मृतौ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

पत्नीमूलं गृहं पुंसां यदि च्छंदांनुवर्तिनी ॥
 गृहाश्रमात्परं नास्ति यदि भार्या वशानुगा ॥ १ ॥
 तथा धर्मार्थकामानां त्रिवर्गफलमश्नुते ॥ २ ॥
 प्राकाम्ये वर्तमाना या स्नेहान्न तु निवारिता ॥
 अवश्या सा भवेत्पश्चाद्यथा व्याधिरुपेक्षितः ॥ ३ ॥
 अनुकूला त्ववाग्दुष्टा दक्षा साध्वी प्रियंवदा ॥
 आत्मगुप्ता स्वामिभक्ता देवता सा न मानुषी ॥ ४ ॥
 अनुकूलकलत्रो यः स्वर्गस्तस्य इहैव हि ॥

१ सर्वदानेष्वयं विधिः--इति पाठः ।

२ चेच्छानुसारिणी--इति पाठः ।

प्रतिकूलकलत्रस्य नरको नात्र संशयः ॥ ५ ॥
 स्वर्गेऽपि दुर्लभं ह्येतदनुरागः परस्परम् ॥
 रक्त एको विरक्तोऽन्यस्तदा कष्टतरं नु किम् ॥ ६ ॥
 गृहवासः सुखार्थो हि पत्नीमूलं च तत्सुखम् ॥
 सा पत्नी या विनीता स्याच्चित्तज्ञा वशवर्तिनी ॥ ७ ॥
 दुःखायाग्या सदा खिन्ना चित्तभेदः परस्परम् ॥
 प्रतिकूलकलत्रस्य द्विदारस्य विशेषतः ॥ ८ ॥
 जलौका इव ताः सर्वा भूषणाच्छादनाशनैः ॥
 सुभृतापि कृता नित्यं पुरुषं ह्यपकर्षति ॥ ९ ॥
 जलौका रक्तमादत्ते केवलं सा तपस्विनी ॥
 इतरा तु धनं चित्तं मांसं वीर्यं बलं सुखम् ॥ १० ॥
 साशंका बालभावे तु यौवनेऽभिमुखी भवेत् ॥
 तृणवन्मन्यते नारी वृद्धभावे स्वकं पतिम् ॥ ११ ॥
 अनुकूला त्ववाद्दुष्टा दक्षा साध्वी पातिव्रता ॥
 एतैरेव गुणैर्युक्ता श्रिरिवे स्त्री न संशयः ॥ १२ ॥
 प्रहृष्टमानसा नित्यं स्थानमानविचक्षणा ॥
 भर्तुः प्रतिकरी या तु भार्या सा चेतरा जरा ॥ १३ ॥
 शिष्यो भार्या शिशुभर्ता पुत्रो दासः समाश्रितः ॥
 यस्यैतानि विनीतानि तस्य लोके हि गौरवम् ॥ १४ ॥
 प्रथमा धर्मपत्नी तु द्वितीया रतिवर्द्धिनी ॥

दृष्टमेव फलं तत्र नादृष्टमुपपद्यते ॥ १५ ॥

धर्मपत्नी समाख्याता निर्दोषा यदि सा भवेत् ॥

दोषे सति न दोषः स्यादः या भार्या गुणान्विता ॥ १६ ॥

अदुष्टाऽपतितां भार्या यौवने यः परित्यजेत् ॥

स जीवनांते स्त्रीत्वं च बन्धयत्वं च समाप्नुयात् ॥ १७ ॥

दारिद्र्यं व्याधितं चैव भर्तारं याऽवमन्यते ॥

शुनी गृध्री च मकरी जायते सा पुनः पुनः ॥ १८ ॥

मृते भर्तारि या नारी समारोहेद्द्रुताशनम् ॥

सा भवेत्तु शुभाचारा स्वर्गलोके महीयते ॥ १९ ॥

व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते विलात् ॥

तथा सा पतिमुद्धृत्य तेनैव सह मोदते ॥ २० ॥

चण्डालप्रत्येवासितपरिव्राजकतापसाः ॥

तेषां जातान्यपत्यानि चण्डालैः सह वासयेत् ॥ २१ ॥

इति दक्षस्मृतौ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

उक्तं शौचमशौचं च कार्यं त्याज्यं मनीषिभिः ॥

विशेषार्थं तयोः किञ्चिद्वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १ ॥

शौचे यत्नः सदा कार्यः शौचमूलो द्विजः स्मृतः ॥

शौचाचारविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः ॥ २ ॥
 शौचं च द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यंतरं तथा ॥
 मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिरथांतरम् ॥ ३ ॥
 अशौचाद्धि वरं बाह्यं तस्मादाभ्यंतरं वरम् ॥
 उभाभ्यां तु शुचिर्यस्तु स शुचिर्नेतरः शुचिः ॥ ४ ॥
 एका लिंगे गुदे तिस्रो दश वामकरे तथा ॥
 उभयोः सप्त दातव्या मृदस्तिस्रस्तु पादयोः ॥ ५ ॥
 गृहस्थशौचमाख्यातं त्रिष्वन्येषु यथाक्रमम् ॥
 द्विगुणं त्रिगुणं चैव चतुर्थस्य चतुर्गुणम् ॥ ६ ॥
 अर्द्धप्रसृतिमात्रा तु प्रथमा मृत्तिका स्मृता ॥
 द्वितीया च तृतीया च तदर्द्धा परिकीर्तिता ॥ ७ ॥
 लिंगे तु मृत्समाख्याता त्रिपर्वी पूर्यते यया ॥
 एतच्छौचं गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥ ८ ॥
 त्रिगुणं तु वनस्थानां यतीनां च चतुर्गुणम् ॥
 दातव्यमुदकं तावन्मृदभावो यथा भवेत् ॥ ९ ॥
 मृत्तिकानां सहस्रेण चोदकुंभशतेन च ॥
 न शुद्ध्यन्ति दुरात्मानो येषां भावो न निर्मलः ॥ १० ॥
 मृदा तोयेन शुद्धिः स्यान्न क्लेशो न धनव्ययः ॥
 यस्य शौचेऽपि शैथिल्यं चित्तं तस्य परीक्षितम् ॥ ११ ॥

अन्यदेव दिवा शौचमन्यद्रात्रौ विधीयते ॥
 अन्यदापदि निर्दिष्टमन्यदेव ह्यनापदि ॥ १२ ॥
 दिवा कृतस्य शौचस्य रात्रावर्द्धं विधीयते ॥
 तदर्धमातुरस्याहुस्त्वरयां त्वर्द्धमध्वनि ॥ १३ ॥
 दिवा यद्विहितं कर्म तदर्धं च निशि स्मृतम् ॥
 तदर्धं चातुरे काले पथि शूद्रवदाचरेत् ॥ १४ ॥
 न्यूनाधिकं न कर्तव्यं शौचे शुद्धिमभीप्सता ॥
 प्रायश्चित्तेन युज्येत विहितातिक्रमे कृते ॥ १५ ॥
 इति दक्षस्मृतौ पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अशौचं तु प्रवक्ष्यामि जन्ममृत्युनिमित्तकम् ॥
 यावज्जिवं तृतीयं तु यथावदनुपूर्वशः ॥ १ ॥
 सद्यः शौचं तथैकाहो द्वित्रिचतुरहस्तथा ॥
 षड्दशद्वादशाहश्च पक्षो मासस्तथैव च ॥ २ ॥
 मरणांतं तथा चान्यद्दश पक्षास्तु सूतके ॥
 उपन्यासक्रमेणैव वक्ष्याम्यहमशेषतः ॥ ३ ॥
 ग्रंथार्थतो विजानाति वेदमंगैः समन्वितम् ॥
 सकल्पं सरहस्यं च क्रियावांश्चेन्न सूतकी ॥ ४ ॥
 राजर्त्विग्दीक्षितानां च बाले देशांतरे तथा ॥

व्रतिनां सत्रिणां चैव सद्यः शौचं विधीयते ॥ ५ ॥
 एकाहस्तु समाख्यातो योऽग्निवेदसमन्वितः ॥
 हीने हीनतरे चैव द्वित्रिचतुरहस्तथा ॥ ६ ॥
 जातिविप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ॥
 वैश्यः पंचदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ७ ॥
 अस्नात्वाचम्य जप्त्वा च दत्त्वा हुत्वा च भुंजते ॥
 एवंविधस्य सर्वस्य यावज्जीवं हि सूतकम् ॥ ८ ॥
 व्याधितस्य कर्दर्यस्य ऋणग्रस्तस्य सर्वदा ॥
 क्रियाहीनस्य मूर्खस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः ॥ ९ ॥
 व्यसनासक्तचित्तस्य पराधीनस्य नित्यशः ॥
 श्रद्धात्यागविहीनस्य भस्मांतं सूतकं भवेत् ॥ १० ॥
 न सूतकं कदाचित्स्याद्यावज्जीवं तु सूतकम् ॥
 एवं गुणविशेषेण सूतकं समुदाहृतम् ॥ ११ ॥
 सूतके मृतके चैव तथा च मृतसूतके ॥
 एतत्संहतशौचानां मृताशौचेन शुद्ध्यति ॥ १२ ॥
 दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निवर्तते ॥
 दशाहात्तु परं शौचं विप्रोऽर्हति च धर्म्मवित् ॥ १३ ॥
 दानं च विधिना देयमशुभात्तारकं हि तत् ॥
 मृतकांते मृतो यस्तु सूतकांते च सूतकम् ॥ १४ ॥
 एतत्संहतशौचानां पूर्वाशौचेन शुद्ध्यति ॥

उभयत्र दशाहानि कुलस्यात्रं न भुज्यते ॥ १५ ॥
 चतुर्थेऽहनि कर्तव्यमस्थिसंचयनं द्विजैः ॥
 ततः संचयनादूर्ध्वमंगस्पर्शो विधीयते ॥ १६ ॥
 वर्णानामानुलोम्येन स्त्रीणामेको यदा पतिः ॥
 दशषट्त्रयहमेकाहः प्रसवे सूतक भवेत् ॥ १७ ॥
 स्वस्थकाले त्विदं सर्वमाशौचं परिकीर्तितम् ॥
 आपद्गतस्य सर्वस्य सूतकेऽपि न सूतकम् ॥ १८ ॥
 यज्ञे प्रवर्तमाने तु जायेताथ म्रियेत वा ॥
 पूर्वसंकल्पिते कार्ये न दोषस्तत्र विद्यते ॥ १९ ॥
 यज्ञकाले विवाहे च देवयागे तथैव च ॥
 हूयमाने तथा चाग्नौ नाशौचं नापि सूतकम् ॥ २० ॥
 इति दक्षस्मृतौ षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

लोका वशीकृता येन येन चात्मा वशीकृतः ॥
 इन्द्रियार्थो जितो येन तं योगं प्रब्रवीम्यहम् ॥ १ ॥
 प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा ॥
 तर्कश्चैव समाधिश्च षडंगो योग उच्यते ॥ २ ॥
 मैत्रीक्रियामुदे सर्वा सर्वप्राणिव्यवस्थिता ॥
 ब्रह्मलोकं नयत्याशु धातारमिव धारणा ॥ ३ ॥

नारण्यसेवनाद्योगो नानेकग्रंथचित्तनात् ॥

व्रतैर्यज्ञैस्तपोभिर्वा न योगः कस्यचिद्भवेत् ॥ ४ ॥

न च पथपाशनाद्योगो न नासाग्रनिरीक्षणात् ॥

न च शास्त्रातिरिक्तेन शौचेन भवति क्वचित् ॥ ५ ॥

न मंत्रमौनकुहकैरनेकैः सुकृतैस्तथा ॥

लोकयात्रानियुक्तस्य योगो भवति कस्यचित् ॥ ६ ॥

अभियोगात्तथाभ्यासात्तास्मिन्नेव तु निश्चयात् ॥

पुनःपुनश्च निर्वेदाद्योगः सिद्ध्यति नान्यथा ॥ ७ ॥

आत्मचिन्ताविनोदेन शौचेन क्रीडनेन च ॥

सर्वभूतसमत्वेन योगः सिद्ध्यति नान्यथा ॥ ८ ॥

यश्चात्मनिरतो नित्यमात्मक्रीडस्तथैव च ॥

आत्मानंदस्तु सततमात्मन्येव सुभाषितः ॥ ९ ॥

रतश्चैव सुतुष्टश्च सन्तुष्टो नान्यमानसः ॥

आत्मन्येव सुतृप्तोऽसौ योगस्तस्य प्रसिद्ध्यति ॥ १० ॥

सुप्तोऽपि योगयुक्तश्च जाग्रच्चापि विशेषतः ॥

ईदृक्चेष्टः स्मृतः श्रेष्ठो गरिष्ठो ब्रह्मवादिनाम् ॥ ११ ॥

अत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं नैव पश्यति ॥

ब्रह्मभूतः स एवेह दक्षपक्ष उदाहृतः ॥ १२ ॥

विषयासक्तचित्तो हि यतिर्मोक्षं न विंदति ॥

यत्नेन विषयासक्तिं तस्माद्योगी विवर्जयेत् ॥ १३ ॥

विषयेन्द्रियसंयोगं केचिद्योगं वदन्ति वै ॥

अधर्मो धर्मबुद्ध्या तु गृहीतस्तैरपंडितैः ॥ १४ ॥

आत्मनो मनसश्चैव संयोगं तु ततः परम् ॥

उक्तानामधिका ह्येते केवलं योगवांचिताः ॥ १५ ॥

वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मनि ॥

एकीकृत्य विमुच्येत योगोऽयं मुख्य उच्यते ॥ १६ ॥

कषायमोहविक्षेपलज्जाशंकादिचेतस्रः ॥

व्यापारास्तु समाख्यातास्ताञ्जित्वा वशमानयेत् ॥ १७ ॥

कुटुंबैः पंचभिर्ग्रामः षष्ठस्तत्र महत्तरः ॥

देवासुरैर्मनुष्यैश्च स जेतुं नैव शक्यते ॥ १८ ॥

बलेन परराष्ट्राणि गृह्णञ्छूरस्तु नोच्यते ॥

जितो येनेन्द्रियग्रामः स शूरः कथ्यते बुधैः ॥ १९ ॥

बहिर्मुखानि सर्वाणि कृत्वा चाभिमुखानि वै ॥

मनस्येवेन्द्रियाण्यत्र मनश्चात्मनि योजयेत् ॥ २० ॥

सर्वभावविनिर्मुक्तं क्षेत्रज्ञं ब्रह्माणि न्यसेत् ॥

एतद्व्यानं तथा ज्ञानं शेषस्तु ग्रन्थाविस्तरः ॥ २१ ॥

त्यक्त्वा विषयभोगांस्तु मनो निश्चलतां गतम् ॥

आत्मशक्तिस्वरूपेण समाधिः परिकीर्तितः ॥ २२ ॥

चतुर्णां सन्निकर्षेण फलं यत्तदशाश्वतम् ॥

द्वयोस्तु सन्निकर्षेण शाश्वतं ध्रुवमक्षयम् ॥ २३ ॥

यत्रास्ति सर्वलोकस्य तदस्तीति निरुच्यते ॥
 कथ्यमानं तथान्यस्य हृदये नाधितिष्ठति ॥ २४ ॥
 स्वयंवेद्यं च तद्ब्रह्म कुमारीमैथुनं यथा ॥
 अयोगी नैव जानाति जात्यंधो हि यथा घटम् ॥ २५ ॥
 नित्याभ्यसनशीलस्य सुसंवेद्यं हि तद्भवेत् ॥
 तत्सूक्ष्मत्वादिनिर्देश्यं परं ब्रह्म सनातनम् ॥ २६ ॥
 बुधास्त्वाभरणं भावं मनसालोचनं तथा ॥
 मन्यन्ते स्त्री च मूर्खश्च तदेव बहु मन्यते ॥ २७ ॥
 सत्त्वोत्कटाः सुरास्तेऽपि विषयेण वशीकृताः ॥
 प्रमादिभिः क्षुद्रसत्त्वैर्मनुष्यैरत्र का कथा ॥ २८ ॥
 तस्मात्त्यक्तकषायेण कर्तव्यं दंडधारणम् ॥
 इतरस्तु न शक्नोति विषयैरभिभूयते ॥ २९ ॥
 न स्थिरं क्षणमप्येकमुदकं हि यथोर्मिभिः ॥
 वाताहतं तथा चित्तं तस्मात्तस्य न विश्वसेत् ॥ ३० ॥
 ब्रह्मचर्यं सदा रक्षेदष्टधा रक्षणं पृथक् ॥
 स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥ ३१ ॥
 संकल्पोऽधपवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ॥
 एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ३२ ॥

त्रिदंडव्यपदेशेन जीवंति बहवो नराः ॥

यस्तु ब्रह्म न जानाति न त्रिदंडो हि स स्मृतः ॥ ३३ ॥

नाध्येतव्यं न वक्तव्यं श्रोतव्यं न कथंचन ॥

एतैः सर्वैः सुसंपन्नो यतिर्भवति नेतरः ॥ ३४ ॥

पारिव्राज्यं गृहीत्वा तु यः स्वधर्मे न तिष्ठति ॥

श्वपदेनांकयित्वा तं राजा शीघ्रं प्रवासयेत् ॥ ३५ ॥

एको भिक्षुर्यथोक्तस्तु द्वौ चैव मिथुनं स्मृतम् ॥

त्रयो ग्रामः समाख्यात ऊर्ध्वं तु नगरायते ॥ ३६ ॥

नगरं हि न कर्तव्यं ग्रामो वा मिथुनं तथा ॥

एतन्नयं तु कुर्वाणः स्वधर्माच्च्यवते यतिः ॥ ३७ ॥

राजवार्तादि तेषां तु विक्षावार्ता परस्परम् ॥

स्नेहपैशुन्यमात्सर्यं सन्निकर्षादसंशयम् ॥ ३८ ॥

लाभपूजानिमित्तं हि व्याख्यानं शिष्यसंग्रहः ॥

एते चान्ये च बहवः प्रपंचास्तु तपस्विनाम् ॥ ३९ ॥

ध्यानं शौचं तथा भिक्षा नित्यमेकांतशीलता ॥

भिक्षोश्चत्वारि कर्माणि पंचमं नोपपद्यते ॥ ४० ॥

यस्मिन्देशे भवेद्योगी ध्यानयोगविचक्षणः ॥

सोऽपि देशो भवेत्पूतः किं पुनर्यस्य बांधवः ॥ ४१ ॥

तपोभिर्ये वशीभूता व्याधितावसथावहाः ॥

वृद्धा रोगगृहीताश्च ये वान्ये विकलेंद्रियाः ॥ ४२ ॥

नीरुजश्च युवा चैव भिक्षुर्नावसथार्हणः ॥
 स दूषयति तत्स्थानं वृद्धादीन्पीडयत्यपि ॥ ४३ ॥
 नीरुजश्च युवा चैव ब्रह्मचर्याद्विनश्यति ॥
 ब्रह्मचर्यादिनष्टश्च कुलं गोत्रं च नाशयेत् ॥ ४४ ॥
 यस्य त्वावसथे भिक्षुर्मैथुनं यदि सेवते ॥
 तस्यावसथनाथस्य मूलान्यपि निकृंतति ॥ ४५ ॥
 आश्रमे तु यतिर्यस्य मुहूर्तमपि विश्रमेत् ॥
 किं तस्यान्येन धर्मेण कृतकृत्यो हि जायते ॥ ४६ ॥
 संचितं यद् गृहस्थेन पापमामरणांतिकम् ॥
 स निर्दहति तत्सर्वमेकरात्रोषितो यतिः ॥ ४७ ॥
 ध्यानयोगपरिश्रान्तं यस्तु भोजयते यतिम् ॥
 अखिलं भोजितं तेन त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ४८ ॥
 द्वैतं चैव तथाद्वैतं द्वैताद्वैतं तथैव च ॥
 न द्वैतं नापि चाद्वैतमित्येतत्पारमार्थिकम् ॥ ४९ ॥
 नाहं नैव तु संबन्धो ब्रह्मभावेन भावितः ॥
 ईदृशायां त्ववस्थायामवाप्यं परमं पदम् ॥ ५० ॥
 द्वैतपक्षः समाख्यातो ये द्वैते तु व्यवस्थिताः ॥
 अद्वैतानां प्रवक्ष्यामि यथा धर्मः सुनिश्चितः ॥ ५१ ॥
 अत्रात्मव्यतिरेकेण द्वितीयं यो विपश्यति ॥
 अतः शास्त्राण्यधीयन्ते श्रूयन्ते ग्रंथविस्तरः ॥ ५२ ॥

दक्षशास्त्रे यथा प्रोक्तमाश्रमप्रतिपालनम् ॥

अधीयते तु ये विप्रास्ते यांति परलोकताम् ॥ ५३ ॥

य इदं पठते भक्त्या शृणुयादपि यो नरः ॥

स पुत्रपौत्रपशुमान्कीर्तिं च समवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥

श्रावयित्वा त्विदं शास्त्रं श्राद्धकालेऽपि यो द्विजः ॥

अक्षय्यं भवति श्राद्धं पितृंश्चैवोपतिष्ठते ॥ ५५ ॥

इति दक्षस्मृतौ सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इति दक्षस्मृतिः समाप्ता ॥ १५ ॥



श्रीः ।

अथ गौतमस्मृतिः १६.

प्रथमोऽध्यायः १.

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ गौतमस्मृतिप्रारंभः ॥

वेदो धर्ममूलं तद्विदां च स्मृतिशोले दृष्टो धर्मव्यतिक्रमः॥
साहसं च महतां न तु दृष्टोऽर्थो वरदौर्वल्यात्र तुल्यबलविरोधे
विकल्पः । उपनयनं ब्राह्मणस्याष्टमे नवमे पंचमे वा काम्यं
गर्भादिः संख्या वर्षाणां तद्वितीयजन्मं तद्यस्मात्स आचार्यो
वेदानुवचनाच्च एकादशद्वादशयोः क्षत्रियवैश्ययोः आषोडशा-
द्ब्राह्मणस्य पतिता सावित्री द्वाविंशते राजन्यस्य द्वयत्रिका या
वैश्यस्य । मौंजीज्यामौर्षीसौंज्यो मेखलाः क्रमेण कृष्णहरु-
वस्ताजिनानि वास्रांसि शाणक्षौमवीरकुताराः सर्वेषां कार्पासं
चाविकृतं काषायमप्येके, वार्षं ब्राह्मणस्य मांजिद्वहारिद्रे
इतरयोर्वैल्वपालाशौ ब्राह्मणस्य दंडौ आश्वत्थपैलवौ शेषे
यज्ञियो वा सर्वेषाम् । अपीडिता यूपचक्राः सवलकला
भूर्द्धललाग्नासाप्रप्रमाणाः मुंडजटिलशिखाजटाश्च । द्रव्यहस्त
उच्छिष्टोऽनिधायाचामेत् ॥

द्रव्यशुद्धिः परिमार्जनप्रदाहतक्षणनिर्णेजनानि तैजसमार्ति-
कदारवतांतवानां तैजसवदुपलमणिशंखशुक्तीनां दारुवदास्थि-
भूम्योः आवपनं च भूमेः । चैलवदज्जुविदलचर्मणाम्
उत्सर्गो वात्यंतोपहतानाम् ।

प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा शौचमारभेत् । शुचौ देशे
आसीनो दक्षिणं बाहुं जान्वन्तरा कृत्वा यज्ञोपवीत्यामणि-
बंधनात्पाणी प्रक्षाल्य वाग्यतो हृदयस्पृशस्त्रिचतुर्वाऽप
आचामेत् । द्विः परिमृज्यात्पादौ चाभ्युक्षेत् । खानि चोपस्पृशे-
च्छीर्षण्यानि मूर्द्धनि च दद्यात् । सुप्त्वा भुक्त्वा क्षुत्वा च पुनः
दंतश्लिष्टेषु दंतवदन्यत्र जिह्वाभिर्मर्शनात् । प्राक् च्युतेरित्येके ।
च्युते स्वास्त्राववद्विद्यान्निगिरन्नेव तच्छुचिः ॥ न मुख्या
विप्रुष उच्छिष्टं कुर्वन्ति ताश्चेदंगे निपतन्ति । लेपगंधापकर्षणे
शौचममेध्यस्य तदाद्भिः पूर्वं मृदा च मूत्रपुरीषरेतोविसंसना-
भ्यवहारसंयोगेषु च यत्र चाप्रायो विदध्यात् ।

पाणिना सव्यमुपसंगृह्यांगुष्ठमधीहि भो इत्यामंत्रयेत् गुरुः
तत्र चक्षुर्मनः प्राणोपस्पर्शनं दर्भैः प्राणायामास्त्रयः पञ्चदश
मात्राः प्राक्कूलेष्वासनं च पूर्वा व्याहृतयः पञ्चसप्तांता गुरोः
पादोपसंग्रहणं प्रांतर्ब्रह्मानुबचने चाद्यंतयोरनुज्ञात उपविशेत् ।
प्राङ्मुखो दक्षिणतः शिष्य उदङ्मुखो वा सावित्रीं चानुवच-
नमादितो ब्रह्मण आदाने ॐकारस्यान्यत्रापि ।

अन्तरागमने पुनरुपसदने श्वनकुलमण्डूकसर्पमार्जाराणां
 ऽपहमुपवासो विप्रवासश्च प्रागायामा घृतप्राशनं चेतरेषां
 श्मशानाभ्यध्ययने चैवम् ॥ १ ॥

इति गौतमस्मृतौ प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

प्रागुपनयनात्कामचारवादभक्षः अद्भुतो ब्रह्मचारी ययो-
 पपादमूत्रपुरीषो भवति नास्याचमनकल्पो विद्यते अन्य-
 चापमार्जनप्रयावनावोक्षणेभ्यो न तदुपस्पर्शनादशौचम् ॥ न
 त्वेवैनमग्निहवनबलिहरणयोर्नियुज्यात् न ब्रह्माभिव्याहारेदन्यत्र
 स्वधानिनयनात् ॥

उपनयनादिनियमः ॥ उक्तं ब्रह्मचर्यम् अग्नीन्धनभैक्षचरण
 सत्यवचनम् ॥ अपामुपस्पर्शनमेक आगोदानादि । बहिः
 संध्यार्थं तिष्ठेत्पूर्वामासीतोत्तरां सज्योतिष्याज्योतिषो दर्श-
 नाद्वाग्यतो नादित्यमीक्षयेत् वर्जयेन्मधुमांसगंधमाल्यादि वा
 स्वप्नोजनाभ्यंजनयानोपानच्छत्रकामक्रोधलोभमोहवाद्यवाद
 नस्नानदंतधावनहर्षनृत्यगीतपरिवादभयानि ।

गुरुदर्शने कण्डप्रावृतावसक्थिकापाश्रयणपादप्रसारणानि
 निष्ठीवितहसितजृम्भितास्फोटनानि स्त्रीप्रेक्षणालंभने मैथुनशं-
 कायां द्यूतं हीनसेवामदत्तादानं हिंसा आचार्यतत्पुत्रस्त्री-

दीक्षितनामानि शुष्कां वाचं मद्यं नित्यं ब्राह्मणः अथः-
 शय्याशायी पूर्वोत्थायी जघन्यसंवेशी वागुदरकर्मसंयतः
 नामगोत्रे गुरोः संमानतो निर्दिशेत् ॥ अर्चिते श्रेयसि चैवम् ॥
 शय्यासनस्थानानि विहाय प्रतिश्रवणमभिक्रमं वचनादृष्टेन
 अथःस्थानासनस्तिर्यग्वा तत्सेवायां गुरुदर्शने चोत्तिष्ठेत् ।
 गच्छंतमनुव्रजेत् कर्म विज्ञाप्याख्यायाऽऽहूताध्यायी युक्तः
 प्रियहितयोस्तद्भार्यापुत्रेषु चैवम्, नोच्छिष्टाशनस्त्रपनप्रसाध-
 नपादप्रक्षालनोन्मर्दनोपसंग्रहणानि विप्रोष्योपसंग्रहणं गुरु-
 भार्याणां तत्पुत्रस्य च नैके युवतीनाम् ॥ व्यवहारप्राप्तेन
 सार्ववर्णिकं भैक्षचरणमभिशस्तं पतितवर्जमादिमध्यांतेषु
 भवच्छब्दः प्रयोज्यो वर्णानुपूर्वेण आचार्यज्ञातिगुरुस्वेच्छा-
 लाभेऽन्यत्र तेषां पूर्व परिहरेत् निवेद्य गुरवेऽनुज्ञातो भुंजीत ।
 असंनिधौ तद्भार्यापुत्रसब्रह्मचारिसद्भ्यः । वाग्यतस्तृप्यन्नलो-
 लुप्यमानः सन्निधायोदकं स्पृशेत् ।

शिष्यशिष्टिरवधेनाशक्तौ रज्जुश्रेणुविदलाभ्यां तनुभ्याम्
 अन्येन घ्नन् राज्ञा शास्यः ।

द्वादशवर्षाण्येकवेदे ब्रह्मचर्यं चरेत् । प्रतिद्वादश सर्वे
 ग्रहणांतं वा । विद्यांते गुरुरर्थेन निमन्त्र्यः कृतानुज्ञातस्य
 स्नानम् । आचार्यः श्रेष्ठो गुरुणां मातेत्येके ॥

इति गौतमस्मृतौ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

तस्याश्रमविकल्पमेके ब्रुवते । ब्रह्मचारी गृहस्थो भिक्षुर्वै-
 खानस इति । तेषां गृहस्थो योनिरप्रजनत्वादितरेषाम् । तत्रोक्तं
 ब्रह्मचारिणः । आचार्याधीनत्वमात्रं गुरोः कर्मशेषेण जपेत् ।
 गुर्वभावे तदपत्यवृत्तिस्तदभावे वृद्धे सब्रह्मचारिण्यग्नौ वा
 एवंवृत्तो ब्रह्मलोकमेवाप्नोति जितेन्द्रियः । उत्तरेषां चैतदविरोधी
 अनिचयो भिक्षुरुर्ध्वरेता ध्रुवशीलो वर्षासु भिक्षार्थी ग्राम-
 मियत् । जघन्यमनिवृत्तं चरेत् । निवृत्ताशीर्वाक्चक्षुःकर्मसंयतः
 कौपीनाच्छादनार्थं वासो विभृयात् प्रहीणमेके निर्णेजनावि-
 प्रयुक्तमोषधीवनस्पतीनामंगमुपाददीत न द्वितीयामपहर्तुं
 रात्रिं ग्रामे वसेत् । मुंडः शिखी वा वर्जयेज्जीववधसमीभूतेषु
 हिंसानुग्रहयोरनारंभो वैखानसो वने मूलफलाशी तपःशीलः
 श्रावणकेनाग्निमाधाय अग्राम्यभोजी देवपितृमनुष्यभूतार्षि-
 पूजकः सर्वातिथिः प्रतिषिद्धवर्जं भैक्ष्यमप्युपयुंजीत न फाल-
 कृष्टमधितिष्ठेत् ग्रामं च न प्रविशेत् जटिलश्चीराजिनवासाः
 नातिसांवत्सरं भुंजीत एकाश्रम्यं त्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानात्
 गार्हस्थस्य गार्हस्थस्य ॥

इति गौतमस्मृतौ तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

गृहस्थः सदृशीं भार्यां विदेतानन्यपूर्वां यवीपक्षीम् अस-
मानप्रवरैर्विवाह ऊर्ध्वं सप्तमात् पितृबंधुभ्यो जीविनश्च मातृवं-
धुभ्यः पंचमात् ॥

ब्राह्मो विद्याचारित्रबंधुशीलसंपन्नाय दद्यादाच्छाद्यालंकृतां
संयोगमंत्रः । प्राजापत्ये सह धर्मं चरतामिति । आर्षे गोमि-
थुनं कन्यावते दद्यात् । अंतर्वेद्यृत्विजे दानं दैवः अलंकृत्ये-
च्छन्त्याः स्वयं संयोगो गांधर्वः । विद्वेत्तनानतिस्त्रीमताप्रासुरः ।
प्रसह्यादनादाक्षसः । असंविज्ञानोपसंगमनात्पैशाचः । चत्वारो
धम्म्याः प्रथमानाः षडित्येके ॥

अनुलोमानंतरैकांतरव्यंतरासु जाताः सवर्णावष्टोशनिषाद-
दौष्यंतपारशवाः प्रतिलोमासु सूतमागधायोगवक्षत्तृवैदेहक-
चंडालाः ब्राह्मण्यजिजनत्पुत्रान् वर्णेभ्य आनुपूर्व्यात् ब्राह्मण-
सूतमागधचंडालान् तेभ्य एव क्षत्रिया मूर्धाषिसिक्तक्षत्रिययो-
वारपुलकसान् तेभ्य एव वैश्या भृजुकंटकमाहिष्यवैश्यवैदेहा-
न् तेभ्य एव पारशवयवनकरणशूदान् शूदेत्येके । वर्णांतरगम-
नमुत्कर्षापकर्षाभ्यां सप्तमेन पंचमेन चाचार्याः संपृथ्यंतरजातान्
च प्रतिलोमास्तु धर्महीनाः शूद्रायां च असमानायां च
शूद्रात्पतितवृत्तिः अंत्यः पापिष्ठः ॥

पुनन्ति साधवः पुत्रास्त्रिपौरुषानाषादश दैवाद्दशैव प्राजा-
पत्यादश पूर्वान्दशापरानात्मानं च ब्राह्मीपुत्रा ब्राह्मीपुत्राः ॥
इति गौतमस्मृतौ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

ऋतावुपेयात् सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जम् ॥ देवापितृमनु-
ष्यभूतार्षिपूजकः नित्यस्वाध्यायः पितृभ्यश्चोदकदानम् ।
यथोत्साहमन्यद्भार्यादिरभिर्दायादिर्वा तस्मिन् गृह्याणि देवपि-
तृमनुष्ययज्ञाः स्वाध्यायश्च बलिकर्माग्रावमिधन्वंतरिर्विश्वेदेवाः
प्रजापतिः स्विष्टकृदिति होमः दिग्देवताभ्यश्च यथा स्वद्वारेषु
मरुद्भ्यो गृहदेवताभ्यः प्रविश्य ब्रह्मणे मध्ये अद्भ्य उदकुम्भे
आकाशायेत्यन्तरिक्षे नक्तंचरेभ्यश्च सायं स्वस्तिवाच्यभिक्षा-
दानप्रश्नपूर्वं तु ददातिषु चैवं धर्मेषु समाद्विगुणसाहस्रानंत्यानि
फलान्यब्राह्मणब्राह्मणश्रोत्रियवेदपारगेभ्यः गुर्वर्थनिवेशौषधा-
र्थवृत्तिक्षीणयक्ष्यमाणाध्ययनाध्वसंयोगवैश्वजितेषु द्रव्यसंवि-
भागौ बहिर्वेदिभिक्षमाणेषु कृतमितरेषु प्रतिश्रुत्याप्यधर्म-
संयुक्ताय न दद्यात् ।

क्रुद्धहृष्टभीतार्तलुब्धबालस्थविरमूढमत्तोन्मत्तवाक्यान्यनृता
न्यपातकानि । भोजयेत्पूर्वमतिथिकुमारव्याधितगर्भिणीसुवा-
सिनीस्थविरान् जघन्यांश्च आचार्यपितृस्त्रीनां च निवेद्य

वचनक्रियाः ऋत्विगाचार्यश्च पितृमातुलानामुपस्थान-
मधुपर्कः संवत्सरे पुनर्यज्ञविवाहयोर्व्वार्क राज्ञश्च श्रोत्रियस्य
अश्रोत्रियस्याप्येवमेव श्रोत्रियस्य तु पाद्यमर्घ्यमन्नविशेषांश्च
प्रकारयेत् नित्यं वा संस्कारविशिष्टं मध्यतोऽन्नदानं वैद्ये साधु-
वृत्तं विपरीतेषु तृणोदकभूमिः स्वागतं ततः पूज्यानत्याशश्च
शय्यामनावसथानुवज्योपासनानि मंदक्श्रेयसोः समानानि
अल्पशोऽपि हीने । असमानग्रामोऽपि श्रोत्रियकोविद्वृक्षसूर्यो-
पस्थायी कुशलानामयारोग्याणामनुमन्त्रोऽयं सूदस्याब्राह्मण-
स्यानतिथिरब्राह्मणो यज्ञे संवृत्तश्चेत् जीवन् तु क्षत्रियस्योर्ध्वं
ब्राह्मणेभ्यः अन्धान् भृत्यैः सहानृशंसाः भानृशंसाः पार्थम् ॥

इति गौतमस्मृतौ पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

पाशोपसंग्रहणं गुरुप्रमवायेऽन्वयम् । अभिगम्य तु विप्रोष्य
मातृपितृतद्वंधूनां पूर्वजाणां विद्याभूतानां च सन्निहिते परस्य
स्वनाम प्रोच्याहमवपितृभिवादेऽज्ञाप्रवाये स्त्रीप्रागेऽभि-
वादतोऽनियममेकेनाविप्रोष्य स्त्रीणां पितृपितृभार्याभगि-
नीनां नोपसंग्रहणं भ्रातृभार्याणां नश्च तत्र कृतिः कछुशुर
पितृव्यमातुलानां तु यवीयसां प्रायुष्यपञ्चमोऽध्यायः ।

तथान्यः पूर्वः पौरोशीतिकावरः शूद्रोऽप्य पत्यसमेन अवरो
ऽप्यार्थः शूद्रेण नाम चास्य वर्जयेत् ॥

राज्ञश्चाजपः प्रेष्यः भोभवन्निति वयस्यः समानेऽहनि जातो
दशवर्षवृद्धः पौर पंचभिः कलाधरः श्रोत्रियश्चारणस्त्रिभी राजन्य
वैश्यकर्मविद्याहीनाः दीक्षितश्च प्राकृक्रियात् वित्तबंधुकर्म-
जातिविद्यावयांसि सामान्यानि परबलीयांसि श्रुतं तु
सर्वेभ्यो गरीयस्तन्मूलत्वाद्गर्भस्य श्रुतेश्च ॥

चक्रिदशमीस्थाणुग्राह्यवधूस्त्रातकाराजभ्यः पथो दानं राज्ञा
तु श्रोत्रियाय श्रोत्रियाय ॥

इति गौतमस्मृतौ षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

आपत्कल्पो ब्राह्मणस्याब्राह्मणाद्विद्योपयोगोऽनुगमनं
शुश्रूषा । समाप्ते ब्राह्मणो गुरुः याजनाध्यापनप्रतिग्रहाः सर्वेषां
पूर्वः पूर्वो गुरुः तदभावे क्षत्रवृत्तिः तदभावे वैश्यवृत्तिः
तस्यापण्यं गंधरसकृतान्नतिलशाणक्षौमाजिनादि रक्तनिर्णिके
वाससी क्षीरं च सविकारं मूलफलपुष्पोषधमधुमांसतृणो-
दकापथ्यानि पशवश्च हिंसासंयोगे पुरुषवशा कुमारी वेहतश्च
नित्यं भूमिव्रीहियवाजाव्यश्वर्षभधेन्वनडुहश्चैके विनिमयस्तु
रसानां रसैः पशूनां च न लवणांकृतान्नयोस्तिलानां च

समेनामेन तु पक्षस्य संप्रत्यर्थे सर्वधातुवृत्तिरशक्तावशूदेण
तदप्येके प्राणसंशये तद्वर्णसंकराभक्ष्यनियमस्तु प्राणसंशये
ब्राह्मणोऽपि शस्त्रमाददीत राजन्यो वैश्यकर्म वैश्यकर्म ॥

इति गौतमस्मृतौ सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

द्वौ लोके धृतवृत्तौ राजा ब्राह्मणश्च बहुश्रुतः । तयोश्चतु
र्विधस्य मनुष्यजातस्यां तः संज्ञानां चलनपतनसर्पणाना मायत्तं
जीवनं प्रसूतिरक्षणमसंकरो धर्मः । स एष बहुश्रुतो भवति
लोकवेदवेदांगवित्वाक्रोवाक्येतिहासपुराणकुशलस्तदपेक्षस्तद्वृ-
त्तिः चत्वारिंशता संस्कारैः संस्कृतस्त्रिषु कर्मस्वभिरतः
षट्सु वासामयाचारिकेष्वभिविनीतः षड्भिः परिहार्यो राज्ञा
वध्यश्चावध्यश्चादंड्यश्चाबाहिष्कार्यश्चापरिवाह्यश्चापरिहार्यश्चेति ।

गर्भाधानपुंसवनसीमंतोन्नयनं जातकर्मर्म्नामकरणान्नप्राशनं
चौलोपनयनं चत्वारिवेदव्रतानि स्नानं सहधर्मचारिणीसंयोगः
पञ्चानां यज्ञानामनुष्ठानं देवपितृमनुष्यभूत ब्रह्मणामेतेषां
चाष्टकापार्वणश्चाद्धश्रावण्याग्रहायणीचैत्र्याश्वयुजीति सप्तपाक-
यज्ञसंस्थाः अग्न्याधेयमग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ आग्रहायणं
चातुर्मास्यानि निरूढपशुबंधसौत्रामणीति सप्तहविर्यज्ञसंस्था
अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थः षोडशी वाजपेयातिरात्रोऽतो-

र्याम इति सप्त सोमसंस्थाः इत्येते चत्वारिंशत्संस्काराः ।
 अथाष्टावात्मगुणाः दया सर्व्वभूतेषु क्षांतिरनसूया शौचम-
 नायासो मंगलमकार्पण्यमस्पृहेति । यस्यैते न चत्वा-
 रिंशत्संस्काराः न चाष्टावात्मगुणा न स ब्रह्मणः सालोक्यं
 सायुज्यं च गच्छतियस्य तु खलु संस्काराणामेकदेशोऽप्यष्टा
 वात्मगुणाः अथ सब्रह्मणः सालोक्यं सायुज्यं च गच्छति
 गच्छति ॥

इति श्रीगौतमस्मृतौ अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

स विविपूर्वं स्नात्वा भार्यामाधिगम्य यथोक्तान् गृहस्थ-
 धर्मान् प्रयुञ्जान इमानि व्रतान्यनुकर्षेत् स्नातकः नित्यं शुचिः
 सुगन्धिः स्नानशीलः सति विभवे न जीर्णमलवद्वासाः स्यात् ।
 न रक्तमुल्वणमन्यधृतं वा वासो बिभृयात् न स्रगुपानहौ
 निर्णिक्तर्मशक्तौ न रूढश्मश्रुरकस्मान्नामिमपश्च युगपद्धारयेत् ।
 नापोऽमेध्येन संसृजेत् । नांजलिना पिबेत् । न तिष्ठन् उद्धृ-
 तेनोदकेनाचामेत् । न शूद्राशुच्येकपाण्यावर्जितेन न वाय्वग्निं
 विप्रादित्यापो देवता गाश्च प्रतिपश्यन् वा मूत्रपुरीषामेध्यान्यु-
 दस्येत् नैता देवताः प्रति पादौ प्रसारयत् । न पर्णलोष्ठाश्म-
 भिर्मूत्रपुरीषापकर्षणं कुर्यात् । न भस्मकेशनखतुषकपालामे-

ध्यान्यधितिष्ठेन्न म्लेच्छाशुच्यधार्मिकैः सह संभाषेत संभाष्य
 पुण्यकृतो मनसा ध्यायेत् । ब्राह्मणेन वा सह संभाषेत । अधेनुं
 धेनुभव्येति ब्रूयात् । अभद्रं भद्रमिति कपालं भगालमिति
 मणिधनुरितिंद्रधनुः । गां धयंतीं परस्मै नाचक्षीत । नचैनां
 वारयेत् । न मिथुनीभूत्वा शौचं प्रति विलंबेत् । न च तस्मिन्
 शयने स्वाध्यायमधीयीत । न चापररात्रमधीत्य पुनः प्रतिसं-
 विशेत् । नाकल्पां नारीमभिरमयेत् । न रजस्वलां न चैतां
 श्लिष्येत् न कन्याम् । अग्निमुखोपधमविगृह्यवादबहिर्गंध-
 माल्यधारणपापीयसावलेखनभार्थासहभोजनांजनावेक्षणकुद्धार
 प्रवेशनपादधावनासंदिग्धभोजननदीबाहुतरणवृक्षवृषभाराहे-
 णावरोहणप्राणनाव्यवस्थां च विवर्जयेत् । न संदिग्धां नावम-
 धिरोहेत् । सर्व्वत एव आत्मानं गोपायेत् । न प्रावृत्य
 शिरोहनि पर्य्यटेत् । प्रावृत्य रात्रौ मूत्रोच्चारे च न भूमावन्त-
 र्द्धाय नाराच्चावसयान्न भस्मकरीषकृष्टच्छायापथिकाम्येषूभे
 मूत्रपुरीषे दिवा कुर्यात् । उदङ्मुखः संध्ययोश्च रात्रौ दक्षि-
 णामुखः पालाशमासनं पादुके दंतधावनमिति च वर्ज्येत् ।
 सोपानत्कश्चाशनासनशयनाभिवादननमस्कारान् वर्ज्येत् ।
 न पूर्वाह्नमध्यन्दिनापराह्णानफळान् कुर्याद्वा यथाशक्ति धर्मार्थ-
 कामेभ्यस्तेषु च धर्म्मोत्तरः स्यात् । न नग्नां परयोषितमीक्षेत
 न पदासदमाकर्षेत् । न शिशनोदरपाणिपादवाक्चक्षुश्चापलानि

कुर्यात् छेदनभेदनविलेखनाविमर्दनास्फोटनानि नाकस्मात्कु-
 र्यात् ॥ नोपरिवित्सतंत्रीं गच्छेत् । न जलंकुलः स्यात् । न
 यज्ञमवृतो गच्छेत् । दर्शनाय तु कामम् । न भक्ष्यानुत्संगे
 भक्षयेत् । न रात्रौ प्रेष्यादृतमुद्धृतस्नेहविलेपनपिण्याकम-
 थितप्रभृतीनि चात्तवीर्याप्यशनीयात् । सायंप्रातस्त्वन्नमभि-
 पूजितमनिन्दन् भुञ्जति । न कदाचिद् रात्रौ नमः स्वपेत्
 स्नायाद्वा । यच्चात्मवंतो वृद्धाः सम्यग्विनीता दंभलोभमोहवि-
 युक्ता वेदविद आचक्षते तत्समाचरेत् । योगक्षेमार्थमीश्वरमाधि-
 गच्छेत् । नान्यमन्यत्र देवगुरुधार्मिकेभ्यः प्रभृतैर्धोदकयवस-
 कुशमाल्योपनिष्क्रमणमार्य्यजनभूयिष्ठमनलसमृद्धं धार्मिका-
 धिष्ठितं निकेतनमावासितुं यतेत । प्रशस्तमंगल्यदेवतायनच
 तुष्पथादीन् प्रदक्षिणमावर्तेत । मनसा वा तत्समग्रमाचार-
 मनुपालेयदापत्कल्पः सत्यधर्मार्थ्यवृत्तः शिष्टाध्यापकः शौच-
 शिष्टः श्रुतिनिरतः स्यात् । नित्यमहिंसो मृदुदृढकारी दमदान-
 शील एवमाचारो आतापितरौ पूर्वापरांश्च संबद्धान् दुरितेभ्यो
 मोक्षयिष्यन् स्नातकः शश्वद्ब्रह्मलोकान्न च्यवते न च्यवते ॥

प्रथमः पाठकः ॥ १ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

द्विजातीनामध्ययनमिज्या दानम् । ब्राह्मणस्याधिकाः
 प्रवचनयाजनप्रतिग्रहाः सर्व्वेषु नियमस्तु आचार्यज्ञातिप्रि-
 यगुरुधनविद्यानियमेषु ब्राह्मणः संप्रदानमन्यत्र यथोक्तान्
 कृषिवाणिज्ये चास्वयंकृते कुसीदं च राज्ञोऽधिकं रक्षणं
 सर्व्वभूतानां न्याय्यदंडत्वं विभृयात् ॥ ब्राह्मणान् श्रोत्रियान्
 निरुत्साहांश्चाब्राह्मणानकरांश्चोपकुर्वाणांश्च योगश्च विजये भये
 विशेषेण चर्था च स्थधनुर्भ्यां संग्रामे सस्थानमनिवृत्तिश्च न
 दोषो हिंसायामाहवे अन्यत्र व्यश्वसारथ्यायुधकृतांजलिप्रकी-
 र्णकेशपराङ्मुखोपविष्टस्थलवृक्षादिरूढदूतगोब्राह्मणवादिभ्यः
 क्षत्रियश्चेदन्यस्तनुपजीवेत्तद्वृत्तिः स्यात् जेता लभेत सांग्रा-
 मिकं वित्तं वाहनं तु राज्ञ उद्धारश्चापृथक् जये अन्यतु यथार्हं
 भाजयेद्राजा राज्ञे बलिदानं कर्षकैः दशममष्टमं षष्ठं वा
 पशुहिरण्ययोरप्येके पंचाशद्भागं विंशतिभागः शुल्कः पण्ये
 मूले फलमधुमांसपुष्पौषधतृणधनानां षष्ठं तद्रक्षणधर्मित्वात्तेषु
 तु नित्ययुक्तः स्यात् । अधिकेन वृत्तिः शिल्पिनो मासिमास्ये-
 कैकं कर्म कुर्युः । एतेनात्मोपजीविनो व्याख्याताः । नौच-
 क्रिवंतश्च भक्तं तेभ्योऽपि दद्यात् । पण्यं वणिग्भिर्गार्थावचयेन

देयम् । प्रनष्टमस्वामिकमधिगम्य राज्ञे प्रब्रूयुः विख्याप्य
 राज्ञा संवत्सरं रक्ष्यमूर्ध्वमधिगंतुश्चतुर्थं राज्ञः शेषं स्वामी ।
 रिक्थाक्रयसंविभागपरिग्रहाधिगमेषु ब्राह्मणस्याधिकं लब्धं
 क्षत्रियस्य विजितं निर्विष्टं वैश्यशूद्रयोः निध्यधिगमा राजधनं
 न ब्राह्मणस्याभिरूपस्य अब्राह्मणो व्याख्यातः षष्ठं लभे-
 तेत्येके । चौरहतमुपजित्य यथास्थानं गमयेत् । कोशाद्वा
 दद्यात् । रक्ष्यं बालधनमाव्यवहारप्रापणादा समावृत्तेर्वा ।

वैश्यस्याधिकं कृषिवणिक्पाशुपाल्यं कुसोदं शूद्रश्चतुर्थो
 वर्ण एकजातिस्तस्यापि सत्यमक्रोधमशौचमाचमनार्थं पाणि-
 पादप्रक्षालनमेवैके श्राद्धकर्म भृत्यभरणं स्वदारतुष्टिः परि-
 चर्या चोत्तरेषां वृत्तिं लिप्सेत् जीर्णान्युपानच्छत्रवासः कूर्चान्
 च्छिष्टाशनं शिल्पवृत्तिश्च । यं चायमाश्रयते भर्तव्यस्तेन
 क्षीणोऽपि तेन चोत्तरस्तदर्थोऽस्य निचयः स्यात् । अनु-
 ज्ञातोऽस्य नमस्कारो मंत्रः । पाक्यज्ञैः स्वयं यजेतेत्येके
 सर्वे चोत्तरोत्तरं परिचरेयुः । आर्यानार्ययोर्व्यतिक्रमे कर्मण
 साम्यं साम्यम् ॥

एकादशोऽध्यायः ११ ।

राजा सर्वस्येष्टे ब्राह्मणवर्जं साधुकारी स्यात् । साधुवादी
त्रय्यामान्वीक्षिक्यां चाभिविनीतः । शुचिर्जितेन्द्रियो गुणव-
त्सहायोपायसंपन्नः समः प्रजासु स्यात् हितं चासां कुर्वीत
तमुपर्यासीनमथस्तादुपासीरन्नन्ये ब्राह्मणेभ्यस्तेऽप्येनं मन्ये-
रन् । वर्णानामाश्रमांश्च न्यायतोऽभिरक्षेत् । चलतश्चैनान्स्व-
धर्मे एव स्थापयेत् । धर्मस्थोऽशभाग्भवतीति विज्ञायते
ब्राह्मणं च पुरो दधीत विद्याभिजनवाग्रूपवयःशीलसंपन्नं
न्यायवृत्तं तपस्विनम् । तत्प्रसूतः कर्माणि कुर्वीत ब्रह्मप्रसूतं
हि क्षत्रमृध्यते न व्यथत इति च विज्ञायते ।

यानि च दैवोत्पातचित्तकाः प्रब्रूयुस्तान्याद्रियेत तदधी-
नमपि ह्येके योगक्षेमं प्रतिजानते । शान्तिपुण्याहस्वस्त्ययना-
युष्यमंगलयुक्तान्याभ्युदयिकानि विद्वेषणसंवलनाभिचारद्वि-
षद्व्युद्विगुक्तानि च शालामौ कुर्यात् । यथोक्तमृत्विजोऽल्पानि ।
तस्य व्यवहारो वेदो धर्मशास्त्राण्यंगान्युपवेदाः पुराणं देश-
जातिकुलधर्माश्चाम्नायैरविरुद्धाः प्रमाणं कर्षकवणिकपशु-
पालकुसीदकारवः स्वे स्वे वर्गे तेभ्योयथाधिकारमर्थान्
प्रत्यवहृत्य धर्मव्यवस्थान्यायाधिगेम तर्कोऽभ्युपायः । तेना-
भ्युपगम्य यथास्थानं गमयेत् । विप्रतिपत्तौ त्रैविद्यवृद्धेभ्यः

प्रत्यवहृत्य निष्ठां गमयेत् । तथा ह्यस्य निःश्रेयसं भवति ।
ब्रह्म क्षेत्रेण संपृक्तं देवपितृमनुष्यान् धारयतीति विज्ञायते ।

दंडो दमनादित्याहुस्तेनादांतान् दमयेत् वर्णाश्रमाश्च
स्वकर्मनिष्ठाः प्रेत्य फलमनुभूय ततः शेषेण विशिष्टदेशजा-
तिकुलरूपायुःश्रुतवित्तवृत्तसुखमेधसो जन्म प्रतिपद्यते ।
विष्वंचो विपरीता नश्यन्ति तानाचार्योपदेशो दंडश्च पालयते ।
तस्मात् राजाचार्यावनिद्यावीनद्यौ ॥

इति गौतमस्मृतावेकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

शूद्रो द्विजातीनभिसंधायाभिहत्य च वाग्दंडपारुष्याभ्या-
मंगं मोच्यो येनोपहन्यात् । आर्यरूप्यभिगमने लिङ्गोद्धारः
स्वप्रहरणं च गोप्ता चेद्वधोऽधिकः अथाहास्य वेदमुपशृण्वत-
स्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणम् । उदाहरणे जिह्वाच्छेदः
धारणे शरीरभेदः । आसनशयनवाक्पथिषु समप्रेप्सुदंड्यः
शतम् । क्षत्रियब्राह्मणाक्रोशे दंडपारुष्ये द्विगुणम् ॥ अध्यर्द्धं
वैश्यः । ब्राह्मणः क्षत्रियेपंचाशो तदर्धं वैश्ये न शूद्रे किञ्चित्
ब्राह्मणराजन्यवत् । क्षत्रियवैश्यौ अष्टापाद्यं स्तेयकिल्बिषं
शूद्रस्य द्विगुणोत्तराणीतरेषाम् । प्रतिवर्णं विदुषोऽतिक्रमे
दंडभूयस्त्वम् पलहरितधान्यशाकादाने पंचकृष्णलमल्पे
पशुपीडिते स्वामिदोषः पालसंयुक्ते तु तस्मिन् पथि क्षेत्रेऽनावृते

पालक्षेत्रिकयोः पंचमाषा गवि षडुष्टखरे अश्वमहिष्योर्दश
अजाविषु द्वौ द्वौ सर्व्वविनाशे शतं शिष्टाकरणे प्रतिषिद्धसे-
वायां च नित्यं चेलपिंडादूर्ध्वं स्वहरणं गोऽग्न्यर्थं तृणमेधो-
वीरुद्धनस्पतीनां च पुष्पाणि स्ववदाददीत फलानि चाप-
रिवृत्तानाम् ॥

कुसीदवृद्धिर्द्धर्म्या विंशतिः पंचमासिकी मासं नातिसां-
वत्सरीमेके चिरस्थाने द्वैगुण्यं प्रयोगस्य भुक्ताभिर्न वर्द्धते
दित्सतोऽवरुद्धस्य च चक्रकालवृद्धिः कारिता कायिकाशिकाऽ
धिभोगाश्च कुसीदं पशूपलोमजक्षेत्रशतवाह्येषु नापि पंचगु-
णम् । अजडापोगंडधनं दशवर्षमुक्तं पैरः सन्निधौ भोक्तुः
न श्रोत्रियप्रव्रजितराज पुरुषैः पशुभूमिस्त्रीणामनतिभोगः
रिक्थभाजि ऋणं प्रतिकुर्धुः प्रातिभाव्यवणिक्कुक्कुमद्ययूत-
दंडान् पुत्रानध्याभवेयुः निध्यं वाचितावक्रीताधयो नष्टाः
सर्वा न निदिता न पुरुषापराधेन स्तेनः प्रकीर्णकेशो
मुसली राजानमियात् कर्माचक्षाणः पूतो वधमोक्षाभ्यामग्न
न्नेनस्वा राजा न शरीरो ब्राह्मणदंडः कर्मवियोगविरूपापन
विवासनांकरणानि अप्रवृत्तौ शायश्चिती सः चोरसमः
सचिवो मतिपूर्वं प्रतिगृहीताप्यधम्मंस्त्रयुक्ते पुरुषशक्त्यपरा-
धानुबंधविज्ञानादंडनियोगः अनुज्ञानं वा वेदवित्समवायवच-
नात् वेदवित्समवायवचनात् ॥

इति गौतमस्मृतौ द्वादशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

विप्रतिपत्तौ साक्षिणि मिथ्यासत्यव्यवस्था बहवः स्युर-
निदिताः स्वकर्मसु प्रात्ययिका राज्ञां निःप्रीत्यनभिताया-
श्चान्यतरांस्मिन्नपि शूदाः ब्राह्मणस्त्वब्राह्मणवचनादनवरोध्योऽ
निबद्धश्चेत् नासमवेतापृष्टाः प्रब्रूयुः अवचनेऽन्यथावचने च
दोषिणः स्युः स्वर्गः सत्यवचने विपर्यये नरकः अनिवद्धैरपि
वक्तव्यं पीडाकृते निबन्धः प्रमत्तोक्ते च साक्षिसभ्यराजकर्तृषु
दोषो धर्मतन्त्रपीडायाम् । शपथेनैके सत्यकर्मणा तद्देवरा-
ब्राह्मणसंसादि स्यात् ।

अब्राह्मणानां क्षुद्रपश्वनृते साक्षी दश हन्ति गोऽश्वपुरुषभू-
मिषु दशगुणोत्तरान् । सर्वं वा भूमौ हरणे नरकः भूमि-
वदप्सु मैथुनसंयोगेषु च पशुवन्मधुसर्पिषोः गोवदस्त्रहिर-
ण्यधान्यब्रह्मसु यानेष्वश्ववत् मिथ्यावचने याप्यो दंडश्च
साक्षी नानृतवचने दोषो जीवनं चेतदधीनं नतु पापीयसो
जीवनं राजा प्राड्विवाको ब्राह्मणो वा शास्त्रवित् प्राड्विवाको
मध्यो भवेत् । संवत्सरं प्रतीक्षेत प्रतिभायां धेन्वनहुत्स्त्रप्रिज-
नसंयुक्तेषु शीघ्रम् । आत्ययिके सर्वधर्मेभ्यो गरीयः
प्राड्विवाके सत्यवचनं सत्यवचनम् ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

शावमाशौचं दशरात्रमनृत्विग्दीक्षितब्रह्मचारिणां सर्पि-
 ङानामेकादशरात्रं क्षत्रियस्य द्वादशरात्रं वैश्यस्यार्द्धमासमे-
 कमासं शूद्रस्य तच्चेदंतः पुनरापतेत्तच्छेषेण शुद्धयेरन् ।
 रात्रिशेषे द्वाभ्यां प्रभाते तिसृभिः गोब्राह्मणहतानामन्वक्ष
 राजक्रोधाच्च । युद्धप्रायोऽनाशकशस्त्राग्निविषोदकोद्धंधनप्रपतनै-
 श्चेच्छतां पिंडनिवृत्तिः सप्तमे पंचमे वा जननेऽप्येवं मातापि-
 त्रोस्तन्मातुर्वा गर्भमाससमा रात्रीः संसने गर्भस्य त्र्यहं वा
 श्रुत्वा चोर्ध्वं दशम्याः पक्षिणी असपिण्डे योनिसंबंधे सहाध्या-
 यिनि च सब्रह्मचारिण्येकाहं श्रोत्रिये चोपसंपन्ने प्रेतोपस्पर्शने
 दशरात्रमशौचमभिसंधाय चेत् उक्तं वैश्यशूद्रयोः आर्तवीर्वा
 पूर्वयोश्च त्र्यहं वा आचार्यतत्पुत्रस्त्रीयाज्यशिष्येषु चैवम् ।
 अवरश्चेद्गर्णः पूर्वं वर्णमुपस्पृशेत् । पूर्वो वावरं तत्र शावोक्तम्
 आशौचे पतितचंडालसूतिकोदकयाशवस्पृष्टितत्पृष्ठ्युपस्पर्शने-
 सचैलोदकोपस्पर्शनाच्छुध्येत् । शवानुगमे शुनश्च यदुपहन्या-
 दित्येके उदकदानं सर्पिण्डे कृतचूडस्य तत्स्त्रीणां चानातिभाग
 एकेऽप्रत्तानाम् ।

अधःशय्यासनिनो ब्रह्मचारिणः सर्व्वे न मार्जयेरन् । न
 मांसं भक्षयेयुराप्रदानात् । प्रथमतृतीयसप्तमनवमेषूदकाक्रिया

वाससां च त्यागः । अंत्ये त्वंत्यानां दंतजन्मादिमातापि
तृभ्यां तूष्णीं माता बालदेशांतरितप्रव्रजितासपिंडानां सद्यः
शौचम् । राज्ञां च कार्यविरोधात् । ब्राह्मणस्य च स्वाध्याया-
निवृत्त्यर्थं स्वाध्यायानिवृत्त्यर्थम् ॥

इति गौतमस्मृतौ चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः १५.

अथ श्राद्धममावास्यां पितृभ्यो दद्यात् । पंचमीप्रभृति
चापरपक्षस्य यथाश्राद्धं सर्व्वस्मिन्वा द्रव्यदेशब्राह्मणसन्निधाने
वा कालनियमः शक्तितः प्रकर्षे गुणसंस्कारविधिरन्नस्य नवा-
वरान् भोजयेदयुजो यथोत्साहं वा ब्राह्मणान् श्रोत्रियान्
वाग्रूपवयः शीलसंपन्नान् । युवभ्यो दानं प्रथममेके पितृवत् ।
न च तेन मित्रकर्म कुर्यात् पुत्राभावे सपिंडा मातृसपिंडाः
शिष्याश्च दद्युस्तदभावे ऋत्विगाचार्यौ । तिलमाषवीहियवो-
दकदानैर्मांसं पितरः प्रीणन्ति । मत्स्यहरिणरुशशकूर्म्म-
वराहमेषमांसैः संवत्सराणि । गव्यपयःपायसैर्द्वादशवर्षाणि
वार्धीणसेन मांसेन कालशाकच्छागलो खड्गमांसैर्मधुमिश्रै-
श्चानंत्यम् । न भोजयेत् स्तेनक्लीबपतिततद्वृत्तिनास्तिकवी-
रहाग्नेदिधिषूदिधिषूपतिस्त्रीग्रामयाजकाजपालोत्सृष्टाभिमद्यप-
कुचरकूटसाक्षिप्रातिहारिकानुपपत्तिर्यस्य च । कुंडाशी सोम-

विक्रय्यगारदाहीगरदावकीर्णिगणपेध्यागम्यागाभिहिंसपरि—
वित्तिपरिवेत्तृपर्याहितपर्याधातृत्यक्तात्मदुर्वालान् कुनखिश्या-
वन्दतश्चित्रिपौनर्भवकितवाजपराजप्रेष्यप्रातिरूपिकशूद्रापति—
निराकृतिर्किलासिकुसीदिवणिकशिल्पोपजीविज्यावादिव्रताल
नृत्यगीतशीलान् पित्रा चाक्रामेन विभक्तान् ।

शिष्यांश्चैके सगोत्रांश्च भोजयेदूर्ध्वं त्रिभ्यो गुणवंतं सद्यः
श्राद्धी शूद्रातल्पगस्तत्पुत्ररोषे मासं नयति पितृन् तस्मात्
तदहर्ब्रह्मचारी स्यात् ॥ श्वचंडालपतितावेक्षणे दुष्टं तस्मात्
परिश्रुते दद्यात् तिलैर्वा विकिरेत् । पंक्तिपावनौ वा
शमयेत् ।

पंक्तिपावनाः षडंगवित् ज्येष्ठसामगस्त्रिणाचिकेतस्त्रिमधु-
स्त्रिसुपर्णः पंचामिः स्नातको मंत्रब्राह्मणवित् धर्मज्ञो ब्रह्मदे-
यानुसंधान इति हविःषु चैव दुर्बलादीञ्छाद्र एवैक एवैके ॥

इति गौतमस्मृतौ भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः १६.

श्रावणादिवार्षिकीं प्रोष्ठपदीं वोपाकृत्याधीयीतच्छदांसि
अर्धपंचमासान् । पच दक्षिणायनं वा ब्रह्मचार्युत्सृष्टलामा न
मांसं भुंजीत द्वैमास्यो वा नियमः ।

नाधीयीत वायौ दिवा पांसुहरे कर्णश्राविणि नक्तं बाण-
भेरीमृदंगगर्जनार्तशब्देषु च श्वसृगालगर्दभसंघादे लोहिते-

द्रव्यनुर्नीहारेषु अभ्यदर्शने चापतौ मूत्रित उच्चारित निशासं-
 ध्योदके वर्षति चैके वलीकसंतानमार्चायपीरवेषणे ज्योति-
 षोश्च भीतो यानस्थः शयानः प्रौढपादः श्मशानग्रामांतमहा-
 पथाशौचेषु पूतिगंधांतःशवदिवाकीर्तिशूदसःत्रिधाने शुल्कके
 चोद्रावे ऋग्यजुषं च सामशब्दो यावत् । आकालिकाः
 निर्घातभूमिकंपराहुदर्शनोल्काः स्तनयित्नुवर्षविद्युतश्च प्रादु-
 ष्कृतामिषु अनृतौ विद्युति नक्तं चापररात्रात् त्रिभागादि-
 प्रवृतौ सर्वमुल्काविद्युत्समेत्येकेषां स्तनयितुरपराह्णे अपि
 प्रदोषे सर्वं नक्तमर्द्धरात्रात् । अहश्चेत्सज्योतिः विषयस्थे च
 राज्ञि प्रेते विप्रोष्य चान्योन्येन सह संकुलोपाहितवेदसमाप्तिः
 छर्दिश्राद्धमनुष्ययज्ञभोजनेष्वहोरात्रम्अमावास्यायां च द्रव्यं
 वा कार्तिकीफाल्गुन्याषाढापूर्णिमासीतिस्रोऽष्टकास्त्रिरौत्रमन्या-
 ग्न्येके अभितो वार्षिकं सर्व्वं वर्षविद्युत्स्तनयित्नुसंनिपाते
 प्रस्पंदिन्यूर्ध्वं भोजना दुत्सवे प्राधीतस्य च निशायां चतुर्मुहूर्तं
 नित्यमेके नगरे मानसमप्यशुचि श्राद्धिनामाकालिकमकृतान्न-
 श्राद्धिकसंयोगेऽपि प्रतिविद्यं च यावत्स्मरंति यावत्स्मरंति ॥

इति गौतमस्मृतौ षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

अशस्तानां स्वकम्मसु द्विजार्तिनां ब्राह्मणो भुंजीत प्रतिगृह्णी-
यात् । एधोदकयवसमूलफलमध्वभयाभ्युद्यतशय्यासनाव-
सथयानपयोदधिधानाशकरिप्रियंगुस्रङ्गमार्गशाकान्यप्रणोद्यानि
सर्व्वेषां पितृदेवगुरुभृत्यभरणे चान्यत् । वृत्तिश्चेत् नांतरेण—
शूदान् पशुपालक्षेत्रकर्षककुलसंगतकारयितृपरिचारका भोज्या-
न्ना वणिक्चाशिल्पी । नित्यमभोज्यं केशकीटावपत्रं रज-
स्वलाकृष्णशङ्कुनिपदोपहतं भ्रूणघ्रावेक्षितं गवोपघ्रातं भावदुष्टं
शुक्तं केवलमदधि पुनः सिद्धं पर्युषितमशाकभक्ष्यस्नेहमांसम-
धूनि उत्सृष्टपुंश्चल्यभिः शस्तानपदेश्यदंडिकतक्षककदर्यबंधानिक-
चिकित्सकमृगवार्युच्छिष्टभोजिगणविद्विषाणामपांक्तानां प्राक्
दुर्बलान् वृथान्नानि च मनोत्थानव्यपेतानि समासमाभ्यां
विषमसमे पूजान्तरानार्चितश्च गोश्च क्षीरमनिर्दशायाः सूतके
अजामहिष्योश्च नित्यमाविकमपेयमौष्ट्रमेकशरुं च स्पंदि-
नीयमसूसंधिनीनां च याश्च व्यपेतवत्साः पंचनखाश्च
शल्यकशशकश्वाविद्गोधाखड्गकच्छपाः उभयतोदत्केश्यलो-
मैकशफकलर्विकप्लवचक्रवाकहंसाः काककंकगृध्रश्येना जलजा
रक्तपादतुंडाः ग्राम्यकुक्कुटसूकरौ धेन्वनडुहौ च आपन्नदाव-
सन्नवृथामांसानि । किसलयक्याकुलगुनानिर्यासलोहितावश्च-

नाश्वनिचिदारुवकबलाकाःशुकद्रुद्रुट्टिभमांधातृनक्तंचरा अ-
भक्ष्याः । भक्ष्याः प्रतुदाविष्किराजालपादाः मत्स्पाश्चाविकृता-
वध्याश्च धर्मार्थे व्यालहतादृष्टदाषवाक्प्रशस्तान्यभ्युक्ष्यो-
पयुंजीतोपयुंजीत ॥

इति गौतमस्मृतौ सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.

अस्वतंत्रा धर्मे स्त्री नातिचरेद्भर्तारं वाक्चक्षुःकर्मसंयता
यद्यपत्यलिप्सुर्देवरात् गुरुप्रसूतान्नर्तुमतीयात् पिंडगोत्रक्र-
षिसंबंधेभ्यः योनिमात्राद्वा नादेवरादित्येके । नातिद्वितीयं
जनयितुरपत्यं समयादन्यत्र जीवतश्च क्षेत्रे परस्मात्तस्य
द्वयोर्वा रक्षणाद्भर्तुरेव । नष्टे भर्तारि षाड्वार्षिकं क्षपणं श्रूयमाणेऽ-
भिगमनं प्रव्रजिते तु निवृत्तिः प्रसंगात् तस्य द्वादशवर्षाणि
ब्राह्मणस्य विद्यासंबंधे भ्रातरि चैवं ज्यायसि यवीयान् कन्या-
ग्न्युपयमनेषु षडित्येके । त्रीन्कुमार्यृतूनतीत्य स्वयं युज्येता-
निंदितेनोत्सृज्य पित्र्यानलंकारान् । प्रदानं प्रागृतोरप्रयच्छन्
दोषो प्राग्वाससः प्रतिपत्तेरित्येके द्रव्यादानं विवाहसिद्धयर्थं
धर्मतत्रप्रसंगे च शूद्रात् । अन्यत्रापि शूद्रात् बहुपशोर्ही-
नकर्मणः शतगोरनाताग्रेः सहस्रगोर्वा सोमपात् सप्तमीं

चाभुक्ता निचयाय अप्यहीनकर्मभ्यः आचक्षीत राज्ञा पृष्टस्तने
हि भर्तव्यः श्रुतशीलसंपन्नश्चेद्धर्मतंत्रपोडायां तस्याकरणे
दोषोऽदोषः ॥

इति गौतमस्मृतावष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

द्वितीयः प्रपाठकः

एकोनविंशोऽध्यायः १९.

उक्तो वर्णधर्मश्चाश्रमधर्मश्च ॥ अथ खल्वयं पुरुषो येन
कर्मणा लिप्यते यथैतदयाज्ययाजनमभक्ष्यभक्षणमवद्यवदनं
शिष्टस्याक्रिया प्रतिषिद्धसेवनमिति च तत्र प्रायश्चित्तं कुर्यान्न
कुर्यादिति मीमांसंत न कुर्यादित्याहुर्न हि कर्म क्षीयत
इति कुर्यादित्यपरे पुनः स्तोमेनेष्ट्वा पुनः सवनमायांतीति
विज्ञायते । व्रात्यस्तोमैश्चेष्ट्वा तरति सर्व्व पाप्मानम् । तरति
ब्रह्महत्यां योऽश्वमेधेन यजते।अग्निष्टुताभिशस्यमानं याजयेदिति
च । तस्य निष्क्रयणानि जपस्तपो होम उपवासो दानमुप-
निषदो वेदांताः सर्व्वच्छुद्धः सुसंहिता मधून्यधमर्षणमथर्व-
शिरो रुद्राः पुरुषसूक्तं राजनरौहिणे सामनी बृहद्रथंतरे
पुरुषगतिर्महानामन्यो महावैराजं महादिवाकीर्त्यं ज्येष्ठसा-
म्नामन्यतमं बहिष्पवमानं कूष्मांडानि पावमान्यः सावित्री
चोति पावनानि । पयोव्रतता शाकभक्षता फलभक्षता प्रसू-

तयावको हिरण्यप्राशनं वृतप्राशनं सोमपानमिति चमेध्यानि ।
 सर्वे शिलोच्चयाः सर्वाः स्रवंत्यः पुण्या हृदास्तीर्थानि ऋषिनि-
 वासा गोष्ठपरिस्कंदा इति देशाः । ब्रह्मचर्यं सत्यवचनं
 सवनेषूदकोपस्पर्शनमार्द्रवस्त्रताधःशायिताऽनाशक इति
 तपांसि । हिरण्यं गौर्वासोऽश्वो भूमिस्तिलघृतमन्नमिति देयानि ।
 संवत्सरः षण्मासाश्चत्वारस्त्रयो द्वावेकश्चतुर्विंशत्यहोद्वादशाहः
 षडहस्त्रयहोऽहोरात्र इति कालाः एतान्येवानादेशे विकल्पेन
 क्रियेरन्नेनसि गुरुणि गुरूणि लघुनि लघुनि कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ
 चांद्रायणमिति सर्वप्रायश्चित्तं प्रायश्चित्तम् ॥

इति गौतमस्मृतावेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः २०.

अथ चतुःषष्टिषु यातनास्थानेषु दुःखान्यनुभूय तत्रेमानि
 लक्षणानि भवंति ब्रह्म हार्द्रं कुष्ठी सुरापः श्यावदंतः गुरुतल्पगः
 पंगुः स्वर्णहारीकुनखी शिवत्री वस्त्रापहारीहिरण्यहारी दर्दुरी
 तजोऽपहारी मण्डली स्नेहापहारी क्षयी तथा अजीर्णवानन्ना-
 हारी ज्ञानापहारी मूकः प्रतिहंता गुरोरपस्मारी गोघ्नो जात्यंधः
 पिशुनः पूतिनासः पूतिवक्रस्तु सूचकः शूद्रोपाध्यायः श्वपा-
 कस्त्रपुसीसचामरविक्रयी मद्यप एकशफविक्रयी मृगव्याधः
 कुंडाशी मृतकचैलिको वा नक्षत्री चार्बुदी नास्तिके

रंगोपजीव्यभक्ष्यभक्षी गंडरी ब्रह्मपुरुषतस्कराणां देशिकः
 पिंडितः षंढो महापथिको गंडिकश्चांडाली पुलकसी गोष्ववकीर्णी
 मध्वामेही धर्मपत्नीषु स्यान्मैथुनप्रवर्तकः खल्वाटः सगो-
 त्रासमयरूपभिगामी श्लीपदी पितृमातृभगिनीस्त्र्यभिगाम्य-
 विजितस्तेषां कुब्जकुंडपंडव्याधितव्यंगदरिद्राल्पायुषोऽल्प-
 बुद्धिः चंडपंडशैलूषतस्करपरपुरुषप्रेष्यपरकर्मकराः खल्वा-
 टवक्रांगसंकीर्णाः क्रूरकर्मणः क्रमशश्चांत्याश्चोपपद्यन्ते
 तस्मात्कर्तव्यमेवेह प्रायश्चित्तं विशुद्धैर्लक्षणैर्जायन्ते धर्मस्य
 धारणादिति धर्मस्य धारणादिति ॥

इति गौतमस्मृतौ विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः २१.

त्यजेत्पितरमपि राजघातकं शूद्रयाजकं शूद्रार्थयाजकं
 वेदविप्लावकं भ्रूणहनं यश्चांत्यावसायिभिः सह संवसेदंत्यावसा-
 यिन्या वा तस्य विद्यागुरुन्योनि संबंधाश्च सन्निपात्य सर्वा-
 ण्युदकादीनि प्रेतकर्मणि कुर्युः पात्रं चास्य विपर्यस्येयुः
 दासः कर्मकरो वा अवकरादमेध्यपात्रमानीय दासीघटान्
 पूरयित्वा दक्षिणाभिमुखः पदा विपर्यस्येदमुमनुदकं करोमीति
 नामग्राहं तं सर्वेऽन्वालभेरन् प्राचीनावीतिनो मुक्तशिखा विद्या-
 गुरवो योनि संबंधाश्च वीक्षेरन् । अप उपस्पृश्य ग्रामं

अविशंति अत ऊर्ध्वं तेन संभाष्य तिष्ठेदेकरात्रं जपन्सावित्री
मज्ञानपूर्वं ज्ञानपूर्वं चेन्निरात्रम् ।

यस्तु मायाश्चित्तेन शुद्धयेत्तस्मिन् शुद्धं शातकुभमये पात्र
पुण्यतमात् हृदात् पूरयित्वा स्रवंतभ्यो वा तत एनमप
उपस्पर्शयेयुः । अथास्मै तत्पात्रं दद्युस्तत्संप्रतिग्रह्य जपेत्
शांता द्यौः शांता पृथिवी शांतं शिवमंतरिक्षं यो रोचनस्तमिह
गृह्णामीत्येतैर्यजुर्भिस्तरत्समंदीभिः पावमानीभिः कृष्मांडैश्चाज्यं
जुहुयात् । हिरण्यं ब्राह्मणाय वा दद्यात् गां चाचार्याय च
यस्य च प्राणांतिकं प्रापश्चित्तं स मृतः शुद्धयेत् तस्य सर्वाण्यु-
दकादीनि प्रेतकर्माणि कुर्युरेतदेव शांत्युदकं सर्वेषूपपातकेषु
सर्वेषूपपातकेषु ॥

इति गौतमस्मृतावेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः २२.

ब्रह्महसुरापगुरुतल्पगमातृपितृयोनिबंधगस्तेन नास्तिक-
निंदितकर्माभ्यासिपतितात्याग्यपतितत्यागिनः पतिताः ।
पातकसंयोजकाश्च तैश्चाब्दं समाचरन् द्विजातिकर्मभ्यो
हानिः पतनं परत्र चासिद्धिस्तामेके नरकं त्रीणि प्रथमान्य-
निर्देश्यानि मनुः । न स्त्रीष्वगुरुतल्पगः पततीत्येके । भ्रूणहनि
हीनवर्णसेवायां च स्त्री पतति कौटसाक्ष्यं राजगामि पशुनं

गुरोरनृताभिशंसनं महापातकसमानि अपांकृत्यानां प्राग्दुब-
लात् । गोहंतृब्रह्मोज्झतन्मंत्रकृदवकीर्णपतितसावित्रिकेषूप-
पातकं याजनाध्यापनादृत्विगाचार्यो पतनीयसेवायां च हेयौ
अन्यत्र हानात्पतति तस्य च प्रतिग्रहीत्येके न कर्हिचिन्माता-
पित्रोरवृत्तिः दायं तु न भजेरन् ब्राह्मणाभिशंसने दोषस्तावान्
द्विरेनेनसि दुर्बलहिंसायां चापि मोचने शक्तश्चेत् । अभि-
क्रुद्ध्यावगूरणं ब्राह्मणस्य वर्षशतमस्वर्ग्यं निपातने निर्घाते
सहस्रं लोहितदर्शने यावतस्तत्प्रस्कंद्य पांसून् संगृह्णीयात्सं-
गृह्णीयात् ॥

इति गौतमस्मृतौ द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

प्रायश्चित्तमग्नौ सक्तिर्ब्रह्मघ्नस्त्रिरवच्छादितस्य लक्ष्येण वा
स्याज्जन्यशस्त्रभृतां स्वांगकपालपाणिर्वा द्वादशसंवत्सरान्
ब्रह्मचारी भैक्ष्याय ग्रामं प्रविशेत् स्वकर्माचक्षाणः यथो-
पक्रामेत्संदर्शनादार्यस्य स्नानासनाभ्यां विहरन् सवनेषूदको-
पस्पर्शनाच्छुद्धयेत् । प्राणलाभे वा तन्निमित्ते ब्राह्मणस्य
द्रव्यापचये वा त्र्यवरं प्रति राज्ञोऽश्वमेधावभृत्ये वान्ययज्ञे-
ऽप्यग्निष्टं दत्तश्चोत्सृष्टश्चेद्ब्राह्मणवधे हत्वापि आत्रेय्यां चैवं
गर्भे चाविज्ञाते ब्राह्मणस्य राजन्यवधे षड्वार्षिकं प्राकृतं

ब्रह्मचर्यमृषभैकसहस्राश्च गा दद्यात् वैश्ये त्रैवार्षिकमृषभैक-
शताश्च गा दद्यात् शूद्रे संवत्सरमृषभैकादशाश्च गा दद्यात् ।
अनाव्रेण्यां चैवं गां च वैश्यवत् मंडूकनकुलकाकविड्वराहमूषि-
काश्चर्हिंसासु च । अस्थिमतां सहस्रं हत्वा अनस्थिमताम-
नदुद्रारे च अपि वाऽस्थिमतामेकैकस्मिन् किञ्चिद्दद्यात् ।
बंदे च पलालभारः सप्तिमाषकश्च वराहे घृतघटः सर्पे लोह-
दंडः ब्रह्मबंध्वां च ललनायां जीवो वैशिके न किञ्चित्
तल्पान्नधनलाभवधेषु पृथग्वर्षाणि द्वे परदारौ त्रीणि श्रोत्रि-
यस्य द्रव्यलाभे चोत्सर्गः यथास्थानं वा गमयेत् प्रतिषिद्धमत्र
योगे सहस्रवाक् चेत् अग्न्युत्सादिनिराकृत्युपपातकेषु चैवं-
स्त्री चातिचारिणी गुप्ता पिंडं तु लभेत् । अमानुषीषु गोवर्जं
स्त्रीकृते कूष्मांडैर्वृतहोमो घृतहोमः ॥

इति गौतमस्मृतौ त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः २४.

सुरापस्य ब्राह्मणस्योष्णामासिंचेयुः सुरामास्ये मृतः
शुद्धयेत् अमत्या पाने पयो घृतमुदकं वायुं प्रतिव्यहं तप्तानि
सकृच्छस्ततोऽस्य संस्कारः मूत्रपुरीषरेतसां च प्राशने
श्वापदोष्ट्रखराणां चांगस्य ग्रामकुक्कुटशूकरयोश्च गंधाघ्राणे
सुरापस्य प्राणायामो घृतप्राशनं च पूर्वैश्च दष्टस्य तल्पे

लोहशयने गुरुतल्पगः शयीत । सूमीं वा ज्वलंतीं चालिष्येत् ।
 लिंगं वा सवृषणमुत्कृत्यांजलावाधाय दक्षिणां प्रतीचीं दिशं
 व्रजेत् । अजिह्ममाशरीरनिपातात् मृतः शुद्ध्येत् । सखी-
 सखीनिसगोत्राशिष्यभार्यासु स्नुषायां गवि च गुरुतल्पसमो-
 ऽवकर इत्येके । श्वभिरादयेद्राजा निहीनवर्णगमने स्त्रियं
 प्रकाशं पुमांसं दातयेत् । यथोक्तं वा गर्दभेनावकीर्णे
 निर्ऋतिं चतुष्पथे यजते । तस्याजिनदूर्द्ध्वाठं परिधाप्य
 लोहितपात्रः सप्तगृहान् भैक्षं चरेत् कर्म्माचक्ष्णः संवत्सरेण
 शुद्ध्येत् । रेतःस्कन्दने भये रोगे स्वप्नेऽप्रीधनभैक्षचरणानि
 सप्तरात्रं कृत्वाज्यहोमः साभिषंधेर्वा रेतस्याभ्याम् ॥

सूर्याभ्युदिते ब्रह्मचारी तिष्ठेदहरभुजानोऽभ्यस्तमिते
 रात्रिं जपन् सावित्रीम्, अशुचिं दृष्ट्वादित्यमीक्षेत् प्राणाया
 कृत्वा अमेध्यप्राशने वा अभोज्यभोजने निष्ठुरीषीभा
 त्रिरात्रावरमभोजनं सप्तरात्रं वा स्वयं शीर्णान्युपयुंजा
 फलान्यनतिक्रामन् प्राक् पंचनखेभ्यश्छर्दिरो घृतप्राशनं
 आक्रोशानृतहिंसासु त्रिरात्रं परमंतपः सत्यवाक्ये चेद्धारुणीं
 पावमानीभिर्होमः । विवाहमैथुननिर्मातृसंयोगैश्च दोषमे
 अनृतं चेत् न तु खलु गुर्वर्थेषु यतः सप्त पुरुषानितश्च पर

इति मनसापि गुरोरनृतं तदन्नल्पेष्वप्यर्थेषु अंत्यावसायि-
नीगमने कृच्छ्राब्दः अमत्या द्वादशरात्रम्, उदकयागमने
त्रिरात्रं त्रिरात्रम् ॥

इति गौतमस्मृतौ चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पंचविंशोऽध्यायः २५.

रहस्यं प्रायश्चित्तमविख्यातदोषस्य चतुर्द्वयं तरत्समं दी-
व्यप्सु जपेदप्रतिग्राह्यं प्रतिजिघृक्षन् प्रतिगृह्य वा अभोज्यं
बुभुक्षमाणः पृथिवीमावपेत् ऋत्वंतरमण उदकोपस्पर्शनाच्छु-
द्धिमेके स्त्रीषु पयोव्रतो वा दशरात्रं घृतेन द्वितीयमाद्विस्तृतीयं
दिवादिष्वेकभक्तको जलक्लिन्नवासाः लोमानि नखानि त्वचं
मांसं शोणितं स्नाय्वस्थिमज्जानमिति होम आत्मनः मुख
मृत्योरास्ये जुहोमीत्यंततः सर्व्वेषामेतत्प्रायश्चित्तं भ्रूणहत्या-
याः अथान्यं उक्तो नियमः । अग्नेत्वं पारयेति महाव्याहृतिभि-
र्जुहुयात् । कूष्माण्डैश्चाज्यं तद्रत एव वा ब्रह्महत्यासुरा-
पानस्तेयगुरुतल्पेषु प्राणायामैः स्नातोऽध्वर्षणं जपेत् ।
सममश्वमेशावभृयेन सावित्रौ वा सहस्रकृत्व आवर्तयन्
पुनीते हैवात्मानमंतर्ज्ज्जे वाधर्षणं त्रिरावर्तयन् पापेभ्या
मुच्यते मुच्यते ॥

इति गौतमस्मृतौ पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः २६.

तदाहुः कतिधावकीर्णो प्रविशतीति । मरुतः प्राणेनैदं
बलेन बृहस्पतिं ब्रह्मवर्चसेनामिमेवेतरेण संवेणेति । सोमा-
वास्यायां निश्यामिमुपसमाधाय प्रायश्चित्ताज्याहुतीर्जुहोति ।
कामावकीर्णोऽस्म्यवकीर्णोऽस्मि कामाय स्वाहा । कामाभि-
दुग्धोऽस्म्यभिदुग्धोऽस्मि कामकामाय स्वाहेति । समिधमा-
धायानुपर्गुक्ष्य यज्ञवास्तुं कृत्वोपस्थाय समाप्तिचिन्तित्येतया-
त्रिरुपतिष्ठेत । त्रय इमे लोका एषां लोकानामभिजित्या-
भिक्रांत्या इति । एतदेवैकेषां कर्माधिकृत्ययोः पूत इव
स्यात्स इत्थं जुहुयादित्थमनुमंत्रयेत् वरो दक्षिणेति ।
प्रायश्चित्तमविशेषात् अनार्जवपैशुनप्रतिषिद्धाचारानाद्यप्राश-
नेषु शूद्रायां च रेतः शिक्त्वा योनौ च दोषवति कर्मण्यभि-
सीधपूर्वेऽप्यब्लिगाभिरप उपस्पृशेद्गारुणीभिरन्यैर्वा पवित्रैः
प्रतिषिद्धवाङ्मनसयोरपचारे व्याहृतयः संख्याताः पंच सर्वा
स्वपो वाचामेदहश्च मादित्यश्च पुनातु स्वाहेति प्रातः रात्रिश्च
मा वरुणश्च पुनात्विति सायम् अष्टौ वा समिध आदध्या
देवकृतस्येति हुत्वैवं सर्वस्मादेनसो मुच्यते मुच्यते ॥

इति गौतमस्मृतौ षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः २७.

अथातः कृच्छ्रान् व्याख्यास्यामः । हविष्यान्प्रातराशान्
भुक्त्वा तिस्रो रात्रीर्नाशनीयात् । अथापरं व्यहं नक्तं भुंजीत ।
अथापरं व्यहं न कंचन याचेत । अथापरं व्यहमुपवसेत् ।
संतिष्ठेदहनि रात्रावासीत क्षिप्रकामः सत्यं वदेत् । अनार्यैर्न
संभाषेत । रौरवयौधाजिने नित्यं प्रयुंजीत । अनुसवनमुदको-
पस्पर्शनम् । आपोहिष्ठेति तिसृभिः पवित्रवतीभिर्मार्जयेत्
हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका इत्यष्टाभिः ॥ अथोदकतर्पणम्
ॐ नमो हमाय मोहमाय संहमाय धुन्वते तापसाय पुन-
र्वसवे नमो नमो मौज्यायौर्म्याय वसुविंदाय सर्वविंदाय नमो
नमः पाराय सुपाराय महापाराय पारयिष्णवे नमो नमो रुद्राय
पशुपतये महते देवाय व्यंबकायैकचरायाधिपतये हराय
शर्वायेशानाय शिवाय शांतायोग्राय वज्रिणे धृणिने कपर्दिने
नमो नमः सूर्याय दित्याय नमो नमो नीलग्रीवाय शिति-
कंठाय नमो नमः कृष्णाय पिंगलाय नमो नमो ज्येष्ठाय
श्रेष्ठाय वृद्धायेंद्राय हरिकेशयोद्धरेतसे नमो नमः सत्याय
पावकाय पावकवर्णाय नमो नमः कामाय कामरूपिणे नमो
नमो दीप्ताय दीप्तरूपिणे नमो नमस्तीक्ष्णाय तीक्ष्णरूपिणे
नमो नमः सौम्याय सुपुरुषाय महापुरुषाय अध्यमपुरुषायो,

तमपुरुषाय नमो नमो ब्रह्मचारिणे नमो नमश्चंद्रललाटाय
 नमो नमः कृत्तिवाससे पिनाकहस्ताय नमो नमः इति ।
 एतदेवादित्योपस्थानम् । एता एवाज्याहुतयः । द्वादशरात्र
 स्यान्ति चरुं श्रपयित्वैताभ्यो देवताभ्यो जुहुयात् । अग्नेय-
 स्वाहा सोमाय स्वाहा अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा इंद्राग्निभ्यामि-
 द्राय विध्वंभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मणे प्रजापतयेऽग्नये स्विष्टकृत इति
 ॥ अथ ब्राह्मणतर्पणम् ॥ एतेनैवातिकृच्छ्रो व्याख्यातः यावत्स
 कृदाददीत तावदश्नीयात् अब्रह्मस्तृतीयः सकृच्छ्रातिकृच्छ्रः
 प्रथमं चरित्वा शुचिः पूतः कर्मण्यो भवति । द्वितीयं चरित्वा
 यत्किंचिदन्यत् महापातकेभ्यः पापं कुहते तस्मात्प्रमुच्यते ।
 तृतीयं चरित्वा सर्वस्मादेनसो मुच्यते । अथैतांघ्रीन्
 कृच्छ्रान् चरित्वासर्वेषु स्नातो भवति सर्वदेवैर्ज्ञातो भवति
 यश्चैवं वेद यश्चैवं वेद ॥

इति गौतमस्मृतौ सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः २८.

अथातश्चांद्रायणं तस्योक्तो विधिः कृच्छ्रे वपनं व्रतं चरेत् ।
 श्वोभूतां पौर्णमासीमुपवसेत् । आप्यायस्व संते पयांसि
 नवोनव इति चैताभिस्तर्पणमाज्यहोमौ हविषश्चानुमंत्रणम्
 उपस्थानं चंद्रमस्यो यद्देवा देवहेडनमिति चतसृभिराज्यं जुहु-

यात् । देवकृतस्येति चांते समिद्धिः ॥ ॐ भूर्भुवः स्वस्तपः
 सत्यं यशः श्रीः रूपं गीरोजस्तेजः पुरुषो धर्मः शिव इत्यर्थे
 तैर्ग्रासानुमंत्रणं प्रतिमंत्रं मनसा नमः स्वाहेति वा सर्वग्रासः
 प्रमाणमास्याविकारेण चरुभैक्षसक्तुकणयाशकपयोदधिवृत-
 मूलफलोदकानि हवींष्युत्तरोत्तरं प्रशस्तानि पौर्णमास्यां
 पंचदशग्रासान् भुक्त्वैकापचयेनापरपक्षमश्नीयात् अमावास्या-
 यामुपोष्यैकोपचयेन पूर्वपक्षं, विपतिमेकेषाम् । एषचांद्रायणो
 मासो मासमेतमाप्त्वा विपापो विपाप्मा सर्वमेनो हंति
 द्वितीयमाप्त्वा दश पूर्वान्दशापरानात्मानं चैकविंशं पंक्तिश्च
 पुनाति संवत्सरं चाप्त्वा चंद्रमसः सलोकतामाप्नोत्याप्नोति ॥

इति गौतमस्मृतौ भाषाटीकायामष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः २९.

ऊर्ध्वं पितुः पुत्रा ऋक्थं भजेरन् निवृत्ते रजासि मातुर्जीवाति
 चेच्छति । ऊर्ध्वं वा पूर्वजस्येतरान्विभृयात् पितृवत् । विभागे
 तु धर्मवृद्धिं विंशतिभागो ज्येष्ठस्य मिथुनमुभयतोदंशुंक्तो
 वृषो गोवृषः काणखोरकूटखंजा मध्यमस्थानेकांश्चेत् हविर्धा-
 न्यायसी महमनोयुक्तं चतुष्पदां चैकैकं यवीपसः समं चेतरेत्
 सर्व्वं द्वयंशी वा पूर्वजः स्यात् । एकैकमितरेषाम् एकैकं वा
 काम्यं पूर्व्वः पूर्वो लभते दशतः पशूनामेकशफो द्विपदानां

वृषभोऽधिको ज्येष्ठस्य ऋषभषोडशा ज्यैष्ठिने यस्य समं
 वा ज्यैष्ठिने । येन यवीयसां प्रतिभातृ वा स्ववर्गे भागविशेषं
 पितोत्सृजेत् पुत्रिकामनपत्योऽग्निं प्रजापतिं चैष्टास्मदर्थमपे-
 त्यमिति संवाद्य अभिसंधिमात्रात्पुत्रिकेत्येकेषां तत्संशया-
 न्नोपयच्छेदभ्रातृकां पिण्डगोत्रर्षिसंबन्धा ऋक्यं भजेरन् ।
 स्त्री चानपत्यस्य बीजं वा लिप्सेत् । देवरवत्यामन्यतोऽ-
 जातमभागं स्त्रीधनं दुहितृणामप्रत्तानामप्रतिष्ठितानां च
 भगिनीशुल्कं सोदराणामूद्ध्वं मातुः पूर्वं चैकेसंसृष्टविभागः
 प्रेतानां ज्येष्ठस्य संसृष्टिनि प्रेते संसृष्टिऋक्यभाक् । विभक्तजः
 पित्र्यमेव स्वयमर्जितमवैद्येभ्यो वैद्यः कामं न दद्यात् अवैद्याः
 समं विभजेरन् पुत्रा औरसक्षेत्रजदत्तकृत्रिमगूढोत्पन्नापविद्धां
 ऋक्यंभाजः कानिनसहोढपौनर्भवपुत्रिकापुत्रस्वयंदत्तक्रीता
 गोत्रभाजः । चतुर्थीशिनश्चौरसाद्यभावे ब्राह्मणस्य ॥
 राजन्यापुत्रो ज्येष्ठो गुणसंपन्नस्तुल्यांशभाक् । ज्येष्ठांशही-
 नमन्यत् राजन्यावैश्यापुत्रसमवाये स यथा ब्राह्मणीपुत्रेण
 क्षत्रियाच्चेत् शूद्रापुत्रो व्यनपत्यस्य शुश्रूषुश्चेलभेत वृत्तिमूल-
 म्मेतवांसिविधिनां सवर्णापुत्रोऽप्यन्यायवृत्तो न लभेतेकष
 ब्राह्मणस्य श्रोत्रिया अनपत्यस्य ऋक्यं भजेरन् । राजेतरेषां
 जडक्लीबौ भर्तव्यौ । अपत्यं जडस्य भागार्हं शूद्रापुत्रवत्
 प्रतिलोमासूदकयोगक्षेमकृतात्रेष्वाविभागः स्त्रीषु च संयुक्ताः

अनाज्ञाते दशावरैः शिष्टैरूहवाद्भिः अलुब्धैः प्रशस्तं कार्यं
 चत्वारश्चतुर्णां पारगा वेदानां प्रागुत्तमास्त्रय आश्रमिणः
 पृथग्धर्मविदस्त्रय एतान् दशावरान् परिषदिति आचक्षते ।
 असंभवे चैतेषामश्रोत्रियो वेदवित् शिष्टो विप्रतिपत्तौ यदाह ।
 यतोऽयमप्रभावो भूतानां हिंसानुग्रहयोगेषु धर्मिणं विशेषेण
 स्वर्गलोकं धर्मविदाप्नोति ज्ञानाभिनिवेशाभ्यामिति धर्मो
 धर्मः ॥

इति श्रीगौतमस्मृतावेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इति श्रीगौतमस्मृतिः समाप्ता ॥ १६ ॥



श्रीः ।

अथ शातातपस्मृतिः १७.

प्रथमोऽध्यायः १ः

प्रायश्चित्तविहीनानां महापातकिनां नृणाम् ॥
नरकान्ते भवेज्जन्म चिह्नांकितशरीरिणाम् ॥ १ ॥
प्रतिजन्म भवेत्तेषां चिह्नं तत्पापसूचितम् ॥
प्रायश्चित्ते कृते याति पश्चात्तापवतां पुनः ॥ २ ॥
महापातकजं चिह्नं सप्त जन्मानि जायते ॥
उपपापोद्भवं पञ्च त्रीणि पापसमुद्भवम् ॥ ३ ॥
दुष्कर्मजा नृणां रोगा यान्ति चोपक्रमैः शमम् ॥
जपैः सुरार्चनैर्होमैर्दानैस्तेषां शमो भवेत् ॥ ४ ॥
पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये ॥
बाधते व्याधिरूपेण तस्य जप्यादिभिः शमः ॥ ५ ॥
कुष्ठं च राजयक्ष्मा च प्रमेहो ग्रहणी तथा ॥
मूत्रकृच्छ्राश्मरीकासा अतिसारभगन्दरौ ॥ ६ ॥
दुष्टव्रणं गंडमाला पक्षाघातोऽक्षिनाशनम् ॥
इत्येवमादयो रागा महापापोद्भवाः स्मृताः ॥ ७ ॥

जलोदरं यकृत्प्लीहाशूलरोगव्रणानि च ॥
 श्वासाजीर्णज्वरच्छर्दिभ्रममोहगलग्रहाः ॥ ८ ॥
 रक्तार्बुदविसर्पाद्या उपपापोद्भवा गदाः ॥
 दंडापतानकश्चित्रवपुःकम्पविचर्चिकाः ॥ ९ ॥
 वल्मीकपुंडरीकाद्या रोगाः पापसमुद्भवाः ॥
 अर्शआद्या नृणां रोगा अतिपापाद्भवन्ति हि ॥ १० ॥
 अन्ये च बहवो रोगा जायन्ते वर्णसंकरात् ॥
 उच्यन्ते च निदानानि प्रायश्चित्तानि वै क्रमात् ॥ ११ ॥
 महापापेषु सर्वं स्यात्तदर्थमुपपातके ॥
 दद्यात् पापेषु षष्ठांशं कल्प्यं व्याधिवलावलम् ॥ १२ ॥
 अथ साधारणं तेषु गोदानादिषु कथ्यते ॥
 गोदाने वत्सयुक्ता गौः सुशीला च पयस्विनी ॥ १३ ॥
 वृषदाने शुभोऽनडाञ्जुक्कांबरसकांचनः ॥
 निवर्तनानिभूदाने दश दद्याद्विजातये ॥ १४ ॥
 दक्षहस्तेन देडेन त्रिंशदण्डं निवर्तनम् ॥
 दश तान्येव गोचर्मं दत्त्वा स्वर्गे महीयते ॥ १५ ॥
 सुवर्णशतानिष्कं तु तदद्वाविंशप्रमाणतः ॥
 अश्वदाने मृदुश्लक्ष्णमश्वं सोपस्करं दिशेत् ॥ १६ ॥
 महिषीं माहिषे दाने दद्यात्स्वर्णायुधान्विताम् ॥
 दद्याद्भजं महादाने सुवर्णफलसंयुतम् ॥ १७ ॥

लक्षसंख्याहणं पुष्पं पदद्याद्देवतार्चने ॥
 दद्याद्द्विजसहस्राय मिष्टान्नं द्विजभोजने ॥ १८ ॥
 रुद्रं जपेल्लक्षपुष्पैः पूजयित्वा च त्र्यम्बकम् ॥
 एकादश जपेद्गुदान्दशांशं गुग्गुलैर्वृतैः ॥ १९ ॥
 हुत्वाभिषेचनं कुर्यान्मन्त्रैर्वरुणदेवतैः ॥
 शान्तिके गणशांतिश्च ग्रहशान्तिकपूर्वकम् ॥ २० ॥
 धान्यदाने शुभं धान्यं खारीषष्टिमितं स्मृतम् ॥
 वस्त्रदाने पट्टवस्त्रद्वयं कर्पूरसंयुतम् ॥ २१ ॥
 दशपंचाष्टचतुर उपवेश्य द्विजान् शुभान् ॥
 विधाय वैष्णवीं पूजां संकल्प्य निजकाम्यया ॥ २२ ॥
 धेनुं दद्याद्द्विजातिभ्यो दक्षिणां चापि शक्तिः ॥
 अलंकृत्य यथाशक्ति वस्त्रालंकरणैर्द्विजान् ॥ २३ ॥
 याचेद्दंडप्रमाणेन प्रायश्चित्तं यथोदितम् ॥
 तेषामनुज्ञया कृत्वा प्रायश्चित्तं यथाविधि ॥ २४ ॥
 पुनस्तान्परिपूर्णार्थानर्चयेद्विधिवद्द्विजान् ॥
 संतुष्टा ब्राह्मणा दद्युरनुज्ञां व्रतकारिणे ॥ २५ ॥
 जपच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं यज्ञकर्माणि ॥
 सर्वं भवति निश्छिद्रं यस्य चेच्छन्ति ब्राह्मणाः ॥ २६ ॥
 ब्राह्मणा यानि भाषन्ते मन्यन्ते तानि देवताः ॥
 सर्वदेवमया विप्रा न तद्वचनमन्यथा ॥ २७ ॥

उपवासो व्रतं चैव स्नानं तीर्थफलं तपः ॥
 विप्रैः सम्पादितं सर्वं सम्पन्नं तस्य तत्फलम् ॥२८॥
 सम्पन्नमिति यद्वाक्यं वदन्ति क्षितिदेवताः ॥
 प्रणम्य शिरसा धार्यमभिष्टोमफलं लभेत् ॥ २९ ॥
 ब्राह्मणा जंगमं तीर्थं निर्जलं सार्वकामिकम् ॥
 तेषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः ॥३०॥
 तेभ्योऽनुज्ञामभिप्राप्य प्रगृह्य च तथाशिषः ॥
 भोजयित्वा द्विजाञ्छक्त्या भुञ्जीत सह बन्धुभिः ॥३१॥
 इति शातातपस्मृतौ प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

ब्रह्महं नरकस्यान्ते पांडुकुष्ठी प्रजायते ॥
 प्रायश्चित्तं प्रकुर्वीत स तत्पातकशान्तये ॥ १ ॥
 चत्वारः कलशाः कार्याः पंचरत्नसमन्विताः ॥
 पंचपल्लवसंयुक्ताः सितवस्त्रेण संयुताः ॥ २ ॥
 अश्वस्थानादिमृद्युक्तास्तीर्थोदकसुपूरिताः ॥
 कषायपंचकोपेता नानाविधफलान्विताः ॥ ३ ॥
 सर्वौषधिसमायुक्ताः स्थाप्याः प्रतिदिशं द्विजैः ॥
 शोण्यमष्टदलं पद्मं मध्यकुम्भोपरि न्यसेत् ॥ ४ ॥

तस्योपरि न्यसेद्देवं ब्रह्माणं च चतुर्मुखम् ॥
 पलाद्धर्द्धिप्रमाणेन सुवर्णेन विनिर्मितम् ॥ ५ ॥
 अर्चेत्पुरुषसूक्तेन त्रिकालं प्रतिवासरम् ॥
 यजमानः शुभैर्गन्धैः पुष्पैर्धूपैर्यथाविधि ॥ ६ ॥
 पूर्वोदिकुम्भेषु ततो ब्राह्मणा ब्रह्मचारिणः ॥
 पठेयुः स्वस्ववेदांस्ते ऋग्वेदप्रभृतीञ्छनैः ॥ ७ ॥
 दशांशेन ततो होमो ग्रहज्ञांतिपुरःसरम् ॥
 मध्यकुण्डे विधातव्यो घृताक्तैस्तिलहेमभिः ॥ ८ ॥
 द्वादशाहमिदं कर्म समाप्य द्विजपुंगवः ॥
 तत्र पीठे यजमानमभिषिञ्चेद्यथाविधि ॥ ९ ॥
 ततो दद्याद्यथाशक्ति गोभूहेमतिलादिकम् ॥
 ब्राह्मणेभ्यस्तथा देयमाचार्य्याय निवेदयेत् ॥ १० ॥
 आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ॥
 प्रीताः सर्व्वेव्यपोहन्तु मम पापं सुदारुणम् ॥ ११ ॥
 इत्युदीर्य मुहुर्भक्त्या तमाचार्य क्षमापयेत् ॥
 एषं विधाने विहिते श्वेतकुष्ठी विशुद्ध्यति ॥ १२ ॥
 कुष्ठी गोवधकारी स्यान्नरकान्तेऽस्य निष्कृतिः ॥
 स्थापयेद्घटमेकन्तुपूर्वोक्तद्रव्यसंयुतम् ॥ १३ ॥
 रक्तचन्दनलिप्तांगं रक्तपुष्पांबरान्वितम् ॥
 रक्तकुम्भं तु तं कृत्वा स्थापयेद्दक्षिणां दिशम् ॥ १४ ॥

ताम्रपात्रं न्यसेत्तत्र तिलचूर्णेन पूरितम् ॥
 तस्योपरि न्यसेद्देवं हेमनिष्कमयं यमम् ॥ १५ ॥
 यजेत्पुरुषसूक्तेन पापं मे शाम्यतामिति ॥
 सामपारायणं कुर्यात्कलशे तत्र सामविद् ॥ १६ ॥
 दशांशं सर्षपैर्दुत्वा पावमान्यभिषेचने ॥
 विहिते धर्मराजानमाचार्याय निवेदयेत् ॥ १७ ॥
 यमोऽपि महिषारूढो दण्डपाणिर्भयावहः ॥
 दक्षिणाशापतिर्देवो मम पापं व्यपोहतु ॥ १८ ॥
 इत्युच्चार्य विसृज्यैनं मासं सद्भक्तिमाचरेत् ॥
 ब्रह्मगोवधयोरेषा प्रायश्चित्तेन निष्कृतिः ॥ १९ ॥
 पितृहा चेतनाहीनो मातृहान्धः प्रजायते ॥
 नरकांते प्रकुर्वीत प्रायश्चित्तं यथाविधि ॥ २० ॥
 प्राजापत्यानि कुर्वीत त्रिंशच्चैव विधानतः ॥
 व्रतान्ते कारयेन्नावं सौवर्णपलसम्मिताम् ॥ २१ ॥
 कुंभं रौप्यमयं चैव ताम्रपात्राणि पूर्ववत् ॥
 निष्कहेम्ना तु कर्तव्यो देवः श्रीवत्सलाञ्छनः ॥ २२ ॥
 षट्पञ्चमेन संवेष्ट्य पूजयेत्तं विधानतः ॥
 नावं द्विजाय तां दद्यात्सर्वोपस्करसंयुताम् ॥ २३ ॥
 वासुदेव जगन्नाथ सर्वभूताशयस्थित ॥
 पातकार्णवममं मां तारय प्रणतार्तिहृत् ॥ २४ ॥

इत्युदीर्य्य प्रणम्याथ ब्राह्मणाय विसर्जयेत् ॥
 अन्येभ्योऽपि यथाशक्ति विप्रेभ्यो दक्षिणां ददेत् ॥२५॥
 स्वसृधाती तु बधिरो नरकान्ते प्रजायते ॥
 मूको भ्रातृवधे चैव तस्थेयं निष्कृतिः स्मृता ॥ २६ ॥
 सोऽपि पापविशुद्धयर्थं चरेच्चांद्रायणव्रतम् ॥
 व्रतान्ते पुस्तकं दद्यात्सुवर्णपलसंयुतम् ॥ २७ ॥
 इमं भंनं समुच्चार्य ब्रह्मणीं तां विसर्जयेत् ॥
 सरस्वति जगन्मातः शब्दब्रह्मादिदेवते ॥ २८ ॥
 दुष्कर्मकरणात्पापात् पाहि मां परमेश्वरि ॥
 बालघाती च पुरुषो मृतवत्सः प्रजायते ॥ २९ ॥
 ब्राह्मणोद्वाहनं चैव कर्तव्यं तेन शुद्धये ॥
 श्रवणं हरिवंशस्य कर्तव्यं च यथाविधि ॥ ३० ॥
 महारुद्रजपं चैव कारयेच्च यथाविधि ॥
 षडंगैकादशै रुद्रै रुद्रः समभिधीयते ॥ ३१ ॥
 रुद्रैस्तथैकादशभिर्महारुद्रः प्रक्षीर्तितः ॥
 एकादशभिरेतैस्तु ह्यतिरुद्रश्च कथ्यते ॥ ३२ ॥
 जुहुयाच्च दशांशेन दूर्वयाऽयुतसंख्यया ॥
 एकादश स्वर्णनिष्काः प्रदातव्याः सदक्षिणाः ॥ ३३ ॥
 पलान्येकादश तथा दद्याद्वित्तानुसारतः ॥
 अन्येभ्योऽपि यथाशक्ति द्विजेभ्यो दक्षिणां दिशेत् ॥ ३४ ॥

स्तापयेद्दम्पतीन् पश्चान्मंत्रैर्वरुणदैवतैः ॥

आचार्याय प्रदेयानि वस्त्रालंकरणानि च ॥ ३५ ॥

गोत्रहा पुरुषः कुष्ठी निर्वशश्चोपजायते ॥

स च पापाविशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यशतं चरेत् ॥ ३६ ॥

व्रतान्ते मेदिनीं दत्त्वा शृणुयादथ भारतम् ॥ ३७ ॥

स्त्रीहन्ता चातिसारी स्यादश्वत्थान्नोपयेद्दश ॥

दद्याच्च शर्कराधेनुं भोजयेच्च शतं द्विजान् ॥ ३८ ॥

राजहा क्षयरोगी स्यादेषा तस्य च निष्कृतिः ॥

गोभूहिरण्यमिष्टान्नजलवस्त्रप्रदानतः ॥ ३९ ॥

घृतधेनुप्रदानेन तिलधेनुप्रदानतः ॥

इत्यादिना क्रमेणैव क्षयरोगः प्रशाम्यति ॥ ४० ॥

रक्तार्बुदी वैश्यहन्ता जायते स च मानवः ॥

प्राजापत्यानि चत्वारि सप्तधान्यानि चोत्सृजेत् ॥ ४१ ॥

दंडापतानकयुतः शूद्रहन्ता भवेन्नरः ॥

प्राजापत्यं सकृच्चैवं दद्याद्धेनुं सदक्षिणाम् ॥ ४२ ॥

कारूणां च वधे चैव रूक्षभावः प्रजायते ॥

तेन तत्पापशुद्ध्यर्थं दातव्यो वृषभः सितः ॥ ४३ ॥

सर्वकार्येष्वसिद्धार्थो गजघाती भवेन्नरः ॥

प्रासादं कारापित्वा तु गणेशप्रतिमां न्यसेत् ॥ ४४ ॥

गणनाथस्य मन्त्रं तु मन्त्री लक्षमितं जपेत् ॥
 कुलित्थशाकैः पूपैश्च गणशान्तिपुरस्सरम् ॥ ४५ ॥
 उष्ट्रे विनिहते चैव जायते विकृतस्वरः ॥
 स तत्पापविशुद्ध्यर्थं दद्यात्कर्पूरकं फलम् ॥ ४६ ॥
 अश्वे विनिहते चैव वक्रतुण्डः प्रजायते ॥
 शतं पलानि दद्याच्च चन्दनान्यधनुत्तये ॥ ४७ ॥
 महिषीघातने चैव कृष्णगुल्मः प्रजायते ॥
 खरे विनिहते चैव खररोमा प्रजायते ॥
 निष्कत्रयस्य प्रकृतिं संप्रदद्याद्विरण्मयीम् ॥ ४८ ॥
 तरक्षौ निहते चैव जायते केकरेक्षणः ॥
 दद्याद्रत्नमयीं धेनुं स तत्पातकशान्तये ॥ ४९ ॥
 शूकरे निहते चैव दन्तुरो जायते नरः ॥
 स दद्यात्तु विशुद्ध्यर्थं घृतकुंभं सदाक्षिणम् ॥ ५० ॥
 हरिणे निहते खंजः शृगाले तु विपादकः ॥
 अश्वस्तेन प्रदातव्यः सौवर्णपलनिर्मितः ॥ ५१ ॥
 अजाभिघातने चैव अधिकांगः प्रजायते ॥
 अजा तेन प्रदातव्या विचित्रवस्त्रसंयुता ॥ ५२ ॥
 उरभ्रे निहते चैव पांडुरोगः प्रजायते ॥
 कस्तूरिकापलं दद्याद्ब्राह्मणाय विशुद्ध्ये ॥ ५३ ॥
 मार्जारे निहते चैव पीतपाणिः प्रजायते ॥
 पारावतं ससौवर्णं प्रदद्यान्निष्कमात्रकम् ॥ ५४ ॥

शुकसारिकयार्घाते नरः स्वांलतवाग्भवेत् ॥
 स्रच्छास्त्रपुस्तकं दद्यात्स विप्राय सदाक्षिणम् ॥५५॥
 बकघाती दीर्घनासो दद्याद्ग्रां धवलप्रभाम् ॥
 काकघाती कर्णहीनो दद्याद्ग्रामसितप्रभाम् ॥५६॥
 हिंसायां निष्कृतिरियं ब्राह्मणे समुदाहृता ॥
 तदर्धार्द्धप्रमाणेन क्षत्रियादिष्वनुक्रमात् ॥ ५७ ॥
 इति शातातपीये कर्मविपाके हिंसाप्रायश्चित्तविधिर्नाम
 द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

सुरापः श्यावदन्तः स्यात्प्राजापत्यन्तरं तथा ॥
 शर्करायास्तुलाः सप्त दद्यात्पापविशुद्धये ॥ १ ॥
 जपित्वा तु महारुद्रं दशांशं जुहुयात्तिलैः ॥
 ततोऽभिषेकः कर्तव्यो मंत्रैर्वरुणदेवतैः ॥ २ ॥
 मद्यपो रक्तपित्ती स्यात्स दद्यात्सर्पिषो घटम् ॥
 मधुनोऽर्धघटं चैव सहिरण्यं विशुद्धये ॥ ३ ॥
 अभक्ष्यभक्षणे चैव जायते कृमिकोदरः ॥
 यथावत्तेन शुद्धयर्थमुपोष्यं भीष्मपंचकम् ॥४॥
 उदक्या वीक्षितं भुक्त्वा जायते कृमिलोदरः ॥
 गोमूत्रयावकाहारस्त्रिरात्रेणैवशुद्ध्यति ॥ ५ ॥

भुक्त्वा चास्पृश्य संस्पृष्टं जायते कृमिलोदरः ॥
 त्रिरात्रं समुपोष्याथ स तत्पापात्प्रमुच्यते ॥ ६ ॥
 परान्नविघ्नकरणादजीर्णमभिजायते ॥
 लक्षहोमं स कुर्वीत प्रायश्चित्तं यथाविधि ॥ ७ ॥
 मन्दोदरानिर्भवति सति द्रव्ये कदन्नदः ॥
 प्राजापत्यत्रयं कुर्याद्भोजयेच्च शतं द्विजान् ॥ ८ ॥
 विषदः स्याच्छर्दिरोगी दद्याद्दश पयस्विनीः ॥
 मार्गहा पादरोगी स्यात्सोऽन्नदानं समाचरेत् ॥ ९ ॥
 पिशुनो नरकस्यांते जायते श्वासकासवान् ॥
 घृतं तेन प्रदातव्यं सहस्रफलसम्मितम् ॥ १० ॥
 धूर्तोऽपस्माररोगी स्यात्स तत्पापविशुद्धये ॥
 ब्रह्मकूर्चमयीं धेनुं दद्याद्वाथ सदक्षिणाः ॥ ११ ॥
 शूली परोपतोपन जायते तत्प्रमोचने ॥
 सोऽन्नदानं प्रकुर्वीत तथा रुद्रं जपेन्नरः ॥ १२ ॥
 दावाग्निदायकश्चैव रक्तातीसारवान्भवेत् ॥
 तेनोदपानं कर्तव्यं रोपणीयस्तथा वटः ॥ १३ ॥
 सुरालये जले वापि शकृन्मूत्रं करोति यः ॥
 गुदरोगो भवेत्तस्य पापरूपः सुदारुणः ॥ १४ ॥
 मासं सुरार्चनेनैव गोदानद्वितयेन तु ॥
 प्राजापत्येन चैकेन शाम्यन्ति गुदजा रुजः ॥ १५ ॥

गर्भपातनजा रोगा यकृत्प्लीहजलोदराः ॥

तेषां प्रशमनार्थाय प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम् ॥ १६ ॥

एतेषु दद्याद्विप्राय जलधेनुं विधानतः ॥

सुवर्णरूप्यताम्राणां पलत्रयसमन्विताम् ॥ १७ ॥

प्रतिमाभंगकारी च ह्यप्रतिष्ठः प्रजायते ॥

संवत्सरत्रयं सिंचेदश्वत्थं प्रतिवासरम् ॥ १८ ॥

उद्वाहयेत्तमश्वत्थं स्वगृह्योक्तविधानतः ॥

तत्र संस्थापयेद्देवं विघ्नराजं सुपूजितम् ॥ १९ ॥

दुष्टवादी खंडितः स्यात्स वै दद्याद्विजातये ॥

रूप्यं पलद्वयं दुग्धं घटद्वयसमन्वितम् ॥ २० ॥

खल्लीटः परनिन्दावान्धेनुं दद्यात्सकांचनाम् ॥

परोपहासकृत्काणः स गां दद्यात्समौक्तिकाम् ॥ २१ ॥

सभायां पक्षपाती च जायते पक्षघातवान् ॥

निष्कत्रयमितं हेम स दद्यात्सत्यवर्तिनाम् ॥ २२ ॥

इति शातातपीये कर्मविपाके प्रकीर्णप्रायश्चित्तं नाम

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

कुलघ्नो नरकस्यान्ते जायते विप्रहेमहृत् ॥

स तु स्वर्णशतं दद्यात्कृत्वा चांदायणत्रयम् ॥ १ ॥

औदुम्बरी ताम्रचौरो नरकान्ते प्रजायते ॥
 प्राजापत्यं स कृत्वात्र ताम्रं पलशतं दिशेत् ॥ २ ॥
 कांस्यहारी च भवति पुंडरीकसमन्वितः ॥
 कांस्यं पलशतं दद्यादलंकृत्य द्विजातये ॥ ३ ॥
 रीतिहृत्पिंगलाक्षः स्यादुपोष्य हरिवासरम् ॥
 रीतिं पलशतं दद्यादलंकृत्य द्विजं शुभम् ॥ ४ ॥
 मुक्ताहारी च पुरुषो जायते पिंगमूर्द्धजः ॥
 मुक्ताफलशतं दद्यादुपोष्य सविधानतः ॥ ५ ॥
 त्रपुहारी च पुरुषो जायते नेत्ररोगवान् ॥
 उपोष्य दिवसं सोऽपि दद्यात्पलशतं त्रपु ॥ ६ ॥
 सीसहारी च पुरुषो जायते शीर्षरोगवान् ॥
 उपोष्य दिवसं दद्याद्घृतधेनुं विधानतः ॥ ७ ॥
 दुग्धहारी च पुरुषो जायते बहुमूत्रकः ॥
 स दद्याद्दुग्धधेनुं च ब्राह्मणाय यथाविधि ॥ ८ ॥
 दधिचौर्येण पुरुषो जायते मदवान्यतः ॥
 दधिधेनुः प्रदातव्या तेन विप्राय शुद्धये ॥ ९ ॥
 मधुचारेस्तु पुरुषो जायते नेत्ररोगवान् ॥
 स दद्यान्मधुधेनुं च समुपोष्य द्विजातये ॥ १० ॥
 इक्षोर्विकारहारी च भवेदुदरगुल्मवान् ॥
 गुडधेनुः प्रदातव्या तेन तद्दोषशान्तये ॥ ११ ॥

लोहहारी च पुरुषः कर्बुरांगः प्रजायते ॥

लोहं पलशतं दद्यादुपोष्य स तु वासरम् ॥ १२ ॥

तैलचरैस्तु पुरुषो भवेत्कंडूवादिपीडितः ॥

उपोष्य स तु विप्राय दद्यात्तैलघटद्वयम् ॥ १३ ॥

आमान्नहरणाच्चैव दन्तहीनः प्रजायते ॥

स दद्यादश्विनौ हेमनिष्कद्वयविनिर्मितौ ॥ १४ ॥

पक्वान्नहरणाच्चैव जिह्वारोगः प्रजायते ॥

गायत्र्याः स जपेष्टक्षं दशांशं जुहुयात्तिलैः ॥ १५ ॥

फलहारी च पुरुषो जायते व्रणितांगुलिः ॥

नानाफलानामयुतं स दद्याच्च द्विजन्मने ॥ १६ ॥

तांबूलहरणाच्चैव श्वेतौष्ठः संप्रजायते ॥

स दक्षिणां प्रदद्याच्च विद्रुमस्य द्वयं वरम् ॥ १७ ॥

शाकहारी च पुरुषो जायते नीललोचनः ॥

ब्राह्मणाय प्रदद्याद्वै महानीलमणिद्वयम् ॥ १८ ॥

एन्दमूलस्य हरणाद्धस्वपाणिः प्रजायते ॥

देवतायतनं कार्य्यमुद्यानं तेन शक्तितः ॥ १९ ॥

सौगन्धिकस्य हरणाद्दुर्गन्धाङ्गः प्रजायते ॥

स लक्षमेकं पद्मानां जुहुयाज्जातवेदासि ॥ २० ॥

दारुहारी च पुरुषः स्विन्नपाणिः प्रजायते ॥

स दद्याद्विदुषे शुद्धौ काश्मीरजपलद्वयम् ॥ २१ ॥

विद्यापुस्तकहारी च किल मूकः प्रजायते ॥
 न्यायेतिद्वाप्तं दद्यात्स ब्राह्मणाय सदक्षिणम् ॥ २२ ॥
 वस्त्रहारी भवेत्कुष्ठी संप्रदद्यात्प्रजापतिम् ॥
 हेमनिष्कमितं चैव वस्त्रयुग्मं द्विजातये ॥ २३ ॥
 ऊर्णाहारी लोमशः स्यात्स दद्यात्कंबलान्वितम् ॥
 स्वर्णनिष्कमितं हेम वह्निं दद्याद्विजातये ॥ २४ ॥
 पट्सूत्रस्य हरणान्त्रिलोमा जायते नरः ॥
 तेन धेनुः प्रदातव्या विशुद्ध्यर्थं द्विजन्मने ॥ २५ ॥
 औषधस्यापहरणे सूर्यावर्तः प्रजायते ॥
 सूर्यायाध्यः प्रदातव्यो माषं देयं च कांचनम् ॥ २६ ॥
 रक्तवस्त्रप्रवालादिहारी स्याद्रक्तवातवान् ॥
 सवस्त्रां महिषीं दद्यान्मणिरागसमन्विताम् ॥ २७ ॥
 विप्ररत्नापहारी चाप्यनपत्यः प्रजायते ॥
 तेन कार्यं विशुद्ध्यर्थं महारुद्रजपादिकम् ॥ २८ ॥
 मृतवत्सोदितः सर्वो विधिरत्र विधीयते ॥
 दशांशहोमः कर्तव्यो पलाशेन यथाविधि ॥ २९ ॥
 देवस्वहरणाच्चैव जायते विविधो ज्वरः ॥
 ज्वरो महाज्वरश्चैवं रौद्रो वैष्णव एव च ॥ ३० ॥
 ज्वरे रौद्रं जपेत्कर्णे महारुद्रं महाज्वरे ॥
 अतिरौद्रं जपेद्दौद्रे वैष्णवे तद्वयं जपेत् ॥ ३१ ॥

नानाविधद्रव्यचौरो जायते ग्रहणीयुतः ॥

तेनान्नोदकवस्त्राणि हेम देयं च शक्तितः ॥ ३२ ॥

इति शातातपीये कर्मविपाके स्तेयप्रायश्चित्तं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

मातृगामी भवेद्यस्तु लिंगं तस्य विनश्यति ॥

चांडालीगमने चैव हीनकोशः प्रजायते ॥ १ ॥

तस्य प्रतिक्रियां कर्तुं कुंभमुत्तरतो न्यसेत् ॥

कृष्णवस्त्रसमाच्छ्रन्नं कृष्णमाल्यविभूषितम् ॥ २ ॥

तस्योपरि न्यसेद्देवं कांस्यपात्रे धनेश्वरम् ॥

सुवर्णनिष्कषट्केन निर्मितं नरवाहनम् ॥ ३ ॥

यजेत्पुरुषसूक्तेन धनदं विश्वरूपिणम् ॥

अथर्ववेदविद्विप्रो ह्याथर्वणं समाचरेत् ॥ ४ ॥

सुवर्णपुष्टिकां कृत्वा निष्कविंशतिसंख्यया ॥

दद्याद्विप्राय संपूज्य निष्पापोऽहमिति ब्रुवन् ॥ ५ ॥

निधीनामधिपो देवः शंकरस्य प्रियः सखा ॥

सौम्याशाधिपतिः श्रीमान्मम पापं व्यपोहतु ॥ ६ ॥

इमं मंत्रं समुच्चार्य आचार्याय यथाविधि ॥

दद्याद्देवं हीनकोशे लिंगनाशे विशुद्धये ॥ ७ ॥

गुरुजायाभिगमनान्मूत्रकृच्छ्रः प्रजायते ॥
 तेनापि निष्कृतिः कार्या शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ ८ ॥
 स्थापयेत्कुम्भमेकं तु पश्चिमायां शुभे दिने ॥
 नीलवस्त्रसमाच्छन्नं नीलमाल्यविभूषितम् ॥ ९ ॥
 तस्योपरि न्यसेद्देवं ताम्रपात्रे प्रचेतसम् ॥
 सुवर्णनिष्कषट्केन निर्मितं यादसांपतिम् ॥ १० ॥
 यजेत्पुरुषसूक्तेन वरुणं विश्वरूपिणम् ॥
 सामविद्ब्राह्मणस्तत्र सामवेदं समाचरेत् ॥ ११ ॥
 सुवर्णपुत्तिकां कृत्वा निष्कविंशतिसंख्यया ॥
 दद्याद्विप्राय संपूज्य निष्पापोऽहमिति ब्रुवन् ॥ १२ ॥
 यादसामधिपो देवो विश्वेषामपि पावनः ॥
 संसाराब्धौ कर्णधारो वरुणः पावनोऽस्तु मे ॥ १३ ॥
 इमं मन्त्रं समुच्चार्य आचार्याय यथाविधि ॥
 दद्याद्देवमलंकृत्य मूत्रकृच्छ्रप्रशान्तये ॥ १४ ॥
 स्वसुतागमने चैव रक्तकुष्ठं प्रजायते ॥
 भगिनीगमने चैव पीतकुष्ठं प्रजायते ॥ १५ ॥
 तस्य प्रतिक्रियां कर्तुं पूर्वतः कलशं न्यसेत् ॥
 पीतवस्त्रसमाच्छन्नं पीतमाल्यविभूषितम् ॥ १६ ॥
 तस्योपरि न्यसेत्स्वर्णपात्रे देवं सुरेश्वरम् ॥

सुवर्णनिष्कषट्केन निर्मितं वज्रधारिणम् ॥ १७ ॥
 यजेत्पुरुषसूक्तेन वासवं विश्वरूपिणम् ॥
 यजुर्वेदं तत्र साम ऋग्वेदं च समाचरेत् ॥ १८ ॥
 सुवर्णपुत्तिकां कृत्वा सुवर्णदशकेन तु ॥
 दद्याद्विप्राय संपूज्य निष्पापोऽहमिति ब्रुवन् ॥ १९ ॥
 देवानामधिपो देवो वज्री विष्णुनिकेतनः ॥
 शतयज्ञः सहस्राक्षः पापं मम निकृन्ततु ॥ २० ॥
 इमं मन्त्रं समुच्चार्य आचार्याय यथाविधि ॥
 दद्यादेवं सहस्राक्षं सपापस्यापनुत्तये ॥ २१ ॥
 भ्रातृभायाभिगमनाद्गलत्कुष्ठं प्रजायते ॥
 स्ववधूगमने चैव कृष्णकुष्ठं प्रजायते ॥ २२ ॥
 तेन कार्यविशुद्ध्यर्थं प्रागुक्तस्यार्द्धमेव हि ॥
 दशांशहोमः सर्वत्र घृताक्तैः क्रियते तिलैः ॥ २३ ॥
 यदगम्याभिगमनाज्जायते ध्रुवमंडलम् ॥
 कृत्वा लोहमयीं धेनुं पलषष्टिप्रमाणतः ॥ २४ ॥
 कार्पासभाण्डसंयुक्तां कांस्यदोहां सवत्सिकाम् ॥
 दद्याद्विप्राय विधिवदिमं भंत्रमुदीरयेत् ॥
 सुरभी वैष्णवी माता मम पापं व्यपोहतु ॥ २५ ॥
 तपस्विनीसंगमने जायते चाश्मरीगदः ॥
 स तु पापविशुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ २६ ॥

दद्याद्विषाय विदुषे मधुधेनुं यथोदिताम् ॥

तिलद्रोणशतं चैव हिरण्येन समन्वितम् ॥ २७ ॥

पितृष्वस्रभिगमनादक्षिणांशवणी भवेत् ॥

तेनापि निष्कृतिः कार्या अजादानेन शक्तितः ॥ २८ ॥

मातुलान्यां तु गमने पृष्ठकुब्जः प्रजायते ॥

कृष्णाजिनप्रदानेन प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ २९ ॥

मातृष्वस्रभिगमने वामांगे व्रणवान्भवेत् ॥

तेनापि निष्कृतिः कार्या सम्यग्दासप्रदानतः ॥ ३० ॥

मृतभार्याभिगमने मृतभार्यः प्रजायते ॥

तत्पातकविशुद्ध्यर्थं द्विजभेकं विवाहयेत् ॥ ३१ ॥

सगोत्रस्त्रीप्रसंगेन जायते च भगन्दरः ॥

तेनापि निष्कृतिः कार्या महिषीदानयत्नतः ॥ ३२ ॥

तपस्विनीप्रसंगेन प्रमेही जायते नरः ॥

मासं रुद्रजपः कार्यो दद्याच्छ्रवत्या च काञ्चनम् ॥ ३३ ॥

दीक्षितस्त्रीप्रसंगेन जायते दुष्टरक्तदृक् ॥

स पातकविशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ३४ ॥

स्वजातिजायागमने जायते हृदयवणी ॥

तत्पापस्य विशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ३५ ॥

पशुयोनौ च गमने मूत्राघातः प्रजायते ॥

तिलपात्रद्वयं चैव दद्यादात्मविशुद्ध्ये ॥ ३६ ॥

अश्वयोनौ च गमनाद्गुदस्तंभः प्रजायते ॥
 सहस्रकमलस्नानं मासं कुर्याच्छिवस्य च ॥ ३७ ॥
 एते दोषा नराणां स्युर्नरकांते न संशयः ॥
 स्त्रीणामपि भवन्त्येते तत्तत्पुरुषसंगमात् ॥ ३८ ॥
 इति श्रीशातातपीये कर्मविपाकेऽगम्यागमनप्रायश्चित्तं
 नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अश्वशूकरशृंग्याद्रिदुमादिशकटेन च ॥
 भृग्वाभिदारुशस्त्राश्मविषोद्वन्धनजैर्मृताः ॥ १ ॥
 व्याघ्राहिगजभूपालचोरवैरिवृकाहताः ॥
 काष्ठशल्यमृता ये च शौचसंस्कारवर्जिताः ॥ २ ॥
 विषूचिकान्नकवलदधातीसारतो मृताः ॥
 डाकिन्यादिग्रहेर्ग्रस्ता विद्युत्पातहताश्च ये ॥ ३ ॥
 अस्पृश्या अपवित्राश्च पतिताः पुत्रवर्जिताः ॥
 पंचत्रिंशत्प्रकारैश्च नाप्नुवन्ति गतिं मृताः ॥ ४ ॥
 पित्राद्याः पिंडभाजः स्युस्त्रयो लेपभुजस्तथा ॥
 ततो नांदीमुखाः प्रोक्तास्त्रयोऽप्यश्रुमुखास्त्रयः ॥ ५ ॥
 द्वादशैते पितृगणास्तर्पिताः सन्ततिप्रदाः ॥
 गतिहीनाः सुतादीनां सन्ततिं नाशयन्ति ते ॥ ६ ॥

दश व्याघ्रादिनिहता गर्भं निघ्नन्त्यमी क्रमात् ॥
 द्वादशास्त्रादिनिहता आकर्षन्ति च बालकम् ॥ ७ ॥
 विषादिनिहता घ्नन्ति दशसु द्वादशस्वपि ॥
 वर्षेकबालकं कुर्यादनपत्योऽनपत्यताम् ॥ ८ ॥
 व्याघ्रेण हन्यते जन्तुः कुमारीगमनेन च ॥
 विषदश्चैव सर्पेण गजेन नृपदुष्टकृत् ॥ ९ ॥
 राज्ञा राजकुमारघ्नश्चोरेण पशुहिंसकः ॥
 वैरिणा मित्रभेदी च बकवृत्तिवृकेण तु ॥ १० ॥
 गुरुघाता च शय्यायां मत्सरी शौचवर्जितः ॥
 द्रोही संस्काररहितः शुना निक्षेपहारकः ॥ ११ ॥
 नरो विहन्यतेऽरण्ये शूकरेण च पाशिकः ॥
 कृमिभिः कृत्तिवासाश्च कृमिणा च निकृन्तनः ॥ १२ ॥
 शृंगिणा शंकरद्रोही शकटेन च सूचकः ॥
 भृगुणा मेदिनीचौरो वह्निना यज्ञहानिकृत् ॥ १३ ॥
 दवेन दक्षिणाचौरः शस्त्रेण श्रुतिनिन्दकः ॥
 अश्मना द्विजनिन्दाकृद्विषेण कुमतिप्रदः ॥ १४ ॥
 उद्धंधनेन हिंस्रः स्यात्सेतुभेदी जलेन तु ॥
 द्रुमेण राजदन्तिहृदतिसारेण लोहहत् ॥ १५ ॥
 डाकिन्याद्यैश्च म्रियते स दर्पकार्यकारकः ॥
 अनध्यायेऽप्यध्यायान् म्रियते विद्युता तथा ॥ १६ ॥

अस्पृश्यस्पर्शसंगी च वान्तर्माश्रित्य शास्त्रहृत् ॥
 पतितो मदविक्रेताऽनपत्यो द्विजवस्त्रहृत् ॥ १७ ॥
 अथ तेषां क्रमेणैव प्रायश्चित्तं विधीयते ॥
 कारयेन्निष्कमात्रं तु पुरुषं प्रेतरूपिणम् ॥ १८ ॥
 चतुर्भुजं दंडहस्तं महिषासनसंस्थितम् ॥
 पिष्टैः कृष्णातिलैः कुर्यात्पिंडं प्रस्थप्रमाणतः ॥ १९ ॥
 मध्वाज्यशर्करायुक्तं स्वर्णकुंडलसंयुतम् ॥
 अकालमूलं कलशं पंचपल्लवसंयुतम् ॥ २० ॥
 कृष्णवस्त्रसमाच्छन्नं सर्वौषधिसमान्वितम् ॥
 तस्योपरि न्यसेद्देवं पात्रं धान्यफलैर्युतम् ॥ २१ ॥
 सप्तधान्यं तु सफलं तत्र तत् सफलं न्यसेत् ॥
 कुंभोपरि च विन्यस्य पूजयेत्प्रेतरूपिणम् ॥ २२ ॥
 कुर्यात्पुरुषमूक्तेन प्रत्यहं दुग्धतर्पणम् ॥
 षडंगं च जपेद्बुद्धं कलेश तत्र वेदवित् ॥ २३ ॥
 यममूक्तेन कुर्वीत यमपूजादिकं तथा ॥
 गायत्र्याश्चैव कर्तव्यो जपः स्वात्मविशुद्धये ॥ २४ ॥
 गृहशांतिकपूर्वं च दशांशं जुहुयात्तिलैः ॥
 अज्ञातनामगोत्राय प्रेताय सतिलोदकम् ॥ २५ ॥
 प्रदद्यात्पितृतीर्थेन पिंडं मन्त्रमुदीरयेत् ॥
 इमं तिलमयं पिंडं मधुसर्पिःसमान्वितम् ॥ २६ ॥

ददामि तस्मै प्रेताय यः पीडां कुरुते मम ॥
 सजलान्कृष्णकलशांस्तिलपात्रसमन्वितान् ॥ २७ ॥
 द्वादश प्रेतमुद्दिश्य दद्यादेकं च विष्णवे ॥
 ततोऽभिषिचेदाचार्यो दम्पती कलशोदकैः ॥ २८ ॥
 शुचिर्वरायुधधरो मंत्रैर्वरुणदैवतैः ॥
 यजमानस्ततो दद्यादाचार्याय स दक्षिणाम् ॥ २९ ॥
 ततो नारायणबलिः कर्तव्यः शास्त्रनिश्चयात् ॥
 एष साधारणविधिरगतीनामुदाहृतः ॥ ३० ॥
 विशेषस्तु पुनर्ज्ञेयो व्याघ्रादिनिहतष्वपि ॥
 व्याघ्रेण निहते प्रेते परकन्यां विवाहयेत् ॥ ३१ ॥
 सर्पदंशे नागबलिर्देयः सर्वेषु कांचनम् ॥
 चतुर्निष्कमितं हेम गजं दद्याद्गजैर्हतं ॥ ३२ ॥
 राज्ञा विनिहतं दद्यात्पुरुषं तु हिरण्यमयम् ॥
 चोरेण निहते धेनुवैरिणा निहते वृषम् ॥ ३३ ॥
 वृकेण निहते दद्याद्यथाशक्ति च कांचनम् ॥
 शय्यामृते प्रदातव्या शय्या तूलीसमन्विता ॥ ३४ ॥
 निष्कमात्रसुवर्णस्य विष्णुना समधिष्ठिता ॥
 शौचहाने मृते चैव द्विनिष्कस्वर्णजं हरिम् ॥ ३५ ॥
 संस्कारहीने च मृते कुमारं च विवाहयेत् ॥
 शुना हते च निक्षेपं स्थापयेन्निजशक्तितः ॥ ३६ ॥

शूकरेण हते दद्यान्महिषं दक्षिणान्वितम् ॥
 कृमिभिश्च मृते दद्याद्गोधूमात्रं द्विजातये ॥ ३७ ॥
 शृंगिणा च हते दद्याद्गव्यं वस्त्रसंयुतम् ॥
 शकटेन मृते दद्यादश्वं सोपस्कुरान्वितम् ॥ ३८ ॥
 भृगुपाते मृते चैव प्रदद्याद्धान्यपर्वतम् ॥
 अभिना निहते दद्यादुपानहं स्वशक्तितः ॥ ३९ ॥
 देवेन निहते चैव कर्तव्या सद्ने सभा ।
 शस्त्रेण निहते दद्यान्महिषीं दक्षिणान्विताम् ॥ ४० ॥
 अश्मना निहते दद्यात्सवत्सां गां पयस्विनीम् ॥
 विषेण च मृते दद्यान्मेदिनीं क्षेत्रसंयुताम् ॥ ४१ ॥
 उद्ध्वं धनमृते चापि प्रदद्याद्गां पयस्विनीम् ॥
 मृते जलेन वरुणं हैमं दद्यात्त्रिनिष्ककम् ॥ ४२ ॥
 वृक्षं वृक्षहते दद्यात्सौवर्णं स्वर्णसंयुतम् ॥
 अतिसारमृते लक्षं सावित्र्याः संयतो जपेत् ॥ ४३ ॥
 डाकिन्यादिमृते चैव जपेद्बुद्धं यथोचितम् ॥
 विद्युत्पातेन निहते विद्यादानं समाचरेत् ॥ ४४ ॥
 अस्पर्शं च मृते कार्यं वेदपारायणं तथा ॥
 सञ्छास्त्रपुस्तकं दद्याद्धान्तमाश्रित्य संस्थिते ॥ ४५ ॥
 पातित्येन मृते कुर्यात्प्राजापत्यानि षोडश ॥
 मृते चापत्यराहिते कृच्छ्राणां नवतिं चरेत् ॥ ४६ ॥

निष्कत्रयमितं स्वर्णं दद्यादश्वं हयाहते ॥

कपिना निहते दद्यात् कपिं कनकनिर्मितम् ॥ ४७ ॥

विषूचिकामृते स्वादु भोजयेच्च शतं द्विजान् ॥

तिलधेनुः प्रदातव्या कंठेऽन्नकवले मृते ॥ ४८ ॥

केशरोगमृते चापि अष्टौ कृच्छ्रान्समाचरेत् ॥

एवं कृते विधानेन विदध्यादौर्द्ध्वदेहिकम् ॥ ४९ ॥

ततः प्रेतत्वनिर्मुक्ताः पितरस्तर्पितास्तथा ॥

दद्युः पुत्रांश्च पौत्रांश्च आयुरारोग्यसंपदः ॥ ५० ॥

इति शातातपप्रोक्तो विपाकः कर्मणामयम् ॥

शिष्याय शरभंगाय विनयात्परिपृच्छते ॥ ५१ ॥

इति शातातपीये कर्मविपाके अगतिप्रायश्चित्तं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

इति शातातपस्मृतिः समाप्ता ॥ १७ ॥



अथ वशिष्ठस्मृतिः १८.

प्रथमोऽध्यायः १.



अथातः पुरुषनिश्चयसार्थं धर्मजिज्ञासा ॥ ज्ञात्वा
चानुतिष्ठन्धार्मिकः प्रशस्यतमो भवति लोके प्रेत्य च ।
विहितो धर्मः । तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम् । दक्षिणेन
हिमवत उत्तरेण विध्यस्य ये धर्मा ये चाचारास्ते सर्वे
प्रत्येतव्याः न ह्यन्ये प्रतिलोमकल्पधर्माः । एतदार्यावर्तमि-
त्याचक्षते । गंगायमुनयोरंतराप्येके । यावद्वा कृष्णमृगो
वचरति तावद्ब्रह्मवर्चसामांत ।

अथापि भाल्लविनो निदाने गाथामुदाहरन्ति—
पश्चात्तिसधुविहारिणीसूर्यस्योदयनं पुनः ॥

यावत्कृष्णोऽभिधावति तावद्ब्रह्मवर्चसम् ॥

त्रैविद्यवृद्धा यं ब्रूयुर्धर्मं धर्मविदो जनाः ॥

पवने पावने चैवं सर्वतो नात्र संशयः ॥ इति ॥

देशधर्मजातिधर्मकुलधर्मान् श्रुत्यभावादब्रवीन्मनुः ।

सूर्याभ्युदितः सूर्याभिनिर्मुक्तः कुनखी श्यावदंतः परिवित्तिः

परिवेत्ता अग्रदिधिषूर्दिधिषूपतिर्वीरहा ब्रह्मघ्न इत्येत

एनस्विनः । पंचमहापातकान्याचक्षते । गुरुतल्पं सुरापानं भ्रूण-
हत्यां ब्राह्मणसुवर्णहरणं पतितसंप्रयोगं च ब्राह्मे वा योनेन वा॥
अथाप्युदाहरंति ॥ संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन् ॥
याजनाध्यापनाद्यौनादन्नपानासनादपि ॥

अथाप्युदाहरंति । विद्या प्रनष्टा पुनरभ्युपैति जातिप्रणाशो
त्विह सर्वनाशः ॥ कुलापदेशेन हयोऽपि पूज्यस्तस्मात्कुलीनां
स्त्रियमुद्धहंतीति ॥

त्रयो वर्णा ब्राह्मणस्य वशे वर्तेरन् तेषां ब्राह्मणो धर्मं च
ब्रूयात्तं राजा चानुतिष्ठेत् राजा तु धर्मेणानुशासत् षष्ठं षष्ठं
धनस्य हरेत् । अन्यत्र ब्राह्मणात् । इष्टापूर्तस्य तु षष्ठमंशं
भजति ॥ इति ह ब्राह्मणो वेदमाद्यं करोति । ब्राह्मण
आपद उद्धरति । तस्माद्ब्राह्मणोऽनाद्यः सोमोऽस्य राजा
भवतीतीह प्रेत्य चाभ्युदयिकमिति ह विज्ञायते ॥

इति श्रीवशिष्ठे धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः । त्रयो वर्णा
द्विजातयो ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याः । तेषां मातुरग्रेऽधिजननं
द्वितीयं मौजीबन्धनं तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य
उच्यते । वेदप्रदानात्पितेत्याचार्यमाचक्षते ।

अथाप्युदाहरन्ति । द्वयमिह वै पुरुषस्य रेतो ब्राह्मणस्योर्ध्वं
नाभेरर्वाचीनं मन्येत तद्यदूर्ध्वं नाभेस्तेनास्यानौरसी प्रजा
जायते । यदुपनयति जनन्यां जनयति यत्साधु करोति । अथ
यदर्वाचीनं नाभेस्तेनास्यौरसी प्रजा जायते तस्माच्छ्रोत्रि-
यमनूचानमपृज्योऽसीति न वदन्तीति हारितः ॥

अथाप्युदाहरन्ति ॥ नह्यस्य विद्यते कर्म किञ्चिदामौजीवं-
धनात् ॥ वृत्त्या शूद्रः समो ज्ञेयो यावद्वेदेन जायते ॥
अन्यत्रोदककर्म स्वधापितृसंयुक्तेभ्यः ॥

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेषधिष्टेऽहमास्मि ।
असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया धीर्यवती तथा स्याम् ॥
य आवृणात्यवितथेन कर्मणा बहुदुःखं कुर्वन्नमृतं संप्रयच्छत् ।
तं मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न द्रुह्येत्कतमच्च नाह ॥
अध्यापिता ये गुरुं नाद्रियन्ते विप्रा वाचा मनसा कर्मणावा ।
यथैव ते न गुरोर्भोजनीयास्तथैव तान्न भुनक्ति श्रुतं तत् ॥
यमेव विद्याः शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम् ।
यस्तेन द्रुह्येत्कतमच्च नाह तस्मै मा ब्रूय निधिपायब्रह्मन्निति ॥
दहत्यग्निर्यथा कक्षं ब्रह्म त्वद्दमनादृतम् । न ब्रह्म तस्मै
प्रब्रूयाच्छक्यमानमकृतत इति ॥ षट्कर्माणि ब्राह्मणस्य
अध्ययनमध्यापनं यजनं याजनं दानं प्रतिग्रहश्चेति । त्रीणि
राजन्यस्याध्ययनं यजनं दानं शस्त्रेण च प्रजापालनं

स्वधर्मस्तेन जीवेत् । एतान्येव त्रीणि वैश्यस्य कृषिवाणिज्यपा-
शुपाल्यकुसीदानि च । एतेषां परिचर्या शूद्रस्य अनियता
वृत्तिः अनियतकेशवेशाः सर्वेषां मुक्तशिखावर्जम्, अजीवंतः
स्वधर्मेणान्यतरां पापीयसीं वृत्तिमातिष्ठेरन्नतु कदाचिज्ज्याय-
सीम् । वैश्यजीविकामास्थाय पण्येन जीवेताऽश्मलवणम-
पण्यं पाषाणकोपक्षौमाजिनानि च तांतवस्य रक्तं सर्वं च
कृतान्नं पुष्पमूलफलानि च गंधरसा उदकं च ओषधीनां रसः
सोमश्च शस्त्रं विषं मांसं च क्षीरं सविकारमपस्त्रपु जतु
सीसं च ।

अथाप्युदाहरन्ति-सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन
च ॥ व्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयात् ॥

ग्राम्यपशूनामेकशफाः कोशिनश्च सर्वे चारण्याः पशवो
वयांसि दंष्ट्रिणश्च । धान्यानां तिलानाहुः ।

अथाप्युदाहरन्ति-भोजनाभ्यंजनादानाद्यदन्यत्कुरुते तिलैः ॥
कृमिभूतः स विष्टायां पितृभिः सह मज्जाति ॥ कामं वा स्वयं
कृष्योत्पाद्य तिलान्विक्रीणीरन् । तस्मादाभ्यामनस्योताभ्य
प्राक्प्रातराशात्कृषिः स्यात् । निदाघेऽपः प्रयच्छेन्नाति
पीडनलांगलं प्रवीरवसुशेषः सोमपित्सरु ॥ तदुद्रपतिगाम-
विम्प्रफर्व्यश्चपीवरीम्प्रस्था वदथवाहनम् ॥ लांगलं प्रवीरवद्दीरं

१ अत्रैवमवोपलभ्यते पाठोऽर्थस्तु सुज्ञैरूह्यः,

मनुष्यवदनलुब्धतामुशे कल्पाणी ह्यस्य नासिको दृश्यति
दूरेपविद्वति सोमपिष्टरु सोमो ह्यस्य प्राप्नोति ॥ तत्सह
तदुद्वपति गामरिमा अजानश्चनखरखरोष्ट्राणां च शफवांश्च
दर्शनीयां पीवरीं कल्पाणीं प्रथमयुवतीं कथं हि लांगलमुद्र-
पेदन्यत्र धान्यविक्रयात् ॥

रस रसैः समतो हीनतो वा निमातव्या नत्वेव लवणं रसैः ॥
तिलतंडुलपक्वान्नं विद्यान्मनुष्याश्च विहिताः परिवर्तकेन ।

ब्राह्मणराजन्यौ वार्धुषान्नं नाद्याताम् ॥ अथाप्युदाहरन्ति-
समर्थं धान्यमुद्धृत्य महार्थं यः प्रयच्छति ॥ स वै वार्धुषिको
नाम ब्रह्मवादिषु गर्हितः ॥ वार्धुषि ब्रह्महंतारं तुलया
समतोलयत् ॥ अतिष्ठद्भ्रूणहा कोट्यां वार्धुषिर्न्यक् पपात ह ॥
कामं वा परिलुप्तकृत्याय पापीयसे दद्याद्विगुणं हिरण्यं
त्रिगुणं धान्यं धान्येनैव रसा व्याख्याताः ।

पुष्पमूलफलानि च तुलाधृतमष्टगुणम् । अथाप्युदाहरन्ति-
राजाऽनुमतभावेन द्रव्यवृद्धिं विनाशयेत् ॥ पुनः राजाभिषेकेण
द्रव्यवृद्धिं च वर्जयेत् ॥ द्विकं त्रिकं चतुष्कं च पंचकं च शते
स्मृतम् ॥ मासस्य वृद्धिं गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः ॥ वशि-
ष्ठवचने प्रोक्तां वृद्धिं वार्धुषिके शृणु ॥ पंचमाषस्तु विंशत्या-
मेवं धर्मो न हीयते ॥

इतिवासिष्ठे धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अश्रोत्रियाननुवाक्या अनमयः शूद्रधर्माणो भवंति नानृ-
ग्ब्राह्मणो भवति ।

मानवं चात्र श्लोकमुदाहरति—

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ॥ स जीवन्नेव
शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ न वणिङ् न कुसीदजीधी-
ये च शूद्रप्रेषणं कुर्वति न स्तेनो न चिकित्सकः ॥ अव्रता
ह्यनधीयाना यत्र भैक्षचराद्विजाः ॥ तं ग्रामं दंडयेद्राजा
चोरभक्तप्रदो हि सः ॥

चत्वारोऽपि त्रयो वाऽपि यद्व्यूर्वेदपारगाः ॥ स धर्म इति
विज्ञेयो नेतरेषां सहस्रशः ॥ अव्रतानाममंत्राणां जातिमात्रो-
पजीविनाम् ॥ सहस्रशः समेतानां पर्षत्त्वं नैव विद्यते ॥

यद्वदंत्यन्यथा भूत्वा मूर्खा धर्ममताद्विदः ॥

तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तृष्वनुगच्छति ॥

श्रोत्रियायैव देयानि हव्यकव्यानि नित्यशः ॥ अश्रोत्रियाय
दंतैस्तु तृप्तिं नापांति देवताः ॥ यस्य चैव गृहे मूर्खो दूरे चैव
बहुश्रुतः ॥ बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः
ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते ॥ ज्वलंतमग्निमुत्स-
ज्य न हि भस्मनि हूयते ॥ यश्च काष्ठमयो हस्ती यश्च चर्ममा-
मृगः ॥ यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥

विद्वद्भोज्यानि चान्नानि मूर्खा राष्ट्रेषु भुञ्जते ॥

तदन्नं नाशमायाति महच्चापि भयं भवेत् ॥

अप्रज्ञायमानवित्तं योऽधिगच्छेद्राजा तद्वरेत् अधिगन्त्रे
षष्ठमंशं प्रदाय ब्राह्मणश्चेदाधिगच्छेत् षट्कर्मसु वर्तमानो न
राजा हरेत् ।

आततायिनं हत्वा नात्र त्राणेच्छोः किञ्चित्किल्बिषमाहुः ।
षड्विधास्त्वाततायिनः । अथाप्युदाहरन्ति-अग्निदो गरदश्चैव
शस्त्रपाणिर्धनापहः ॥ क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते आततायिनः ॥
आततायिनमायांतमपि वेदांतपारगम् ॥ जिघांसंतं
जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत् ॥ स्वाध्यायिनं कुले जातं
यो हन्यादाततायिनम् ॥ न तेन भ्रूणहा स स्यान्मन्युस्तं
मृत्युमृच्छति ॥

त्रिणाचिकेतः पंचामिस्त्रिसुपर्णवान् चतुर्मेधा वाजसनेयी
षडंगविद्वद्ब्रह्मदेयानुसंतानश्छंदोगो ज्येष्ठसामगो मंत्रब्राह्मणवित्
यस्य धर्मानधीते यस्य च पुरुषमांतृपितृवंशः श्रोत्रियो
विज्ञायते विद्वांसः स्नातकाश्चेति पंक्तिपावनाः । चातुर्विद्यो
विकल्पी च अंगविद्धर्मपाठकः ॥ आश्रमस्थास्त्रयो मरुपाः
परिषत्स्याद्दशावरा ॥ उपनीय तु यः कृत्स्नं वेदमध्यापयेत्स
आचार्यः । यस्त्वेकदेशं स उपाध्यायश्च वेदांगानि ।

आत्मत्राणे वर्णसंकरे वा ब्राह्मणवैश्यौ शस्त्रमाददीया
ताम् ॥ क्षत्रियस्य तु तान्नत्यमेव रक्षणाधिकारात् ।

प्राग्बोदग्वासीनः प्रक्षाल्य पादौ पाणी चामणिवन्धनात् ।
अंगुष्ठमूलस्योत्तरतो रेखा ब्राह्मं तीर्थं तेन त्रिराचामदशब्दवत्
द्विः प्रमृज्यात् खान्यद्विः संस्पृशेत् मूर्द्धन्यपो निनयेत् सव्ये
च पाणौ व्रजंस्तिष्ठन् शयानः प्रणतो वा नाचामेत् । हृदयं-
गमाभिरद्भिरबुद्बुदाभिरफेनाभिर्ब्राह्मणः कंठगाभिः क्षत्रियः
शुचिः वैश्योऽद्विः प्राशिताभिस्तु स्त्रीशूद्रौ स्पृष्टाभिरेव च ।
पुत्रद्वाराऽपि यागास्तर्पणानि स्युः ।

न वर्णगन्धरसदुष्टाभिर्याश्च स्युरशुभागमाः । न मुख्या
विप्रुष उच्छिष्टं कुर्वन्ति अनंगलिष्टाः । सुप्त्वा भुक्त्वा
पीत्वा स्नात्वा चाचांतः पुनराचामेत् । वासश्च परिधाय
ओष्ठौ संस्पृश्य यत्रालोमकौ न श्मश्रुगतौ लेपो दंतवहंतस-
क्तेषु यच्चां तर्मुखे भवेत् ॥ आचांतस्यावशिष्टं स्यान्निगिरन्नेव
तच्छुचिः । परानथाचामयतः पदौ वा विप्रुषो गताः ॥ भूम्यां
तास्तु समाः प्रोक्तास्ताभिर्नोच्छिष्टभागभवेत् ॥ प्रचरन्नभ्यव-
हार्येषु उच्छिष्टं यदि संस्पृशेत् ॥ भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्य-
माचांतः प्रचरेत्पुनः ॥ यद्यन्मीमांस्यं स्यात्तत्तदद्विः संस्पृशेत् ।

श्वहताश्च मृगा वन्याः पातितं च खगैः फलम् ॥ बालै
रनुपविद्धान्तः स्त्रीभिराचरितं च यत् ॥ परिसंख्याय तान्सर्वा

ञ्जुचीनाह प्रजापतिः ॥ प्रसारितं च यत्पण्यं ये दोषाः
स्त्रीमुखेषु च ॥ मशकैर्मक्षिकाभिश्च नीली येनोपहन्यते ॥
क्षितिस्थाश्चैव या आपो गवां प्रीतिकराश्च याः ॥ परिसंख्याय
तान्सर्वाञ्जुचीनाह प्रजापतिरिति ॥

लेपं गंधापकर्षणम् । शौचमभेद्यलिप्तस्य । अद्भिर्मृदा च
तैजसमृण्मयदारव तांतवानां भस्मपरिमार्जनं प्रदाहतक्षणनि-
र्णजनानि तैजसवदुपलमणीनां मणिवच्छंखशुक्तीनां दारव-
दस्थनां रज्जुविदलचर्मणां चैलवच्छौचम् । गोवालैः फलच-
मसानां गौरसर्षपकल्केन क्षौमजानाम् ।

भूम्यास्तु संमार्जनप्रोक्षणोपलेपनोल्लेखनैर्यथास्थाने दाष-
विशेषात्प्राजापत्यमुपैति ।

अथाप्युदाहरन्ति-खननाद्दहनाद्द्वर्षाद्गोभिराक्रमणादपि ॥
चतुर्भिः शुद्ध्यते भूमिः पंचमाच्चोपलेपनात् ॥ रजसा शुद्ध्यते
नारी नदी वेगेन शुद्ध्यति ॥ भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं ताम्र-
मग्नेन शुद्ध्यति ॥ मद्यैर्मूत्रैः पुरीषैर्वा श्लेष्मपूयाश्रुशोणितैः ॥
संस्पृष्टं नैव शुद्ध्येत पुनः पाकेन मृण्मयम् ॥ अद्भिर्गात्राणि
शुद्ध्यन्तीत मनः सत्येन शुद्ध्यति ॥ विद्यातपोभ्यां भूतात्मा
बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥ अद्भिरेव कांचनं पूयत तथा राजतम् ।

अंगुलिकनिष्ठिकामूले दैवं तीर्थम् । अंगुल्यग्रे मानुषम् ।
पाणिमध्य आग्नेयम् । प्रदेक्षिन्यंगुष्ठयोरंतरा पित्र्यम् । रोचंत

इति सायंप्रातरशनान्यभिपूजयेत् । स्वदितमिति पित्र्येषु ।
संपन्नमित्याभ्युदायिकेषु ॥

इति वशिष्ठे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

प्रकृतिविशिष्टं चातुवर्ण्यं संस्कारविशेषाच्च । ब्राह्मणोऽस्य
मुखमासीद्ब्राह्म राजन्यः कृतः ॥ ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां
शूद्रो अजायत ॥ इति निगमो भवति गापत्या छंदसा
ब्राह्मणमसृजत् त्रिष्टुभा राजन्यं जगत्या वैश्यं न केनचि-
च्छंदसा शूद्रमित्यसंस्कार्यो विज्ञायते ॥ त्रिष्वेव निवास-
स्थात्सर्वेषां सत्यमक्रोधो दानमहिंसा प्रजननं च ।

पितृदेवतातिथिपूजायां पशुं हिंस्यात् । मधुपर्के च यज्ञे च
पितृदैवतकर्मणि ॥ अत्रैव च पशुं हिंस्यान्नान्यथेत्यब्रवी-
न्मनुः ॥ नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित्
नच प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्माद्यागे वधोऽवधः ॥ अथा-
ब्राह्मणाय वा राजन्याय वा अभ्यागताय वा महोक्षे वा
महाजं वा पचेदेवमस्यातिथ्यं कुर्वतीति ॥

उदकक्रियामशौचै च द्विवर्षात्प्रभृति मृत उभयं कुर्यात्
दंतजननादित्येके । शरीरमग्निना संयोज्य । अनवेक्षमा-
आपोऽभ्यवयंति ततस्तत्रस्था एष सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्य-

मुदकक्रियां कुर्वन्ति । अयुग्मा दक्षिणामुखाः । पितृणां वा
एषा दिक् या दक्षिणा । गृहान्ब्रजित्वा स्वस्तरे अहमश्नन्त
आसीरन् । अशक्तौ क्रीतोत्पन्नेन वर्तन् ।

दशाहं शावमाशौचं सर्पिण्डेषु विधीयते । मरणात्प्रभृति-
दिवसगणना । सर्पिण्डता सप्तपुरुषं विज्ञायते । अप्रत्तानां
स्त्रीणां त्रिपुरुषं त्रिदिनं विज्ञायते । प्रत्तानामितरे कुर्वीरन्
तांश्च तेषां जननेऽप्येवमेव निपुणां शुद्धिमिच्छतां मातापित्रो-
र्बीजानि निमित्तत्वात् ।

अथाप्युदाहरन्ति । नाशौचं सूतके पुंसः संसर्गं चेन्न
गच्छति । रजस्तत्राशुचि ज्ञेयं तच्च पुंसि न विद्यते ॥ ब्राह्मणे
दशरात्रेण पक्षमात्रेण भूमिपः ॥ वैश्यो विंशतिरात्रेण शूद्रो
मासेन शुद्ध्यति ॥ अशौचे यस्तु शूद्रस्य सूतके वापि भुक्त-
वान् ॥ स गच्छेन्नरकं घोरं तिर्यग्योनिषु जायते ॥ अनिर्द-
शोऽप्येकान्नं नियोगाद्यस्तु भुक्तवान् ॥ कृमिर्भूत्वा स देहांते
तद्विद्यामुपजीवति ॥

द्वादशमासान्द्वादशार्द्धमासान्वाऽनश्नन्संहितामधीयानः
पूतो भवतीति विज्ञायते ऊनद्विवर्षे प्रेते गर्भपतने वा सर्पि-
ण्डानां त्रिरात्रमाशौचम् । सद्यः शौचमिति गौतमः । देशान्तरस्थे
प्रेते ऊर्ध्वं दशाहाञ्चैकरात्रमाशौचम् । आहिताग्निश्चेत्प्रवस-
न्म्रियते पुनः संस्कारं कृत्वा शववच्छौचमिति गौतमः ।

भूपयतिश्मशानरजस्वलासूतिकाशुचीनुपस्पृश्य सशिरा
अभ्युपेयादपः ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

अस्वतंत्रा स्त्री पुरुषप्रधाना अनमिरनुदक्या च अनृतमिति
विज्ञायते ।

अथाप्युदाहरंति । पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ॥
पुत्राश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति ॥ तस्या भर्तुः
रभिचार उक्तः प्रायश्चित्तरहस्येषु ।

मासि मासि रजो ह्यासां दुष्कृतान्यपकर्षति ॥ त्रिरात्र
रजस्वलाऽशुचिर्भवति । सा नाञ्ज्यान्नाभ्यञ्ज्यान्नाप्सु स्नायात् ।
अथः शयीत दिवा न स्वप्यात् नाग्निं स्पृशेत् न रज्जुं प्रमृजेन्न
दंतान्धावयेन्न मांसमश्नीयात् न गृहान्निरीक्षयेत् न हसेन्न
किञ्चिदाचरेन्नांजलिना जलं पिबेत् न खर्परेण वा न लोहि-
तायसेन वा विज्ञायते ह्रींद्रिस्त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रं हत्वा पाप्मना
गृहीतो मन्युत इति । तं सर्वाणि भूतान्यभ्याक्रोशन्
भ्रूणहन् भ्रूणहन् भ्रूणहन्निति स स्त्रिय उपाधावत् अस्यैमे
ब्रह्महत्यायै तृतीयभागं गृह्णातीति गस्वैवमुवाच ता अश्रुवन्

किन्नोऽभूदिति सोऽब्रवीद्वरं वृणीध्वमिति ता अब्रुवन्तृतौ
 प्रजां विदामह इति कामं मा विजानीमोऽरुं भवाम इति
 यथेच्छया आप्रसवकालात्पुरुषेण सह मैथुनभावेन संभवाम
 इति च एषोऽस्माकं वरस्तथेद्रेणोक्तास्ताः प्रतिजगृहुः तृतीयं
 भ्रूणहत्यायाः सैषा भ्रूणहत्या मासि मास्याविर्भवति ।
 तस्माद्रजस्वलान्नं नाश्नीयात् । अतश्च भ्रूणहत्याया
 एवैतद्रूपं प्रतिमुच्यस्ते कंचुकमिव ।

तदाद्ब्रह्मवादिनः । अंजनाभ्यंजनमेवास्या न प्रतिग्राह्यं
 तद्धि स्त्रियोऽन्नमिति । तस्मात्तस्यास्तत्र न च मन्यन्ते आचारा
 याश्च योषित इति संयमुपयाति । उदकयायास्त्वासते तेषां
 ये च केचिदनग्नयो गृहस्थाः श्रोत्रियाः पापाः सर्वे ते
 शूद्रधर्मिणः ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

आचारः परमो धर्मः सर्वेषामिति निश्चयः ॥ हीनाचार-
 परीतात्मा प्रेत्य चेह च नश्यति ॥ १ ॥ नैनं प्रयाति न ब्रह्म
 नाग्निद्वान्नं न दक्षिणा ॥ हीनाचाराश्रितं भ्रष्टं तारयन्ति कथं-
 चन ॥ २ ॥ आचारहीनं न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह
 षड्भिरंगैः ॥ छंदास्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति नीडं शकुन्ता इव

तीपतप्ताः ॥ ३ ॥ आचारहीनस्य तु ब्राह्मणस्य वेदाः षडंगा
अखिलाः सपक्षाः ॥ कां प्रीतिमुत्थापयितुं समर्था अधस्य
दारा इव दर्शनीयाः ॥ ४ ॥ नैनं छेदांसि वृजिनात्तारयन्ति
मायाविनं मायया वर्तमानम् ॥ तत्राक्षरे सम्यगधीयमाने
पुनाति तद्ब्रह्म यथावदिष्टम् ॥ ५ ॥ दुराचारो हि पुरुषो लोके
भवति निन्दितः ॥ दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव
च ॥ ६ ॥ आचारः फलते धर्ममाचारः फलते धनम् ॥
आचाराच्छ्रूयमाप्नोति आचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ ७ ॥ सर्व-
लक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः ॥ श्रद्धधानोऽनसूयश्च शतं
वर्षाणि जीवति ॥ ८ ॥

आहारनिर्हारविहारयोगाः सुसंवृता धर्माविदा तु कार्याः ॥
वाग्बुद्धिवीर्याणि तपस्तथैव धनायुषी गुप्ततमे तु कार्ये ॥ ९ ॥
उभे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः ॥ रात्रौ कुर्याद-
क्षिणस्थ एवं ह्यायुर्न हीयते ॥ १० ॥ प्रत्यग्निं प्रति सूर्यं च
प्रति गां प्रति च द्विजम् ॥ प्रति सोमोदकं संध्यां प्रज्ञा
नश्यति मेहतः ॥ ११ ॥ न नद्यां मेहनं कार्यं न भस्मनि न
गोमये ॥ न वा कृष्टे न मार्गे च नोत्ते क्षेत्रे न शाद्वले ॥ १२ ॥
छायायामंधकरे च रात्रावहनि वा द्विजः ॥ यथासुखमुखः
कुर्यात्प्राणबाधभयेषु च ॥ १३ ॥ उद्धृताभिरद्भिः कार्यं कुर्या-
त्तानमनुद्धृताभिरपि ॥ आहरेन्मृत्तिकां विप्रः कूलात्ससि-

कतां तथा ॥ १४ ॥ अंतर्जले देवगृहे वल्मीके मूषिकस्थले ॥
 कृतशौचावशिष्टा च न ग्राह्याः पंच मृत्तिकाः ॥ १५ ॥
 एका लिंगे करे तिस्र उभाभ्यां द्वे तु मृत्तिके ॥ पंच पाने
 दशैकस्मिन्नुभयोः सप्तमृत्तिकाः ॥ १६ ॥ एतच्छौचं गृह-
 स्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः ॥ वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतीनां तु
 चतुर्गुणम् ॥ १७ ॥

अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्तं वानप्रस्थस्य षोडश ॥ द्वात्रिंशच्च
 गृहस्थस्य अमितं ब्रह्मचारिणः ॥ १८ ॥ अन्नद्वान्ब्रह्मचारी
 च आहिताग्निश्च ते त्रयः ॥ भुञ्जाना एव सिद्धयन्ति नैष
 सिद्धिरनश्नताम् ॥ १९ ॥ तपोदानोपहारेषु व्रतेषु नियमेषु
 च ॥ इज्याध्ययनधर्मेषु यो नासक्तः स निष्क्रियः ॥ २० ॥

योगस्तपो दमो दानं सत्यं शौचं दया श्रुतम् ॥ विद्या
 विज्ञानमास्तिक्यमेतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥ २१ ॥ सर्वत्र दातां
 श्रुतिपूर्णकर्णा जितेंद्रियाः प्राणिवधे निवृत्ताः ॥ प्रतिग्रहे
 संकुचिता गृहस्थास्ते ब्राह्मणास्तारयितुं समर्थाः ॥ २२ ॥

असूयकः पिशुनश्चैव कृतघ्नो दीर्घरोषकः ॥ चत्वारः
 कर्मचाण्डाला जन्मतश्चापि पंचमः ॥ २३ ॥ दीर्घवैरमसूयां
 च असत्यं ब्रह्मदूषणम् ॥ पैशुन्यं निर्दयत्वं च जानीयाच्छुद्र-
 लक्षणम् ॥ २४ ॥

किञ्चिद्वेदमयं पात्रं किञ्चित्पात्रं तपोमयम् ॥

पात्राणामपि तत्पात्रं शूदान्नं यस्य नोदरे ॥ २५ ॥

शूदान्नरसपुष्टांग अधीयानोऽपि नित्यञ्च ॥ नित्यं द्रुत्वा
यजित्वापि गतिमूर्ध्वा न विदति ॥ २६ ॥ शूदान्नेनोदरस्थेन
यः कश्चिन्म्रियते द्विजः ॥ स भवेच्छूकरो ग्राम्यस्तस्य वा
जायते कुले ॥ २७ ॥ शूदान्नेन तु भुक्तेन मैथुनं योऽभिः
गच्छति ॥ यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा न च स्वर्गार्हिको भवेत् ॥

स्वाध्यायाढ्यं योनिमित्रं प्रज्ञातं चैतन्यस्थं पापभीरुं
बहुज्ञम् ॥ स्त्रीयुक्तान्नं धार्मिकं गोशरण्यं व्रतैः क्षातं तादृशं
पात्रमाहुः ॥ २९ ॥

आमपात्रे यथा न्यस्तं क्षीरं दधि घृतं मधु ॥ विनश्ये-
त्पात्रदीर्घल्यात्तच्च पात्रं रसाश्च ते ॥ ३० ॥ एवं गां च हिरण्यं
च वस्त्रमश्वं महीं तिलान् ॥ अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति
दारुवत् ॥ ३१ ॥

नांगं नखं च वादित्रं कुर्यान्नचापोऽजलिना पिबेत् ॥ न
पादेन न पाणनी वा राजानमभिहन्यात् । न जलेन जलं
नेष्टकाभिः फलानि पातयेत् न फलेन फलं न कल्कपुटको
भवेत् । न म्लेच्छभाषां शिक्षेत् ।

अथाप्युदाहरन्ति । न पाणिपादचपलो न नेत्रचपलो
भवेत् ॥ न चांगचपलो विप्र इति शिष्टस्य गोचरः ॥ पारं

पर्यागतो येषां वेदः सपरिवृंहणः ॥ ते शिष्टा ब्राह्मणा ज्ञेयाः
 श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः ॥ यन्न संतं नचासंतं नासंतं न बहुश्रुतम् ॥
 न सुवृत्तं न दुर्वृत्तं वेद कश्चित्स ब्राह्मण इति ॥
 इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

चत्वार आश्रमा ब्रह्मचारिगृहस्थवानप्रस्थपरिव्राजकाः ।
 तेषां वेदमधीत्य वेदौ वा वेदान्वाऽविशीर्णब्रह्मचर्योऽपनिक्षे-
 प्तुमावसेत् ब्रह्मचार्याचार्यं परिचरेत् आशरीरविभेक्षणात् ।
 आचार्यं प्रमृते अग्निं परिचरेत् । विज्ञायते हि तवाग्निराचार्यं
 इति । संपतवाक्चतुर्थषष्ठाष्टमकालभोजी भैक्षमाचरेत् ।
 गुर्वधीनो जटिलः शिखाजटो वा गुरुं गच्छंतमनुगच्छेत् ।
 आर्क्षानं चानुतिष्ठेत् । शयानं चासीन उपाविशेत् । आहूता-
 ध्यायी सर्वभैक्ष्यं निवेद्य तदनुज्ञया भुंजीत खट्वाशयनदंतप्र-
 क्षालनाभ्यजनवर्जस्तिष्ठेत् । अहनि रात्रावासीत त्रिः कृत्वा
 ऽभ्युपेयादपोऽभ्युपेयादपः ॥

इति वाशिष्ठे धर्मशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

गृहस्थो विनीतक्रोधहर्षो गुरुणानुज्ञातः स्नात्वाऽसमानार्था-
 मस्पृष्टभैथुनां यवीयसी सदृशीं भार्यां विंदेत् । पंचमीं मातृ-

बन्धुभ्यः सप्तमीं पितृबन्धुभ्यः । वैवाह्यमग्निमिध्यात् । साय-
मागतमतिथिं नावरुंध्यात् । नास्यानश्नन् गृहे वसेत् । यस्य
नाश्नाति वासार्थो ब्राह्मणो गृहमागतः ॥ सुकृतं तस्य
यत्किञ्चित्सर्वमाशाय गच्छति ॥ एकरात्रं तु निवसन्नतिथि-
ब्राह्मणः स्मृतः ॥ अनित्यं हि तिथिर्यस्मात्तस्मादतिथिरुच्ये-
ते ॥ नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं सांगतिकं तथा ॥ काले प्राप्ते
त्वकाले वा नास्यानश्नन् गृहे वसेत् ॥

श्रद्धाशीलोऽस्पृहालुरलमग्न्याधेयाय नानाहिताग्निः स्यात् ।
अलं च सोमपानाय नासोमयाजी स्यात् । युक्तः स्वाध्याये
प्रजनने यज्ञे च गृहेष्वभ्यागतं प्रत्युत्थानासनशयनवाग्भिः
सूनृताभिर्मानयेत् । यथाशक्ति चात्रेण सर्वभूतानि ।

गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः॥चतुर्णामाश्रमाणां
हि गृहस्थस्तु विशिष्यते ॥ यथा नदीनदाः सर्वे समुद्रे यांति
संस्थितिम् ॥ एषमाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यांति संस्थितिम् ॥
यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवंति जंतवः ॥ एवं गृहस्थमा-
श्रित्य सर्वे जीवंति भिक्षवः ॥ नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती
नित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जी ॥ ऋतौ गच्छन्विधवच्च जुह्वन्न
ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात् ब्रह्मलोकादिति ॥

इति वशिष्ठे धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

वानप्रस्थो जटिलश्चीराजिनवासा ग्राम च न विशेत् । न
 फालकृष्टमधितिष्ठेत् । अकृष्टं मूलफलं संचिन्वीत । ऊर्ध्वरेताः
 क्षमाशयो मूलफलभैक्षेणाश्रमागतमतिथिमर्चयेत् । दद्यादेव
 न प्रतिगृह्णीयात् । त्रिषवणमुदकमुपस्पृशेत् । श्रावणकेनाग्नि-
 माधायाहिताग्निः स्याद्वृक्षमूलिकः ऊर्ध्व षड्भ्यो मासेभ्यो-
 ऽनग्निरनिकेतो दद्याद्देवपितृमनुष्येभ्यः स गच्छेत्स्वर्गमानं-
 त्यमानंत्यम् ॥

इति वाशिष्ठे धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

परिव्राजकः सर्वभूताभयदाक्षिणां दत्त्वा प्रतिष्ठेत् ॥
 अथाप्थुदाहरंति । अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा चरति यो द्विजः ॥
 तस्यापि सर्वभूतेभ्यो न भयं जातु विद्यते ॥ अभयं सर्वभूतेभ्यो
 दत्त्वा यस्तु विवर्तते ॥ हंति जातानजातांश्च प्रतिगृह्णाति
 यस्य च ॥ संन्यसेत्सर्वकर्माणि वेदमेकं न संन्यसेत् ॥
 वेदसंन्यासतः शूद्रस्तस्माद्वेदं न संन्यसेत् ॥ एकाक्षरं परं ब्रह्म
 प्राणायामः परं तपः ॥ उपवासात्परं भैक्षं दया दानादि-
 शिष्यते ॥

मुंडोऽमप्रत्वपरिमहः सप्तागाराण्यसंकल्पितानि चरेद्भैक्ष्यम् ।
विधूमे सन्नमुसले एकंशाटपारिवृतोऽजिनेन वा गोप्रलूनैस्तृणै-
र्वेष्टितशरीरः स्थंडिलशाय्यनित्यां वसतिं वसेत् । तथा ग्रामांते
देवगृहे शून्यागारे वृक्षमूले वा मनसा ज्ञानमधीयमानः अस्-
प्यनित्यो न ग्राम्यपशूनां संदर्शने विहरेत् ॥

अथाप्युदाहरंति । अरण्यानित्यस्य जितेन्द्रियस्य सर्वेन्द्रिय-
प्रीतिनिवर्तकस्य ॥ अध्यात्मार्चितागतमानसस्य ध्रुवा ह्यनावृ-
त्तिरूपेक्षकस्य ॥ अव्यक्तलिङ्गोऽव्यक्ताचारः अनुन्मत्त उन्मत्त
वेषः ॥

अथाप्युदाहरंति । न शब्दशास्त्राभिरतस्य मोक्षो न चापि
लोकग्रहणे रतस्य ॥ न भोजनाच्छादनतत्परस्य न चापि
रम्यावसथप्रियस्य ॥ न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्रांगवि-
द्यया ॥ अनुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥
अलाभे न विषादी स्याल्लाभे चैव न हर्षयेत् ॥ प्राणयात्रिव
मात्रः स्यान्मात्राभ्रगाद्विनिर्गतः ॥ न कुट्यां नोदके संगं
न चैले न त्रिपुष्करे ॥ नागारे नासने शेते यः स वै मोक्ष
वित्तमः ॥

ब्राह्मणकुले वा यल्लभेतद्भुञ्जीत सायं मधुमांससर्पिःपरिव-
यतीन्साधून्वा गृहस्थान्सायंप्रातश्च तृप्येत् । ग्रामे वा वसे
अजिह्वः अशरणः असंकसुकः । न चैन्द्रियसंयोगं कुर्वी

केनचित् । उपेक्षकः सर्वभूतानां हिंसानुग्रहपरिहारेण
 पैशुन्यमत्सराभिमानाहंकाराश्रद्धानार्जवात्मशुचापरगर्हादंभलो
 भमोहक्रोधविवर्जनसर्वाश्रमिणां धर्म इष्टो यज्ञोपवीत्युदक-
 कमंडलुहस्तः शुचिर्ब्राह्मणो वृषलान्नपानवर्जो न हीयते
 ब्रह्मलोकाद्ब्रह्मलोकात् ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

षट्कर्मा गृहदेवताभ्यो बलिं हरेत् । श्रोत्रियायात्रं दत्त्वा
 ब्रह्मचारिणे वाऽनंतरं पितृभ्यो दद्यात्ततोऽतिथिं भोजयेत् ।
 स्वेष्टायासप्तमष्टानुपूर्व्येण स्वगृहाणां कुमारबालवृद्धतरुणप्रभृती-
 स्ततोऽपरान्गृह्यान् । श्वचांडालपतितवायसेभ्यो भूमौ निर्व-
 पेच्छूद्रेभ्य उच्छिष्टं वा दद्याच्छेषं यतो भुंजीत । सर्वोपयोगेन
 पुनः पाको यदि निवृत्ते वैश्वदेवेऽतिथिरागच्छेद्विशेषेणास्मा
 अन्नं कारयेद्विजातयेऽहि वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो
 गृहम् । तस्मादपानमन्यत्र वर्षाभ्यस्तां हि शान्तिजना विद्मि-
 रिति तं भोजयित्वापासीतासमिन्तादनुव्रजेदनुज्ञाताद्वा ।

परपक्ष ऊर्ध्वं चतुर्थ्याः पितृभ्यो दद्यात् । पूर्व्वेद्युर्ब्राह्मणान्
 सन्निपात्य यतीन् गृहस्थान् साधून् वा परिणतवयसोऽविक-
 र्मस्थान् श्रोत्रियाञ्छिष्यानन्तेवासिनः शिष्यान्पि गुणवतो

भोजयेद्विलमशुक्लविगृधिश्यावदंतकुष्ठिकुनखिवर्जम् ॥

अथाप्युदाहरन्ति । अथ चेन्मंत्रविद्युतः शारीरैः पंक्तिदूषणैः ॥

अदूष्यं तं यमः प्राह पंक्तिपावन एव सः ॥ श्राद्धे नोद्वासनी

यानि उच्छिष्टान्यादिनक्षयात् ॥ खे पतन्ति हि या धारास्ताः

पिबन्त्यकृतोदकाः ॥ उच्छिष्टेन प्रपुष्टास्ते यावन्नास्तमितो-

रविः ॥ क्षीरधारास्ततो यान्त्यक्षयाः संचरभागिनः ॥

प्राक्संस्कारप्रभीतानां प्रवेशनामीति श्रुतिः ॥ भागधेयं मनुः

प्राह उच्छिष्टोच्छेषणे उभे ॥ उच्छेषणं भूमिगर्तं विकिरेल्ले-

पस्रोदकम् ॥ अनुप्रेतेषु विसृजेदप्रजानामनायुषाम् ॥ उभयोः

शाखयोर्मुक्तं पितृभ्योऽन्ननिवेदनम् ॥ तदन्तरं प्रतीक्षते ह्यसुरा

दुष्टचेतसः ॥ तस्मादशून्यहस्तेन कुर्ध्यादन्यमुपागतम् ॥

भोजनं वा समालभ्य तिष्ठतोच्छेषणे उभे ॥

द्वौ दैवे पितृकृत्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ॥ भोजयेत् सुसमृ-

द्धोऽपि न प्रसज्येत विस्तरे ॥ सत्क्रियां देशकालौ च शौचं.

ब्राह्मणसंपदः ॥ पंचैतान्विस्तरो हन्ति तस्मात्तं परिवर्जयेत् ॥

अपि वा भोजयेदकं ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥ शुभशीलोपसंपन्नं

सर्वालक्षणवर्जितम् ॥

यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे दैवं तत्र कथं भवेत् ॥ अन्नं पात्रे

समुद्धृत्य सर्वस्य प्रकृतस्य तु ॥ देवतायतने कृत्वा ततः

श्राद्धं प्रवर्त्तते ॥ प्रास्येदमौ तदन्नं तु दद्याद्वा ब्रह्मचरिण ॥

यावद्दुष्णं भवत्यन्नं यावदश्रंति वाग्यताः ॥ तावद्धि पितरोऽ-
श्रंति यावन्नोक्ता हविर्गुणाः ॥ हविर्गुणा न वक्तव्याः पितरो-
ऽभ्यवतर्पिताः । पितृभिस्तर्पितैः पश्चाद्वक्तव्यं शोभनं हविः ॥
नियुक्तस्तु यदा श्राद्धे दैवे तं तु समुत्सृजेत् ॥ यावन्ति पशुरो-
माणि तावन्नरकमृच्छति ॥

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतुपस्तिळाः ॥ त्रीणि
चात्रं प्रशंसांति शौचमक्रोधमत्वराम् ॥ दिवसस्याष्टमे भागे
मंदीभवति भास्करः ॥ स कालः कुतुपो नाम पितॄणां
दत्तमक्षयम् ॥

श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च मैथुनं योऽधिगच्छति ॥ भवन्ति
पितरस्तस्य तन्मांसरेतसो भुजः ॥ यतस्ततो जायते च
दत्त्वा भुक्त्वा च योऽभ्यसेत् ॥ न स विद्यामवाप्नोति क्षीणा-
युश्चैव जायते ॥

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥ उपासते सुतं
जातं शकुन्ता इव पिप्पलम् ॥ मधुमांसैश्च शकैश्च पयसा
पायसेन वा ॥ अधुना दास्यति श्राद्धं वर्षासु च मघासु च ॥
संतानवर्द्धनं पुत्रं तृप्यन्तं पितृकर्मणि ॥ देवब्राह्मणसंपन्नम-
भिनन्दन्ति पूर्वजाः ॥ नन्दन्ति पितरस्तस्य सुवृष्टेरिव कर्षकाः ॥
यद्गयास्थो ददात्यन्नं पितरस्तेन पुत्रिणः ॥

श्रावण्याप्रहायण्योश्चाष्टकायां च पितृभ्यो दद्यात् द्रव्यदे-
शब्राह्मणसन्निधाने वा । कालनियमोऽवश्यम् ।

यो ब्राह्मणोऽग्निमादधीत । दर्शपूर्णमासाग्रयणेष्टिचातुर्मा-
स्यपशुसोमैश्च यजते । नैयमिकं ह्येतद्वृणसंस्तृतं च विज्ञायते
हि त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवान् ब्राह्मणो जायते । यज्ञेन देवेभ्यः
प्रजया पितृभ्यो ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यः । इत्येष वा अनृणो
यज्वा यः पुत्री ब्रह्मचर्यवानिति ।

गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयीत गर्भैकादशेषु राजन्यं गर्भ-
द्वादशेषु वैश्यम् । पालाशो दंडो बेल्वो वा ब्राह्मणस्य नैयग्रो-
धः क्षत्रियस्य वा औदुंबरो वा वैश्यस्य कृष्णाजिनमुत्तरायं
ब्राह्मणस्य रौरवं क्षत्रियस्य गव्यं वस्ताजिनं वैश्यस्य शुक्ल-
महतं वासो ब्राह्मणस्य माजिष्ठ क्षत्रियस्य हारिद्रं कौशेयं
वैश्यस्य सर्वेषां वा तान्तवमरक्तं भवेत् । भवत्पूर्वा ब्राह्मणो
भिक्षां याचेत भवन्मध्यां राजन्यो भवदंत्यां वैश्यश्च आषो-
डशाद्ब्राह्मणस्यानतीतः काल आद्वाविंशात्क्षत्रियस्याचतुर्विंशा
द्वैश्यस्य अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवंति नैनानुपनयेन्ना-
ध्यापयेन्न याजयेन्नभिर्विवाहयेयुः । पतितसावित्रीक उद्वा-
लकव्रतं चरेत् । द्वौ मासौ यावकेन वर्तयेन्मासं माक्षिके-
नाष्टरात्रं घृतेन षड्वरात्रमयाचितं त्रिरात्रमब्धक्षोऽहोरात्रमे-
वोपवासम् । अश्वमेधावभृत्यं गच्छेद्वात्यस्तोमेन वा यजेत् ॥

इति वसिष्ठे धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

अथातः स्नातकव्रतानि स न कंचिद्याचेतान्यत्र राजान्ते-
वासिभ्यः क्षुधापरीतस्तु किंचिदेव याचेत कृतमकृतं वा क्षेत्रं
गामजाविकं सन्ततं हिरण्यं धान्यमन्नं वा न तु स्नातकः
क्षुधावसीदेदित्युपदेशः न नद्यां स सहसा संविशेन्न रजस्व-
लायामयोग्यायां नकुलं कुलं स्याद्वत्संतीं विततां नातिक्रामे-
न्नोद्यंतमादित्यं पश्येन्नादित्यं तपन्तं नास्तं मूत्रपुरीषे कुर्यान्न
निष्ठीवेत् परिवेष्टितशिरा भूमिमियाज्ञियैस्तृणैरन्तर्धाप्य मूत्रपु-
रीषे कुर्यादुदङ्मुखश्चाहनि नक्तं दक्षिणामुखः सन्ध्यामासीतो
त्तरामुदाहरंति ।

स्नातकानां तु नित्यं स्यादंतर्वासस्तथोत्तरम् ॥ यज्ञोपवीते
द्वे यष्टिः सोदकश्च कमंडलुः ॥ अप्सु पाणौ च काष्ठे च
कथितं पावकं शुचिम् ॥ तस्मादुदकपाणिभ्यां परिमृज्यात्कमं-
डलुम् ॥ पर्याभिकरणं ह्येतन्मनुराह प्रजापातिः ॥ कृत्वा
चावश्यकार्याणि आचामेच्छौचवित्तत इति ॥

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुंजीत । तूष्णीं सांगुष्ठं कृशग्रासं ग्रसेत
न च मुखशब्दं कुर्यादतुकालाभिगामी स्यात् । पर्व्ववर्ज्ज
स्वदारेषु वा तीर्थमुपेयात् ॥

अथाप्युदाहरंति । यस्तु पाणिगृहीताया आस्ये कुर्वीत
मैथुनम् ॥ भवंति पितरस्तस्यः तन्मांसरेतसो भुजः ॥ या

स्यादनतिचारेण रतिः साधर्म्यसंश्रिता ॥ अपि च पावको-
ऽपि ज्ञायते ॥ अद्य श्वो वा विजनिष्यमाणाः पतिभिः सह शयंत
इति स्त्रीणामिददत्तो वरः ।

न वृक्षमारोहेन कूपमवरोहेन्नाग्निं मुखेनापधमेन्नाग्निं
ब्राह्मणं चान्तरेण व्यपेयान्नाग्निब्राह्मणयोरनुज्ञाप्य वा भार्यया
सह नाशनीयादवीर्यवदपत्यं भवतीति वाजसनेयके विज्ञायते ॥
नेदधनुर्नाम्ना निर्दिशेन्माणिधनुरिति ब्रूयात् ॥ पालशमासनं
पादुके दंतधावनमिति वर्जयेत् । नोत्संगे भक्षयेदधो न
भुंजीत । वैणवं दंडं धारयेद्रुक्मकुंडले च । न बहिर्मालां
धारयेदन्यत्र रुक्ममय्याः सभासमवायांश्च वर्जयेत् ॥

अथाप्युदाहरन्ति । अप्रामाण्यं च वेदानामार्षाणां चैव
दर्शनम् ॥ अव्यवस्था च सर्वत्र एतन्नाशनमात्मन इति ॥
नानाहृतो यज्ञं गच्छेत् यदि व्रजेदधिवृक्षसूर्यमध्वानं न प्रति-
पद्यते । नावं च सांशयिकीं बाहुभ्यां न नदीं तरेदुत्थायापर-
रात्रमधीत्य न पुनः प्रतिसंविशेत् । प्राजापत्ये मुहूर्ते ब्राह्मणः
स्वनियमाननुतिष्ठेदनुतिष्ठेदिति ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

अथातः स्वाध्यायश्चोपाकर्म श्रावण्यां पौर्णिमास्यां प्रौष्ठपद्यां वाग्निमुपसमाधाय कृताधानो जुहोति देवेभ्यश्छन्दोभ्यश्चेति । ब्राह्मणान् स्वस्ति वाच्य दधि प्राश्य तत उपांशु कुर्वीत । अर्धपंचममासानर्द्धषष्ठानत ऊर्ध्वं शुक्लपक्षेष्वधीयीत । कामं तु वेदांगानि ।

तस्यानध्यायाः संध्यास्तमिते स्युस्तत्र शवे दिवाकार्त्ये नगरेषु कामं गोमयर्पणिते परिलिखिते वा श्मशानांते शयानस्य श्राद्धिकस्य ।

मानवं चात्र श्लोकमुदाहरन्ति-फलान्पापस्तिलान्भक्ष्य-मथान्यच्छ्राद्धिकं भवेत् ॥ प्रतिगृह्याप्यनध्यायः पाण्यास्या ब्राह्मणाः स्मृताः इति ।

धावतः पूतिगंधिप्रसृतेरितवृक्षमारूढस्य नात्रि सेनायां च भुक्त्वा चार्धघ्राणे बाणशब्दे चतुर्दश्याममावास्यायामष्टम्या-मष्टकासु प्रसारितपादोपस्थस्योपाश्रितस्य गुरुसमीपे मिथु-नव्यपेतायां वाससा मिथुनव्यपेतेनानिर्मुक्तेन ग्रामांते छर्दि-तस्य मूत्रितस्योच्चरितस्य यजुषां च सामशब्दे वा जीर्णे निर्घातंभूमौ च न चंद्रसूर्योपरागेषु दिङ्नादपर्वतनादकं-पप्रपातेषूपलरुधिरपांशुवर्षेष्वकालिकमुल्काविद्युत्सज्योतिषम-पत्वाकालिकं वा ।

आचार्ये च प्रेते त्रिरात्रमाचार्यपुत्रशिष्यभाढ्यास्वहो-
रात्रम् ऋत्विग्योनिसंबन्धेषु च गुरोः पादोपसग्रहणं कार्यं
ऋत्विक्श्वशुरापितृव्यमातुलानवरवयस प्रत्युत्थायाभिवदेद्ये चैव
पादग्राह्यास्तेषां भार्या गुरोश्च मातापितरौ यो विद्यादभिव-
न्दितुमहमयं भोरित ब्रूयाद्यश्च न विद्यात् प्रत्यभिवादे
नाभिवदेत् ।

पतितः पिता परित्याजो माता तु पुत्रे न पतति ॥
अथाप्युदाहरन्ति—“उपाध्यायादशाचार्य्य आचार्य्याणां शतं
पिता ॥ पितुर्दशशतं माता गौरवेणातिरिच्यते ॥ भाढ्याः
पुत्राश्च शिष्याश्च संस्पृष्टाः पापकर्मभिः ॥ परिभाष्य
परित्याज्याः पतितो योऽन्यथा भवेत् ॥ ऋत्विगाचार्या-
वयाजकानध्यापकौ हेयावन्यत्र हानात् पतितो नान्यत्र
पतितो भवतीत्यादुरन्यत्र स्त्रियाः ॥ सा हि परगमिता
तद्विन्नामक्षुण्णामुपेयात् ॥

गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्वात्तारण्यते ॥ गुरुवद्गुरुपुत्रस्य
वर्तितव्यमिति श्रुतिः ॥ शास्त्रं वस्त्रं तथान्नानि प्रतिग्राह्याणि
ब्राह्मणस्य विद्याविजयजः संबन्धः कर्म च मान्यम् ।
पूर्वः पूर्वो गरीयान् । स्थविरबालातुरभारिकचक्रवर्ता पन्थाः
समागमे परस्मै देयः । राज्ञातकयोः समागमे राज्ञा स्नात-

काय देयः । सर्वैरेव वा उच्चतमाय ॥ तृणभूम्यग्न्युदक-
वाक्सूनृतानसूयाः सह गृहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन
कदाचनेति ॥

इति श्रीवासिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां त्रयादशाऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

अथातो भोज्याभोज्यं च वर्णयिष्यामः ॥ चिकित्सक
मृगयुर्पुश्चलीदंडिकस्ते नाभिश्चस्तपंडपतितानामभोज्यं कदर्ये
क्षितवद्धातुरसोमविक्रयितक्षकरजकशौंडिकमूचकवार्धुषिक-
चर्मावकृत्तानां शूद्रस्य चायज्ञस्थोपयज्ञे यश्चोपपतिं मन्यते
यश्च गृहीततद्धेतुर्यश्च वधार्हं नोपहन्यात् कौ बन्धमोक्षौ इति
चाभिकुश्येत् । गणान्नं गणि कान्नम् ॥

अथाप्युदाहरन्ति—“नाश्नन्ति श्वपतेर्देवा नाश्नन्ति वृषली-
पतेः ॥ भार्याजितस्य नाश्नन्ति यस्यचोपपतिर्गृहे इति”
एधोदकसवत्सकुशलाभ्युद्यतपानावसथसफरिप्रियंगुस्तरजमधु
मांसानि नैतेषां प्रतिगृह्णीयात् ॥

अथाप्युदाहरन्ति—गुर्वर्थदारमुज्जिहीर्षन्नर्चिष्यन्देवताति-
थीन् ॥ सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयं तत इति ॥

न मृगयोरिषुचारिणः परिवर्ज्यमन्नम् । विज्ञायते ह्यगस्त्यो
वर्षसाहस्रिके सत्रे मृगयां चचार तस्यासंस्तु रसमयाः पुरो-
डाशा मृगपाक्षिणां प्रशस्तानामपि ह्यन्नम् ॥

प्राजापत्याञ्छोकानुदाहरति-उद्यतामाहतां भिक्षां पुरस्ता-
दप्रचोदिताम् ॥ भोज्यं प्रजापतिर्मेने अपि दुष्कृतकारिणः ॥
श्रद्धानैर्न भोक्तव्यं चौरस्यापि विशेषतः ॥ नत्वेव बहुधा
तस्य यावानपहता भवेत् ॥ न तस्य पितरोऽश्नन्ति दश
वर्षाणि पंच च ॥ नच हव्यं वहत्यग्निर्यस्तामभ्यवमन्यते ॥
चिकित्सकस्य मृगयाः शिल्पहस्तस्य पाशिनः ॥ षंढस्य
कुलटायाश्च उद्यतापि न गृह्यते इति ॥

उच्छिष्टं गुरोरभोज्यं स्वमुच्छिष्टमुच्छिष्टोपहतं च
यदशनं केशकीटोपहतं च कामं तु केशकीटानुद्धृत्याद्भिः प्रोक्ष्य
भस्मनावकीर्य वाचा च प्रशस्तमुपभुंजीतापि ह्यन्नम् ॥

प्राजापत्यान् श्लोकानुदाहरन्ति-त्रीणि देवाः पवित्राणि
ब्राह्मणानामकल्पयन् ॥ अदृष्टमद्भिर्निर्णिक्तं यच्च वाचा
प्रशस्यते ॥ देवद्रोण्यां विवाहेषु यज्ञेषु प्रकृतेषु च ॥ काकैः
श्वभिश्च संस्पृष्टमन्नं तत्र विसर्जयेत् ॥ तस्मात्तदन्नमुद्धृत्य
शेषं संस्कारमर्हति ॥ द्रवाणां प्लावनेनैव धनानां क्षरेण न तु ॥
पाकेन मुखसंस्पृष्टं शुचिरेव हि तद्भवेत् ॥ अन्नं पर्युषितं
भावदुष्टं हल्लेखनं पुनः ॥ सिद्धमाममृजीषपक्वं च । कामं तु
दद्याद् घृतेन चाभिधारितमुपभुंजीतापि ह्यन्नम् ॥

प्राजापत्यान् श्लोकानुदाहरन्ति-हस्त इत्तास्तु ये स्नेहा लवणं व्यं-
जानानि च ॥ दातारं नोपतिष्ठन्ति भोक्ता भुंक्ते च किल्बिषमिति ।

लशुनपलांडुकमुकगृंजनश्लेष्मांतर्धृक्षनिर्यासलोहितावश्चना-
 श्वश्वकाकावलीढं शूद्रोच्छिष्टभोजनेषु कृच्छ्रातिकृच्छ्र इतरेऽ-
 प्यन्यत्र मधुमांसफलविकर्षेष्वग्राम्यपश्वविषयः संधिनीक्षी-
 रमवत्सागोमहिष्यजातरोमनिर्दशाहानात्मनामंत्र्यं नाव्युदक-
 मपूपधानाकरंभसक्तुचरकतैलपायसशाकानिलशुक्तानि वर्जये
 दन्यांश्च क्षीरयवपिष्टवीरान् ।

श्वाविच्छलकशशकच्छपगोधाः पंचनखा नाभक्ष्या अनुष्टूः
 पशूनामन्यतोदतश्च मत्स्यानां वा वेहगवयशिशुमारनक्रकुलीरा
 विकृतरूपाः सर्पशीर्षाश्च गौरगवयशलभाश्चानुद्दिष्टास्तथा ॥
 धेन्वनडाहौ मेध्यौ वाजसनेयने । खड्गे तु विवदंत्यग्राम्यशूकरे
 च शकृन्नानां च विशुशिविष्करजालपादाः कलर्विकप्लव-
 हंसचक्रवाकभासमद्गुट्टिद्विभाटबांधनक्तंचरा दार्वाघाटाश्च
 श्वटकवैलातकहारितखन्जरीटमाम्यकुक्कुटशुकसारिकाकोकि-
 लकव्यादा ग्रामचारिणश्च ग्रामचारिणश्चेति ॥

इति श्रीवाशिष्ठे धर्मशास्त्रे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पंचदशोऽध्यायः १५.

शोणितशुक्रसंभवः पुरुषो मातापितृनिमित्तकः तस्य
 प्रदानविक्रयत्यागेषु माता पितरौ प्रभवतः । नत्वेकं पुत्रं दद्या-
 त्प्रतिगृह्णीयाद्वा स हि संतानाय पूर्वेषाम् । न स्त्री दद्या-
 त्प्रतिगृह्णीयादान्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः ।

पुत्रं प्रतिग्रहीष्यन् बंधूनाहूय राजानि चावेद्य निवेशनस्य
मध्ये व्याहृतीर्हृत्वा दूरेबांधवमसन्निकृष्टमेव संदेहे चोत्पन्ने
दूरेबांधवं शूद्रमिव स्थापयेत् ॥ विज्ञायते हेकेन बहु जायत
इति ।

तस्मिंश्चेत् प्रतिगृहीते औरसः पुत्र उत्पद्यते चतुर्थभाग-
भागी स्यात् ।

यदि नाभ्युदयिके युक्तः स्याद्वेदविप्लविनः सव्येन पादेन
प्रवृत्ताग्रान् दर्भान् लोहितान् वोपस्तीर्य पूर्णं पात्रमस्मै
निनयेन्निनेतारं चास्य प्रकीर्य केशान् ज्ञातयोऽन्वारभेरन्नप-
सव्यंकृत्वा गृहेषु स्वैरमापाद्येरन्नत ऊर्ध्वं तेन सह धर्म
भीयुस्तद्धर्माणस्तद्धर्मापन्नाः पातितानां तु चरितव्रतानां
प्रत्युद्धारः ।

अथाप्युदाहरंति-अग्न्यभ्युद्धरतां गच्छेत्कीडंति च
हसंति च ॥ यश्चोत्पातयतां गच्छेच्छौचमित्याचार्यमातृ-
पितृहंतारस्तत्प्रसादाद्भयाद्वा । एषां प्रत्यापात्तिः । पूर्णाब्दात्
प्रवृत्ताद्वा कांचनं पात्रं माहेयं वा पूरयित्वापोहिष्ठाभिरेव
षड्भिर्ऋग्भिः सर्वत्र वाभिरिक्तस्य प्रत्युद्धारपुत्रजन्मना
व्याख्यातः ॥

इति वशिष्ठस्मृतौ भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः १६.

अथ व्यवहाराः ॥ राजमंत्री सदःकार्याणि कुर्वात ।
 द्वयोर्विवदमानयोरेव पक्षांतरं गच्छेद्यथासनमपराधो ह्यंते
 नापराधः समः सर्वेषु भूतेषु यथासनमपराधो ह्याद्यवर्णयो-
 विधानतः संपन्नतामाचरेद्राजा बालानामप्राप्तव्यवहाराणां
 प्राप्तकाले तु तद्वत् । लिखितं साक्षिणो भुक्तिः प्रमाणं त्रिविधं
 स्मृतम् ॥ धनस्वीकरणं पूर्वं धनी धनमवाप्नुयात् इति ॥
 मार्गक्षेत्रयोर्विसर्गे तथा परिवर्तनेन ऋणाग्रहेष्वर्थान्तरेषु
 त्रिपादमात्रं गृहक्षेत्रविरोधे सामंतप्रत्ययः सामंतविरोधेऽपि
 लेख्यप्रत्ययः प्रत्यभिलेख्यविरोधे ग्रामनगरवृद्धश्रेणिप्रत्ययः ।

अथाप्युदाहरन्ति-“य एकं क्रीतमाधेयमन्वाधेयं प्रति-
 ग्रहम् ॥ यज्ञादुपगमा वैनैस्तथा धूमशिखा ह्यमी ॥ इति ।”
 तत्र भुक्ते दशवर्षमेवोदाहरति ।

आधिः सीमाधिकं चैव निक्षेपोपनिधिः स्त्रियः ॥ राजस्वं
 श्रोत्रियद्रव्यं न राजाऽऽदातुमर्हति इति ॥ तच्च संभोगेन
 ग्रहीतव्यम् । गृहिणां द्रव्याणि राजगामीनि भवंति ।

तथा राजा मंत्रिभिः सह नागरैश्च कार्याणि कुर्वादसौ
 वा राजा श्रेयान् वसुपरिवारः स्यादगर्धपरिवारो वा राजा न

श्रेयान् स्याद्गर्धा गर्धपरिवारः स्यात् । परिवाराद्दोषाः प्रादुर्भवन्ति स्तेयहारविनाशनं तस्मात्पूर्वमेव परिवारं पृच्छेत् ॥

अथ साक्षिणः—श्रोत्रियो रूपवान् शीलवान् पुण्यवान् सत्यवान् साक्षिणः सर्वे एव वा स्त्रीणां साक्षिणः द्वियः कुर्यात् । द्विजानां सदृशा द्विजाः शूद्राणां संतः शूद्राश्च अंत्यानामंत्याः ॥

अथाप्युदाहरन्ति ॥ प्रातिभाव्यं वृथादानमाक्षिकं सौरिकं च यत् ॥ दंडशुल्कावशिष्टं च न पुत्रो दातुमर्हतीति ॥

ब्रूहि साक्षिन्यथातत्त्वं लब्धंते पितरस्तव ॥ तव वाक्यमुदी-
र्यतपुत्पतन्ति पतन्ति च ॥ नग्नो मुंडः कपाली च भिक्षार्थं
क्षुरिपसितः ॥ अंधः शत्रुकुले गच्छेद्यस्तु साक्ष्यनृतं वदेत् ॥
पंच कन्यानृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ॥ शतमथानृते हन्ति
सहस्रं पुरुषानृते ॥ व्यवहारे मृते दारे प्रायश्चित्ते कुले
द्वियः ॥ तेषां पूर्वपरिच्छेदाच्छेद्यन्ते वागवादिभिः ॥

उद्धाहकाले रतिसंप्रयोगे प्राणात्यये सर्वधनापहरे ॥ वि-
प्रस्य चार्थं ह्यनृतं वदेयुः पंचानृतान्याहुरपातकानि ॥

स्वजनस्यार्थं यदि वार्थहेतोः पक्षाश्रयेणैवं वदन्ति कार्यम् ॥
वैशब्दवादं स्वकुलानुपूर्वास्वर्गस्थितास्तानपि पातयन्त्यपि ॥

इति श्रीवाशिष्ठ धर्मशास्त्रे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

ऋणमस्मिन् सन्नयति अमृतत्वं च गच्छति ॥ पिता
पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम् ॥ अनंतः पुत्रिणां
लोका नापुत्रस्य लोकोऽस्तीति श्रूयते । प्रजाः संत्वंपुत्रिण
इत्यपि शापः । प्रजाभिरमेस्त्वमृतत्वमश्नुयामित्यपि निगमो
भवति । पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते ॥ अथ
पुत्रस्य पौत्रेण ब्रधस्याप्नोति विष्टपमिति ॥

क्षेत्रिणः पुत्रो जनयितुः पुत्र इति विवदन्ते तत्रोभयथा-
प्युदाहरन्ति ॥ यद्यन्यगोषु वृषभो वत्सान् जनयते सुतान् ॥
गोमिनामेव ते वत्सा मोषं स्यन्दनमोक्षणमिति ॥ अप्रमत्ता
रक्षन्तु वै न मा च क्षेत्रे परे बीजानि वासौ जनयितुः पुत्रो
भवति संपरायो मोषं रेतोऽकुरुत तंतुमेतमिति ।

बहूनामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्नरः ॥ सर्वे ते तेन पुत्रेण
पुत्रवंत इति श्रुतिः ॥

बह्वीनां द्वादश ह्येव पुत्राः पुराणदृष्टाः स्वयमुत्पादितः
स्वक्षेत्रे संस्कृतायां प्रथमः तदलाभे नियुक्तायां क्षेत्रजो द्विती-
यः तृतीयः पुत्रिका विज्ञायते अभ्रातृका पुंसः पितृलभ्येति
प्रतीचीनं गच्छति पुत्रत्वम् ॥

श्लोकः ॥ अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम् ॥
अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति ॥

पौनर्भवश्चतुर्थः पुनर्भूः कौमारं भर्तारमुत्सृज्यान्वैः सह
चारित्वा तस्यैव कुटुंबमाश्रयति सा पुनर्भूभवति । या च
क्लीबं पतितमुन्मत्तं वा भर्तारमुत्सृज्यान्यं पतिं विन्दते
मृते वा सा पुनर्भूभवति ।

कानीनः पंचमो या पितुर्गृहेऽसंस्कृता कामादुत्पादये
न्मातामहस्य पुत्रो भवतीत्याहुः ॥ अथाप्युदाहरन्ति ॥
अप्रप्ता दुहिता यस्य पुत्रं विन्दति तुल्यतः ॥ पुत्री माता
महस्तेन दद्यात्पिंडं हरेद्धनम् इति ॥

गूढे च गूढोत्पन्नः षष्ठः इत्येते । दायादा बांधवास्त्रातारो
महतो भयात् इत्याहुः ।

अथादायादास्तत्र सहोढ एव प्रथमो या गर्भिणी संस्क्रियते
तस्यां जातः सहोढः पुत्रो भवति । दत्तको द्वितीयो यं
मातापितरौ दद्याताम् । क्रीतस्तृतीयस्तच्छुनःशेषेन
व्याख्यातं हरिश्चंद्रो ह वै राजा सोऽजीगर्तस्य सोपवत्सैः पुत्रं
विक्राय्य स्वयं क्रीतवान् । स्वयमुपागतश्चतुर्थः तच्छुनःशेषेन
व्याख्यातं शुनःशेषो ह वै यूपे नियुक्तो देवतास्तुष्टाव तस्येह
देवताः पाशं विमुमुचुस्तमृत्विज ऊचुर्ममैवायं पुत्रोऽस्त्विति
तानाह न संपदेते संपादयामासुरेष एवायं कामयेत तस्य
पुत्रोऽस्त्विति तस्यह विश्वामित्रो होतासीत्तस्य पुत्रत्वमियाया॥

अपविद्धः पंचमो यं मातापितृभ्यामपास्तं प्रतिगृह्णीयात् ।
शूदापुत्र एव षष्ठो भवतीत्याहुरित्येतेऽदायादा बांधवाः ॥

अथाप्युदाहरन्ति—यस्य पूर्वेषां वर्णानां न कश्चिदायाद
स्यादेते तस्यापहरन्ति ।

अथ भ्रातॄणां दायविभागो द्वयंशं ज्येष्ठो हरेद्द्रवाश्वस्य
चानुसदृशमजावयो गृहं च कनिष्ठस्य काष्ठं गां यवसं गृहो
पकरणानि च मध्यमस्य मातुः पारिणेयं स्त्रियो विभजे
रन् । यदि ब्राह्मणस्य ब्राह्मणीक्षत्रियावैश्यासु पुत्राः स्युस्त्यं
ब्राह्मण्याः पुत्रो हरेत् । द्वयंशं राजन्यायाः पुत्रः सममितं
विभजेन्नन्येन चैषां स्वयमुत्पादितः स्यात् द्वयंशमे
हरेदन्येषां त्वाश्रमान्तरगताः क्लीबोन्मत्तपतिताश्च भर
क्लीबोन्मत्तानाम् ।

प्रेतपत्नी षण्मासं व्रतचारिण्यक्षारलवणं भुञ्जाना शयीत
र्ध्वं षड्ध्यो मासेभ्यः स्नात्वा श्राद्धं च पत्ये दत्त्वा विद्याक
गुरुयोनिसंबंधात् । सन्निपात्य पिता भ्राता वा नियोगं क
येत्तपसे वोन्मत्तामवशां व्याधितां वा नियुञ्ज्यात् । ज्याय
मपि षोडशवर्षा न चेदामयाविनी स्यात् । प्राजापत्ये मुह
पाणिमहणवदुपचारोऽन्यत्र संस्थाप्य वाक्पाहण्यादंडपारुष्य
प्रासाच्छादनस्नानलेपनेषु प्राग्यामिनी स्यादनियुक्तायामुत्
उत्पादयितुः पुत्रो भवतीत्याहुः स्याच्चेन्नियोगिनी इ
लोभान्नास्ति नियोगः प्रायश्चित्तं वाप्युपनियुञ्ज्यादित्येके ।

कृमायुर्पुतुमती त्रिवर्षाण्युपासीतोर्ध्वं त्रिभ्यो वर्षेभ्यः पतिं
विदेत्तुल्यम् ॥ अथाप्युदाहरन्ति-पितुः प्रदानात्तु यदा हि
पूर्वं कन्या वयो यैः समतीत्य दीयते ॥ सा हन्ति दातारमपी-
क्षमाणा कालातिरिक्ता गुरुदक्षिणेव ॥ प्रयच्छेन्नशिकां
कन्यामृतुकालभयात्पिता ॥ ऋतुमत्यां हि तिष्ठन्त्यां दोषः
पितरमृच्छति ॥ यावच्च कन्यामृतवः स्पृशन्ति तुल्यैः सका-
मामभियाच्यमानाम् ॥ भ्रूणानि तावन्ति हतानि ताभ्यां माता
पितृभ्यामिति धर्मवादः ॥

अद्विर्वाचा च दत्तानां म्रियेताथो वरो यदि ॥ न च
मंत्रोपनीता स्यात्कुमारी पितुरेव सा ॥ यावच्चेदाहता कन्या
मन्त्रैर्यदि न संस्कृता ॥ अन्यस्मै विधिवद्देया यथा कन्या
तथैव सा ॥ पाणिमहे मृते बाला केवलं मंत्रसंस्कृता ॥ सा
चेदक्षतयोनिः स्यात्पुनः संस्कारमर्हति इति ॥

प्रोषितपत्नी पञ्चवर्षा प्रवसेद्यद्यकामा यथा प्रेतस्य एवं च
वर्तितव्यं स्यात् । एवं पञ्च ब्राह्मणीप्रजाता चत्वारि राजन्या-
प्रजाता त्रीणि वैश्याप्रजाता द्वे शूद्रा प्रजाता । अत ऊर्ध्वं
समानोदकपिण्डजन्मर्षिगोत्राणां पूर्वः पूर्वो गरीयान् । न खलु
कुलीने विद्यमाने परगामिनी स्यात् ।

यस्य पूर्वेषां षण्णां न कश्चिद्वायादः स्यात् सपिण्डाः
पुत्रस्थानीया वा तस्य धनं विभजेरन्तेषामल्लाभे आचार्यान्ते-

वासिनौ हरेयातां तयोरलाभे राजा हरेत् । न तु ब्राह्मणस्य
 राजा हरेद्ब्रह्मस्वं तु विषं घोरम् । न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं
 विषमुच्यते॥विषमेकाकिनं हन्ति ब्रह्मस्वं पुत्रपौत्रकम्॥ इति॥
 त्रैविद्यसाधुर्यः संप्रयच्छेदिति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.

शूद्रेण ब्राह्मण्यामुत्पन्नश्चांडालो भवतीत्याहुः। राजन्यायां
 वैश्यायामन्त्यावसायी । वैश्येन ब्राह्मण्यामुत्पन्नो रामको
 भवतीत्याहुः। राजन्यायां पुलकसः। राजन्येन ब्राह्मण्यामुत्पन्नः
 सृतो भवतीत्याहुः ॥

अथाप्युदाहरन्ति-छिन्नोत्पन्नास्तु ये केचित्प्रातिलो-
 म्यगुणाश्रिताः ॥ गुणाचारपरिभ्रंशात्कर्मभिस्तान्विजानी-
 युरिति । एकांतरद्वयंतरव्यंतरानुजाता ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यैरव-
 च्छिन्ना अंबष्टा निषादा भवंति । शूद्रायां पारशवः पारयन्त्रव-
 जीवन्नेव शवो भवतीत्याहुः शव इति मृताख्या एतच्छावं
 यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्रसमीपे तु नाध्येतव्यम् ॥

अथापि यमगीताञ्छोकानुदाहरन्ति ॥ श्मशानमेतत्प्रत्यक्षं
 ये शूद्राः पापचारिणः ॥ तस्माच्छूद्रसमीपे च नाध्येतव्यं
 कदाचन ॥ न शूद्राय मतिं दद्यान्त्रोच्छिष्टं न हविष्कृतम् ॥

न चास्योपदिशेद्धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत् ॥

यश्चास्योपदिशेद्धर्मं यश्चास्य व्रतमादिशेत् ॥

सोऽसंवृत्तं तमो घोरं स ह तेन प्रपद्यते ॥ इति ।

व्रणद्वारे कृमिर्यस्य संभवेत कदाचन ॥

प्राजापत्येन शुद्धयेत हिरण्यं गौर्वासो दक्षिणेति ।

नाग्निचित्पराभुपेयात् कृष्णवर्णायाः सरमाया इव न
धर्माय न धर्मायेति ॥

इति वासिष्ठे धर्मशास्त्रेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः १९.

धर्मे राज्ञः पालनं भूतानां तस्यानुष्ठानात् सिद्धिः ।

भयकारणं ह्यपालनं वै एतत् । सूत्रमाहुर्विद्वांसस्तस्माद्गार्ह-
स्थ्यनैयमिकेषु पुरोहिते दद्याद्विजातये ब्राह्मणः पुरोहितो
राष्ट्रं दधातीति । तस्य भयमपालनादसामर्थ्याच्च ॥

देशधर्मजातिधर्मकुलधर्मान् सर्वान् वैताननुप्रविश्य राजा
चतुरो वर्णान् स्वधर्मे स्थापयेत्तेष्वधर्मपरेषु दंडं तु देशकाल-
धर्माधर्मवयोविद्यास्थानविशेषैर्दिशेत् आगमादृष्टाभावात्
पुष्पफलोपगान्यदेयानि हिंस्यात् कर्षणकरणार्थं चोपहृत्या ।
गर्हिस्थ्यं गां च मानोन्माने रक्षिते स्याताम् । अधिष्ठानान्नो

नैहारसार्थानामस्मान्न मूल्यमात्रं नैहारिकं स्यान्महामहस्थः
 स्यात् । संमानयेदवाहनीयद्विगुणकारिणी स्यात् । प्रत्येकं
 प्रयास्यः पुमान् शतं वाराद्धयं वा तदेतदप्यर्थाः स्त्रियः
 स्युः कराष्टौ मानाधारमध्यमः पादः कार्षापणस्य । निरुक्तो-
 न्तरो मानाकरः श्रोत्रियो राजपुमानथ प्रव्रजितबालवृद्धत-
 रुणप्रदाता प्रागाभिकाः कुमार्यो मृतापत्याश्च बाहुभ्यामुत्तर-
 शतगुणं दद्यान्नदीकक्षवनशैलोपमांगा निष्कराः स्युस्तदुप-
 जीविनो वा दद्युः । प्रतिमासमुद्राहकरैस्तवागमयेद्राजनि
 च प्रेते दद्यात् । प्रासंगिकं तेन मातृवृत्तिर्व्याख्याता ।
 राजमहिष्याः पितृव्यमातुलंशजापितृव्यान राजा विभृया-
 तद्गामित्वादंशस्य स्युस्तद्वंधूंश्चान्याश्च राजपत्न्यो ग्रासाच्छा-
 दनं लभेरन् अनिच्छंतो वा प्रव्रजेरन् क्लीबोन्मत्तांश्चजा वापि ।
 मानवं श्लोकमुदाहरन्ति—न रिक्तकार्षापणमस्ति शुल्कं न
 शिल्पवृत्तौ न शिशौ न धर्मे ॥ न भैक्षवृत्तौ न हुतावशे
 न श्रोत्रिये प्रव्रजिते न यज्ञे इति ॥

स्तेनाभिःस्तदुष्टशस्त्रधारिसहोद्व्रणसंपन्नव्यपविष्टेष्वेके-
 दंडोत्सर्गे राजैकरात्रमुपवसेत् त्रिरात्रं पुरोहितः कृच्छ्रम-
 ढ्यदंडने पुरोहितस्त्रिरात्रं वा ॥

अथाप्युदाहरन्ति ॥ अन्नादे भूणहा मार्ष्टि पत्यौ भा-
 पचारिणी ॥ गुरौ शिष्यश्च याज्यश्च स्तेनो राजनि किं

षम् ॥ राजभिर्धृतदंडास्तु कृत्वा पापानि मानवाः ॥ निर्मलाः
स्वर्गमायांति संतः सुकृतिनो यथा ॥ एनो राजानमृच्छत्य-
प्युत्सृजंतं सकिल्बिषम् ॥ तं चेन्न घातयेद्राजा राजधर्मेण
दुष्यति इति ॥

राज्ञामन्येषु कार्येषु सद्यः शौचं विधीयते ॥ तथा तान्यपि
नित्यानि काल एवात्र कारणम् ॥ इति ॥ यमगीतं च श्लोकमुदा-
हरन्ति ॥ नात्र दोषोऽस्ति राज्ञां वै व्रतिनां नच मंत्रिणाम् ॥
ऐंद्रस्थानमुपासीना ब्रह्मभूता हि ते सदा ॥ इति ॥

इति श्रीवाशिष्ठे धर्मशास्त्रे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः २०.

अनभिसंधिकृते प्रायश्चित्तमपराधे सविकृतेऽप्येक । गुरु-
रात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम् ॥ इह प्रच्छन्न-
पापानां शास्ता वैवस्वतो यम इति । तत्र च सूर्याभ्युदयतः
सन्नहस्तिष्ठेत्सावित्रीं च जगेदेवं सूर्याभिनिर्मुक्तो रात्रावासीत् ॥

कुनखी श्यावदंतस्तु कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा पुनर्नि-
विशेत् । अथ दिधिषूपतिः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा निर्विशेत्
तां चैवोपयच्छेद्दिधिषूपतिः कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ चरित्वा निर्विशेत्
चण्डमहरहस्तद्वक्ष्यामः । ब्रह्मघ्नः कृच्छ्रं द्वादशरात्रं चरित्वा
पुनरुपनीतो वेदमाचार्यात् । गुरुतरुपगः सवृषणं शिशुमु-

रुत्यांजलाताधाय दक्षिणामुखो गच्छेत् यत्रैव प्रतिहन्यत्तित्र
तिष्ठेदामलयन्निष्कालको वा घृताक्तस्तप्तां सूर्भिं परिष्वजे-
न्मरणान्मुक्तो भवतीति विज्ञायते । आचार्य्यपुत्रशिष्यभार्यासु
चैव्योनिषु च गुर्वीं सखीं गुरुसखीं च पतितां च गत्वा
कृच्छ्राब्दं चरेत् एतदेव चांडालपतितान्नभोजनेषु ततः
पुनरुपनयनवपनादीनां तु निवृत्तिः ॥

मानवं चात्र श्लोकमुदाहरन्ति ॥ वपनं मेखला दंडो
भैक्षचर्यव्रतानि च ॥ निवर्त्तते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्म-
णि ॥ इति ॥

सर्वमद्यपाने क्लीबव्यवहारेषु विष्मूत्ररेतोऽभ्यवहारेषु
चैवम् ।

मद्यभांडे स्थिता अपो यदि कश्चिद्विजोऽर्थवत् ॥ पद्मोदु-
बराबिल्वपलाशानामुदकं पीत्वा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति । अभ्यासे
सुराया अग्निवर्णां तां द्विजः पिबेत् ।

भ्रूणहनं च वक्ष्यामः । ब्राह्मणं हत्वा भ्रूणहा भवत्यविज्ञातं
च गर्भम् । अविज्ञाता हि गर्भाः पुमांसो भवंति तस्मात् पुंस्कृत्य
जुहुयात् । लोमानि मृत्योर्जुहोमि लोमभिर्मृत्युं वासय इति
प्रथमां त्वचं मृत्योर्जुहोमि त्वचा मृत्युं वासय इति द्वितीयं
लोहितं मृत्योर्जुहोमि लोहितेन मृत्युं वासय इति तृतीयं
त्वचं मृत्योर्जुहोमि त्वचा मृत्युं वासय इति चतुर्थीं मांसानि

मृत्योर्जुहोमि मांसैर्मृत्युं वासय इति पंचमीं मेदो मृत्यो-
र्जुहोमि मेदसा मृत्युं वासय इति षष्ठीमस्थीनि मृत्योर्जुहोमि
अस्थिभिर्मृत्युं वासय इति सप्तमीं मज्जानं मृत्योर्जुहोमि
मज्जाभिर्मृत्युं वासय इति अष्टमीम् । राजार्थे ब्राह्मणार्थे वा
ग्रामेऽभिमुखमात्मानं घातयेत् । त्रिरंजितो वापराधः पूतो
भवतीति विज्ञायते । द्विरुक्तं कृतः कनीयो भवतीति ।

तदप्युदाहरन्ति ॥ पतितं पतितेत्युक्त्वा चोरं चोरेति वा
पुनः ॥ वचसा तुल्यदोषः स्यान्न मिथ्यादोषतां व्रजेत् ॥
इति ।

एवं राजन्यं हत्वाष्टौ वर्षाणि चरेत् । षडैश्वर्यं त्रीणि शूद्रं
ब्राह्मणीं चात्रयीं हत्वा सवनगतौ च राजन्यवैश्यौ च ।
आत्रेयीं वक्ष्यामो रजस्वलामृतुस्नातामात्रेयीमाहुः । अत्रेत्ये-
षामपत्यं भवतीति चात्रेयी । राजन्यर्हिसायां वैश्यर्हिसायां
शूद्रं हत्वा संत्सरं ब्राह्मणसुवर्णहरणात् प्रकीर्य केशान्
राजानमभिधावेत् स्तेनोऽस्मि भोः शास्तु भवानिति तस्मै
राजौदुम्बरं शस्त्रं दद्यात्तेनात्मानं प्रमापयेन्मरणात् पूतो
भवतीति विज्ञायते । निष्कालको वा घृताक्तो गोमयाग्निना
पदप्रभृत्यात्मानमधिदाहयेन्मरणात् पूतो भवतीति विज्ञा-
यते ॥

अथाप्युदाहरन्ति ॥ पुरा कालात्प्रमातानामानाकविधि-
कर्मणाम् ॥ पुनरापन्नदेहानामंगं भवति तच्छृणु ॥ स्तेनः
कुनर्त्ता भवति श्वित्री भवति ब्रह्महा ॥ सुरापः श्यावदंतस्तु
द्विश्वर्मा गुरुतरुपगः ॥ इति । पतितैः संप्रयोगे च ब्राह्मेण
वा यौनेन वा तेभ्यः सकाशान्मात्रा उपलब्धास्तासां परि-
त्यागस्तैश्च न संवसेदुदीचीं दिशं गत्वाऽनश्नन् संहिताध्य-
यनमधीयानः पूतो भवतीति विज्ञायते ॥

अथाप्युदाहरन्ति ॥ शरीरपातनाच्चैव तपसाध्ययनेन च ॥
मुच्यते पापकृत्पापाद्दानाच्चापि प्रमुच्यते ॥ इति विज्ञायते ॥

इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्रे विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः २१.

शूद्रश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेद्दीरणैर्वेष्टयित्वा शूद्रमभौ प्रास्ये-
द्ब्राह्मण्याः शिरसि वापनं कारयित्वा सर्पिषाभ्यज्य नम्रां
खरमारोप्य महापथमनुव्राजयेत् पूता भवतीति विज्ञायते ॥
वैश्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेत्क्षोहितदम्बैर्वेष्टयित्वा वैश्यमभौ
प्रास्येद्ब्राह्मण्याः शिरसि वापनं कारयित्वा सर्पिषाभ्यज्य नम्रां
गोरथमारोप्य महापथमनुसंव्राजयेत् पूता भवतीति विज्ञायते ।
राजन्यश्चेद्ब्राह्मणीमभिगच्छेच्छुरपत्रैर्वेष्टयित्वा राजन्यमभौ
प्रास्येद्ब्राह्मण्याः शिरोवापनं कारयित्वा सर्पिषाभ्यज्य नम्रां

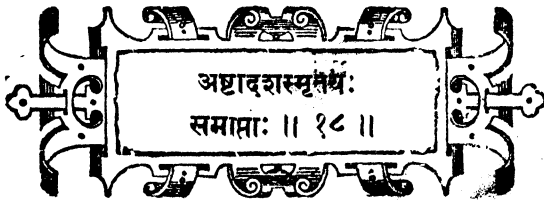
रक्तस्वरमारोप्य महापथमनुव्राजयेत् ॥ एवं वैश्यो राजन्यायां
शूद्रश्च राजन्यावैश्ययोः ।

मनसा भर्तुरतिचारे त्रिरात्रं यावकं क्षीरं भुञ्जानाधःशयाना
त्रिरात्रमप्सु निम्नगायाः सावित्र्यष्टशतेन शिरोभिर्वा जुहुया
त्सूता भवतीति विज्ञायते ॥

इति श्रीवासिष्ठे धर्मशास्त्रे एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

समाप्तेयं वासिष्ठस्मृतिः ।

१ ब्राह्मणद्वारेति बोध्यम् ।



पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास,
“श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टीम-
यन्त्रालय बम्बई.

तथा-
गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
“लक्ष्मीवेंकटेश्वर” स्टीम-
प्रेस कल्याण-बम्बई.



**THE KUPPUSWAMY SASTRI
RESEARCH INSTITUTE,
84, R. H. ROAD, MADRAS - 4.**

THE KUPPUSWAMY SASTRI.
RESEARCH INSTITUTE.
84, R. H. ROAD MADRAS - 4